इस्लाही ख़ुतबात
6
जस्टिस मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

इस्लाही ख़ुतबात

(6)

जस्टिस मौलाना मुफ़्ती
मुहम्मद तक़ी साहिब उस्मानी

अनुवादक

मुहम्मद इमरान क़ासमी एम०ए० (अलीग)

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०
422, मटिया महल, ऊर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली 6
फोन आफ़िस, 3289786,3289159, आवास, 3262486

☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

नाम किताब	इस्लाही ख़ुतबात जिल्द (6)
ख़िताब	मौलाना मुहम्मद तक़ी उस्मानी
अनुवादक	मुहम्मद इमरान क़ासमी
संयोजक	मुहम्मद नासिर ख़ान
तायदाद	2100
प्रकाशन वर्ष	दिसम्बर 2001
कम्पोज़िंग	इमरान कम्प्यूटर्स मुज़फ़्फ़र नगर (0131-442408)

>>>>>>>>>>>

प्रकाशक

फ़रीद बुक डिपो प्रा० लि०

422, मटिया महल, ऊर्दू मार्किट, जामा मस्जिद देहली 6

फ़ोन आफ़िस, 3289786,3289159, आवास, 3262486

मुख़्तसर फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

तफ़सीली फ़ेहरिस्ते मज़ामीन

(50) दुरूद शरीफ़ के फ़ज़ाइल

(51) मिलावट और नाप तौल में कमी

(56) छः क़ीमती नसीहतें

(56) मुस्लिम क़ौम आज कहां खड़ी है?

विश्लेषण और अमल की राह

بسم الله الرحمٰن الرحيم

तौबा

गुनाहों का तिर्याक़

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

हुज़ूरे पाक का सौ बार इस्तिग़फ़ार करना

وعن الا غر المزنى رضى الله عنه قال سمعت رسول الله صلى الله عليه وسلم يقول: انه ليغان على قلبى حتى استغفرالله فى اليوم مائة مرة. (مسلم)

हज़रत अग़र मुज़नी रज़ि. से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना कि आपने फ़रमाया: "कभी–कभी मेरे दिल पर भी बादल सा आ जाता है यहां तक कि मैं अल्लाह जिल्ल जलालुहू से रोज़ाना सौ बार इस्तिग़फ़ार करता हूं। यह कौन फ़रमा रहे हैं? वह ज़ात जिनको अल्लाह तआ़ला ने गुनाहों से पाक और मासूम पैदा फ़रमाया। आप से किसी गुनाह का सादिर होना मुम्किन ही नहीं, और अगर कभी आप से कोई भूल चूक हुई भी तो अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से यह ऐलान फ़रमा दिया गया कि आपकी अगली पिछली सब भूल चूक हमारी तरफ़ से माफ़ हैं, चुनांचे इरशाद है:

ليغفر لك الله ما تقدم من ذنبك و ما تاخر۔ (سورة الفتح ۲)

ताकि अल्लाह आपके अगले पिछले गुनाह माफ़ कर दे।

इसके बावजूद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमा रहे हैं कि मैं दिन में सौ बार इस्तिग़फ़ार करता हूँ। इस हदीस की तश्रीह में उलमा ने फ़रमाया कि इस हदीस में १०० का जो अ़दद आपने बयान फ़रमाया इस से गिन्ती बयान करना मक़्सुद नहीं है, बल्कि इस्तिग़फ़ार की कस्रत की तरफ़ इशारा मक़्सुद है।

गुनाहों के वस्वसे सब को आते हैं

फिर इस हदीस में इस्तिग़फ़ार करने की वजह भी बयान फ़रमा दी कि मैं इतनी कस्रत से इस्तिग़फ़ार इसलिये करता हूं कि कभी–कभी मेरे दिल पर भी बादल सा छा जाता है। मतलब यह है कि कभी–कभी इन्सानी तक़ाज़े की वजह से एक नबी के दिल में भी ख़्यालात और वसाविस पैदा हो सकते हैं। कोई आदमी नेकी और तक़्वे के कितने ही बुलन्द मक़ाम पर पहुँच जाए, लेकिन गुनाहों की झलकियों से नहीं बच सकता। नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मक़ाम तो बहुत आला और बुलन्द है, इस मक़ाम तक कोई पहुंच ही नहीं सकता, लेकिन जितने औलिया–ए–किराम, बड़े बड़े सूफ़िया और बुज़ुर्गाने दीन गुज़रे हैं, उनमें से कोई ऐसा नहीं कि उनके दिल में गुनाहों का कभी वस्वसा और ख़्याल भी न आया हो, और कोई ख़्वाहिश भी पैदा न हुई हो। लिहाज़ा गुनाहों की झलकियां तो बड़ों बड़ों को आती हैं, अलबत्ता फ़र्क़ यह होता है कि हम जैसे ग़ाफ़िल लोग, तो गुनाहों की ज़रा सी झलकी पर हथियार डाल देते हैं और गुनाह कर बैटते हैं। लेकिन जिन लोगों को अल्लाह तआ़ला तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाते हैं, उनको भी गुनाहों के ख़्यालात और वस्वसे आते हैं और दिल में गुनाहों के इरादे पैदा होते हैं। लेकिन अल्लाह ताआ़ला के फ़ज़्ल और मुजाहदे की बर्कत से वे ख़्यालात, वस्वसे और इरादे कमज़ोर हो जाते हैं। फिर वे इरादे इंसान पर ग़ालिब नहीं आते, जिसका नतीजा यह होता है कि गुनाहों का ख़्याल आने के

बावजूद उस ख़्याल पर अमल नहीं होता। हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के बारे में क़ुरआने करीम में है कि:

ولقد همت به و هم بها (سورة يوسف:٢٤)

यानी ज़ुलेख़ा ने गुनाह की दावत दी तो उस वक़्त हज़रत यूसुफ़ अलैहिस्सलाम के दिल में भी गुनाह का थोड़ा सा ख़्याल आ गया था लेकिन अल्लाह तआला ने उनको उस गुनाह से महफ़ूज़ रखा।

यह ख़्याल ग़लत है

लिहाज़ा तसव्वुफ़ व तरीक़त के बारे में यह नहीं समझना चाहिए कि इसमें क़दम रखने के बाद बुराइयों का बिल्कुल ख़ात्मा हो जायेगा और फिर गुनाहों का बिल्कुल ही ख़्याल नहीं आयेगा। बल्कि होता यह है कि मुजाहदा करने और मश्क़ करने के नतीजे में गुनाहों के तक़ाज़े मग़लूब और कमज़ोर हो जाते हैं और फिर उनका मुक़ाबला करना आसान हो जाता है। लिहाज़ा इस रास्ते में बड़ी कामयाबी यही है कि गुनाहों के तक़ाज़े मग़लूब और कमज़ोर पड़ जायें और इन्सान के ऊपर ग़ालिब न आने पायें। लेकिन यह सोचना कि मुजाहदा करने के बाद दिल में गुनाह का ख़्याल ही नहीं आयेगा, यह बात मुहाल (ना मुम्किन) है। यह कभी नहीं हो सकता।

जवानी में तौबा कीजिए

इसलिये कि अल्लाह तआला ने इन्सान के दिल में गुनाह का जज़्बा और तक़ाज़ा पैदा फ़रमाया है। क़ुरआने करीम में इरशाद है:

"فالهمها فجورها وتقواها" (سورة الشمس ٨)

यानी हमने इन्सान के दिल में गुनाह का भी तक़ाज़ा पैदा किया है और तक़वे का तक़ाज़ा भी पैदा किया है, इसी में इम्तिहान है। इसलिये अगर इन्सान के दिल से गुनाह का तक़ाज़ा बिल्कुल ख़त्म हो जाए और फ़ना हो जाए तो फिर गुनाहों से बचने में इन्सान का क्या कमाल हुआ। न तो नफ़्स से मुक़ाबला हुआ और न शैतान से मुक़ाबला हुआ, न इन से झगड़ा पेश आया, तो फिर जन्नत किसके

बदले मिलेगी? इसलिये जन्नत तो इसी बात का इनाम है कि दिल में गुनाहों के तक़ाज़े और जज़्बात पैदा हो रहे हैं लेकिन इन्सान उनको शिकस्त देकर अल्लाह के ख़ौफ़ और डर से और अल्लाह की अज़्मत और जलाल से उन तक़ाज़ों पर अमल नहीं करता। तब जाकर इन्सान का कमाल ज़ाहिर होता है। शैख़ सादी रह. फ़रमाते हैं:

वक़्ते पीरी गर्ग ज़ालिम मी श-वद परहेज़गार
दर जवानी तौबा करदन शेवा-ए-पैग़म्बरी

यानि बुढ़ापे में ज़ालिम भेड़िया भी मुत्तक़ी और परहेज़गार बन जाता है, इसलिये कि उस वक़्त न मुंह में दांत रहे और न पेट में आंत रही, अब ज़ुल्म करने की ताक़त ही नहीं है, इसलिये अब परहज़गार नहीं बनेगा तो और क्या बनेगा। लेकिन पैग़म्बरों का तरीक़ा यह है कि आदमी जवानी के अन्दर तौबा करे, जब कुव्वत और ताक़त मौजूद है और गुनाहों का तक़ाज़ा भी शिद्दत से पैदा हो रहा है, और गुनाहों के मौक़े भी मयस्सर हैं, लेकिन इसके बावजूद अल्लाह के ख़ौफ़ से आदमी गुनाहों से बच जाये, यह है पैग़म्बरों का तरीक़ा।

बुज़ुर्गों की सोहबत का असर

बाज़ लोग यह सोचते हैं कि कोई अल्लाह वाला हम पर ऐसी नज़र डाल दे और अपने सीने से लगा ले और सीने से अपने अन्वार मुन्तक़िल कर दे और इसके नतीजे में गुनाह का जज़्बा ही दिल से मिट जाए। याद रखो ऐसा कभी भी नहीं होगा, जो शख़्स इस ख़्याल में रहे वह धोखे में है, अगर ऐसा हो जाता तो फिर दुनिया में कोई काफ़िर बाक़ी न रहता, इसलिये कि फिर तसर्रुफ़ात के ज़रिये सारी दुनिया मुसलमान हो जाती।

हज़रत थानवी रह. की ख़िदमत में एक बार एक साहिब हाज़िर हुए और कहा कि हज़रत, कुछ नसीहत फ़रमा दीजिये, हज़रत ने नसीहत फ़रमा दी, फिर वह साहिब रुख़्सत होते हुए कहने लगे कि

हज़रत मुझे आप अपने सीने में से कुछ अता फ़रमा दीजिये, उनका मक़्सद यह था कि सीने में से कोई नूर निकल कर हमारे सीने में दाख़िल हो जाए और उसके नतीजे में बेड़ा पार हो जाए और गुनाहों की ख़्वाहिश ख़त्म हो जाए। हज़रत ने जवाब में फ़रमाया कि सीने में से क्या दूं मेरे सीने में तो बल्ग़म है, चाहिये तो ले लो। बहर हाल यह जो ख़्याल है कि किसी बुज़ुर्ग की निगाह पड़ गयी, या सीने में से कुछ मिल जायेगा तो सब बुराइयां दूर हो जायेंगी, यह ख़्याल बेकार है। यह ख़्याल एक पागल पन है।

अलबत्ता अल्लाह ने बुज़ुर्गों की सोहबत में तासीर ज़रूर रखी है कि उसके ज़रिये इन्सान की फ़िक्र और सोच का रुख़ बदल जाता है, जिसके नतीजे में इन्सान सही रास्ते पर चल पड़ता है, मगर काम ख़ुद ही करना होगा और अपने इख़्तियार से करना होगा।

हर वक़्त नफ़्स की निगरानी ज़रूरी है

बहर हाल, गुनाह के वस्वसों और इरादों का बिल्कुल ख़ात्मा नहीं हो सकता, चाहे किसी बड़े से बड़े मक़ाम तक पहुंच जाए अलबत्ता कमज़ोर ज़रूर पड़ जाते हैं। यही वजह है कि अगर कोई शख़्स सालों तक किसी बुज़ुर्ग की सोहबत में रहा और जो चीज़ बुज़ुर्गों की सोहबत में हासिल की जाती है, वह हासिल भी हो गई और तकमील भी हो गई और दिल में ख़ौफ़, डर और तक़्वा पैदा हो गया, अल्लाह के साथ निस्बत और ताल्लुक़ भी हासिल हो गया, इन सब चीज़ों के हासिल हो जाने के बावजूद इन्सान को हर क़दम पर अपनी निगरानी रखनी पड़ती है, यह नहीं है कि अब शैख़ बन गये और शैख़ से इजाज़त हासिल हो गई तो अब आप अपने आप से अपने नफ़्स से ग़ाफ़िल हो गये और यह सोचा कि अब तो हम पहुंच गये। उस मक़ाम पर पहुंच गये के अब तो नफ़्स और शैतान भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता, यह ख़्याल बिल्कुल ग़लत है, इसलिये कि शैख़ की सोहबत की बर्कत से इतना ज़रूर हुआ कि गुनाह का

इरादा और जज़्बा कमज़ोर पड़ गया, लेकिन नफ़्स की निगरानी फिर भी हर वक़्त रखनी पड़ती है। इसलिये कि किसी वक़्त भी यह तक़ाज़ा दौबारा ज़िन्दा होकर इन्सान को परेशान कर सकता है, इसलिये फ़रमाया कि:

अन्दरीं रह मी तराश व मी ख़राश
ता दमे आख़िर दमे फ़ारिग़ मबाश

यानी इस राह में कांट छांट हमेशा की है यहां तक कि आख़री सांस आने तक किसी वक़्त भी ग़ाफ़िल होकर मत बैठना। इसलिये कि यह नफ़्स किसी वक़्त भी इन्सान को धोखा दे सकता है।

एक लकड़-हारे का क़िस्सा

मस्नवी में मौलाना रूमी रह. ने एक क़िस्सा लिखा है कि एक लकड़–हारा था, जो जंगल से जाकर लकड़ियां काट कर लाया करता था और उनको बाज़ार में बेच देता था। एक बार जब लकड़ियां काट कर लाया, लकड़ियों के साथ एक बड़ा सांप भी लिपट कर आ गया, उसको पता नहीं चला, लेकिन जब घर पहुंचा तो तब उसने देखा कि एक सांप भी आ गया है, अलबत्ता उसमें जान नहीं थी। ऐसा मालूम हो रहा था कि वह मुर्दा है, इसलिये उस लकड़–हारे नें उसकी तरफ़ कोई ख़ास तवज्जोह नहीं दी, वहीं घर के अन्दर ही रहने दिया, बाहर निकालने की ज़रूरत महसूस नहीं की, लेकिन जब उसको गर्मी पहुंची तो उसके अन्दर हर्कत पैदा होनी शुरू हो गई और आहिस्ता आहिस्ता उसने रेंगना शुरू कर दिया। लकड़–हारा ग़फ़लत में लेटा हुआ था, उस सांप ने जाकर उसको डस लिया, अब घर वाले परेशान हुए कि यह तो मुर्दा सांप था, कैसे ज़िन्दा होकर इसने डस लिया?

नफ़्स भी एक अज़्दहा है

यह क़िस्सा नक़ल करने के बाद मौलाना रूमी रह. फ़रमाते हैं कि इन्सान के नफ़्स का भी यही हाल है, जब इन्सान किसी अल्लाह

वाले की सोहबत में रह कर मुजाहदे और रियाज़तें करता है तो इसके नतीजे में यह नफ़्स कमज़ोर हो जाता है, और ऐसा मालूम होता है कि यह अब मुर्दा हो चुका है, लेकिन हक़ीक़त में वह मुर्दा नहीं होता, अगर इंसान उसकी तरफ़ से ग़ाफ़िल हो जाए तो किसी भी वक़्त वह जिंदा होकर डस लेगा। चुनांचे मौलाना रूमी रह. फ़रमाते हैं किः

नफ़्स अज़्दहा अस्त मुर्दा अस्त
अज़ ग़मे बे आलती अफ़्सुरदा अस्त

यानी यह इन्सान का नफ़्स भी अज़्दहा के जैसा है, अभी मरा नहीं है लेकिन चूंकि मुजाहदे और रियाज़तें करने की चोटें इस पर पड़ी हैं इसलिये वह ठिठरा हुआ पड़ा हुआ है, लेकिन किसी वक़्त भी ज़िन्दा होकर डस लेगा। इसलिये किसी लम्हे भी नफ़्स से ग़ाफ़िल होकर मत बैठो।

गुनाहों का तिर्याक़ इस्तिग़फ़ार और तौबा

लेकिन जिस तरह अल्लाह तआला ने नफ़्स और शैतान दो ज़हरीली चीज़ें पैदा फ़रमाई हैं, जो इसको परेशान और ख़राब करती हैं, और दोज़ख़ के अज़ाब की तरफ़ इन्सान को लेजाना चाहती हैं, इसी तरह इन दोनों का तिर्याक़ भी बड़ा ज़बरदस्त पैदा फ़रमाया। अल्लाह तआला की हिक्मत से यह बात दूर थी कि ज़हर तो पैदा फ़रमा देते और उसका तिर्याक़ पैदा न फ़रमाते, और वह तिर्याक़ इतना ज़बरदस्त पैदा फ़रमाया कि फ़ौरन उस ज़हर का असर ख़त्म कर देता है। वह तिर्याक़ है "इस्तिग़फ़ार" "तौबा" लिहाज़ा जब भी यह नफ़्स का सांप तुम्हें डसे या इसके डसने का अंदेशा हो तो तुम फ़ौरन यह तिर्याक़ इस्तेमाल करते हुए कहोः

استغفر الله ربي من كل ذنب و اتوب اليه

"अस्तग़्फ़िरुल्ला-ह रब्बी मिन कुल्लि ज़म्बिंव्-व अतूबु इलैही"

यह तिर्याक़ उस ज़हर का सारा असर ख़त्म कर देगा। बहर

हाल जो बीमारी या ज़हर अल्लाह तआला ने पैदा फ़रमाया उसका तिर्याक़ भी पैदा फ़रमाया।

कुदरत का अ़जीब करिश्मा

एक बार मैं दक्षिण अफ़रीक़ा में कैप टाऊन के इलाक़े में रेल गाड़ी पर सफ़र कर रहा था, रास्ते में एक जगह पहाड़ी इलाक़े में गाडी रुक गई, हम नमाज़ के लिये नीचे उतरे, वहां मैंने देखा कि एक ख़ूबसूरत पौधा है, उसके पत्ते बहुत ख़ूबसूरत थे और वह पौधा हसीन व जमील मालूम हो रहा था, बे इख़्तियार दिल चाहा कि उसके पत्तों को तोड़ लें, मैंने जैसे ही उसके पत्ते को तोड़ने के लिये हाथ बढ़ाया तो मेरे जो रहनुमा थे वह एक दम ज़ोर से चीख़ पड़े कि हज़रत इसको हाथ मत लगाइयेगा, मैंने पुछा क्यों? उन्हों ने बताया कि यह बहुत ज़हरीली झाड़ी है, इसके पत्ते देखने में तो बहुत ख़ुश्नुमा हैं लेकिन यह इतना ज़हरीला है कि इसके छूने से इन्सान के जिस्म में ज़हर चढ़ जाता है, और जिस तरह बिच्छू के डसने से ज़हर की लहरें उठती हैं इसी तरह इसके छूने से भी लहरें उंठती हैं। मैंने कहा कि अल्लाह का शुक्र है कि मैंने हाथ नहीं लगाया, और पहले से मालूम हो गया, यह तो बड़ी ख़तरनाक चीज़ है। देखने में बड़ी ख़ूबसूरत है, फिर मैंने उस से कहा कि यह मामला तो बड़ा ख़तरनाक है, इसलिय कि आपने मुझे तो बता दिया, जिसकी वजह से मैं बच गया लेकिन अगर कोई अन्जान आदमी जाकर इसको हाथ लगा दे, वह तो मुसीबत और तक्लीफ़ में मुब्तला हो जाएगा। इस पर उन्हों ने इस से भी ज़्यादा अ़जीब बात बताई, वह यह कि अल्लाह तआ़ला की कुदरत का अ़जीब करिश्मा है कि जहां कहीं यह ज़हरीली झाड़ी होती है तो इसकी जड़ में आस पास ज़रूर ही एक पौधा और होता है इसलिये अगर किसी शख़्स का हाथ इस ज़हरीले पौधे पर लग जाये तो वह फ़ौरन उस दूसरे पौधे के पत्ते को हाथ लगा दे, उसी वक़्त इसका ज़हर ख़त्म हो जाएगा। चुनांचे उन्हों ने उसी की

जड़ में वह दूसरा पौधा भी दिखाया कि यह इसका तिर्याक़ है।

पस यही मिसाल है हमारे गुनाहों की और इस्तिग़फ़ार की और तौबा की, इसलिये जहां कहीं गुनाह का ज़हर चढ़ जाये तो फ़ौरन तौबा इस्तिग़फ़ार का तिर्याक़ इस्तेमाल करो, उसी वक़्त उस गुनाह का ज़हर उतर जायेगा।

ज़मीन के ख़लीफ़ा को तिर्याक़ देकर भेजा

हमारे हज़रत डा. अ़ब्दुल हई साहिब रह. ने एक मर्तबा इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने इन्सान के अन्दर गुनाह की सलाहियत रखी है, और फिर उसको ख़लीफ़ा बना कर दुनिया में भेजा और जिस मख़्लूक़ में गुनाह करने की सलाहियत नहीं थी उसको अपना ख़लीफ़ा बनाने का अहल भी क़रार नहीं दिया, यानि फ़रिश्ते कि उनके अन्दर गुनाह करने की सलाहियत और अहलियत मौजूद नहीं तो वे ख़िलाफ़त के भी अहल नहीं, और इन्सान के अन्दर गुनाह की सलाहियत भी रखी और दुनिया के अन्दर भेजने से पहले नमूने और मश्क़ के तौर पर एक ग़लती भी करवाई गई। चुनांचे जब हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को जन्नत में भेजा गया तो कह दिया गया कि पूरी जन्नत में जहां चाहो जाओ, जो चाहो खाओ, मगर इस दरख़्त को मत खाना। उसके बाद शैतान जन्नत में पहुंच गया और उसने हज़रत आदम अ़लैहिस्सलाम को बहका दिया जिसके नतीजे में उन्हों ने उस दरख़्त को खा लिया और ग़लती ज़ाहिर हो गई। यह ग़लती उनसे करवाई गई, इसलिए कि कोई काम अल्लाह तआ़ला की चाहत के बग़ैर नहीं हो सकता। लेकिन ग़लती करवाने के बाद उनके अन्दर शर्मिन्दगी पैदा हुई कि या अल्लाह मुझ से कैसी ग़लती हो गई, उसके बाद अल्लाह तआ़ला ने चन्द कलिमे सिखाए और उनसे फ़रमाया कि अब तुम ये कलिमात कहो:

رَبَّنَا ظَلَمْنَآ اَنْفُسَنَا وَاِنْ لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَ تَرْحَمْنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الْخَاسِرِيْنَ۔

(سورۃ الاعراف)

"रब्बना ज़लम्ना अन्फु–सना व इल्लम तग़फ़िर लना व तर्हम्ना ल–नकूनन्–ना मिनल ख़ासिरीन"

कुरआने करीम में यह फ़रमाया है कि हमने ये कलिमात हज़रत आदम अलैहिस्सलाम को सिखाये, यह भी तो अल्लाह तआ़ला की कुदरत में था कि ये कलिमे उनको सिखाए बग़ैर और उन से कहलवाये बग़ैर वैसे ही माफ़ फ़रमा देते, और उन से कह देते कि हमने तुम्हें माफ़ कर दिया, लेकिन अल्लाह तआ़ला ने ऐसा नहीं किया, क्यों? हमारे हज़रत डा. साहिब फ़रमाया करते थे कि अल्लाह तआ़ला ने यह सब कुछ करा कर उनको बता दिया कि जिस दुनिया में तुम जा रहे हो वहां यह सब कुछ होगा, वहां भी शैतान तुम्हारे पास आयेगा और नफ़्स भी लगा हुआ होगा और कभी तुम से कोई गुनाह करायेगा और कभी कोई गुनाह करायेगा, और तुम जब तक उनके लिए अपने साथ तिर्याक़ लेकर नहीं जाओगे उस वक़्त तक दुनिया में सही जिन्दगी नहीं गुज़ार सकोगे। वह तिर्याक़ है इस्तिग़फ़ार और तौबा। इसलिए ग़लती और इस्तिग़फ़ार दोनों चीज़ें उनको सिखा कर फिर फ़रमाया कि अब दुनिया में जाओ। और यह तिर्याक़ भी बहुत आसान है कि ज़बान से इस्तिग़फ़ार कर ले तो इन्शा अल्लाह वह गुनाह माफ़ हो जायेगा।

तौबा तीन चीज़ों का मज्मूआ है

आम तौर पर दो लफ़्ज़ इस्तेमाल होते हैं, एक इस्तिग़फ़ार एक तौबा। असल इनमें से तौबा है और इस्तिग़फ़ार उस तौबा की तरफ़ जाने वाला रास्ता है, और यह तौबा तीन चीज़ों का मज्मूआ होती है। जब तक ये तीन चीज़ें जमा न हों, उस वक़्त तक तौबा कामिल नहीं होती। एक यह कि जो ग़लती और गुनाह हो गया है, उस पर नदामत और शर्मिन्दगी हो। पशेमानी और दिल तोड़ना हो। दूसरे यह कि जो गुनाह हुआ हो उसको फ़िल्हाल फ़ौरन छोड़ दे, और तीसरे यह कि आइन्दा गुनाह न करने का कामिल इरादा हो। जब ये तीन

चीज़ें जमा हो जायें तब तौबा मुकम्मल होती है। जब तौबा कर ली तो वह तौबा करने वाला सख़्श गुनाह से पाक हो गया। हदीस शरीफ़ में है कि:

التائب من الذنب كمن لا ذنب له (ابن ماجه)

यानी जिसने गुनाह से तौबा कर ली वह ऐसा हो गया जैसे उसने गुनाह किया ही नहीं। सिर्फ़ यह नहीं कि उसकी तौबा क़बूल कर ली और आमाल नामे के अन्दर यह लिख दिया कि इसने फ़लां गुनाह किया था वह गुनाह माफ़ कर दिया गया, बल्कि अल्लाह तआ़ला की रहमत और करम देखिए कि तौबा करने वाले के आमाल नामे ही से वह गुनाह मिटा देते हैं, और आख़िरत में उस गुनाह का ज़िक्र फ़िक्र भी नहीं होगा कि इस बन्दे ने फ़लां वक़्त में फ़लां गुनाह किया था।

"किरामन् कातिबीन" में एक अमीर एक मामूर

बल्कि मैंने एक बात अपने शैख़ से सुनी, किसी किताब में नहीं देखी। वह यह कि हर इन्सान के साथ ये जो दो फ़रिश्ते हैं जिनको किरामन् कातिबीन कहा जाता है। जो इन्सान की नेकियां और बुराइयां लिखते हैं, दायीं तरफ़ वाला फ़रिश्ता नेकियां लिखता है और बायीं तरफ़ वाला फ़रिश्ता बुराइयां लिखता है। तो मेरे शैख़ ने फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला ने दायीं तरफ़ वाले फ़रिश्ते को बायीं तरफ़ वाले फ़रिश्ते का अमीर मुक़र्रर किया है। इसलिए कि अल्लाह तआ़ला का हुक्म है कि जहां कहीं दो आदमी मिल कर काम करें तो उनमें से एक अमीर हो और दूसरा मामूर हो। लिहाजा जब इन्सान कोई नेक अ़मल करता है तो दायीं तरफ़ वाला फ़रिश्ता फ़ौरन उस नेकी को लिख लेता है, इसलिये कि उसको नेकी लिखने में दूसरे फ़रिश्ते से पूछने की हाजत और ज़रूरत नहीं, क्योंकि वह अमीर है। और बायीं तरफ़ वाला फ़रिश्ता चूंकि दायीं तरफ़ वाले का मातहत है इसलिए जब बन्दा कोई गुनाह और ग़लती करता है, तो बायीं तरफ़

वाला फ़रिश्ता दायीं तरफ़ वाले फ़रिश्ते से पूछता है कि इस बन्दे ने फ़लां गुनाह किया है मैं उसको लिखूं या नहीं? तो दायीं तरफ़ वाला फ़रिश्ता कहता है, नहीं अभी मत लिखो, अभी ठहर जाओ, हो सकता है कि यह बन्दा तौबा कर ले। अगर लिख लोगे तो फिर मिटाना पड़ेगा। थोड़ी देर के बाद फिर पूछता है कि अब लिख लूं? वह कहता है कि ठहर जाओ, हो सकता है कि यह तौबा कर ले, फिर जब तीसरी बार यह फ़रिश्ता पूछता है और बन्दा उस वक़्त तक तौबा नहीं करता तो उस वक़्त कहता है कि अब लिख लो।

अगर तू सौ बार तौबा तोड़े फिर भी वापस आ

अल्लाह तआला की रहमत यह है कि बन्दे को गुनाह के बाद मोहलत देते हैं कि वह गुनाह से तौबा कर ले, माफ़ी मांग ले। ताकि उसके आमाल नामे में लिखना ही न पड़े, लेकिन कोई सख़्श अगर तौबा न करे तो लिख दिया जाता है, और उसके लिखने के बाद भी मरते दम तक दरवाज़ा खुला है कि जब चाहो तौबा कर लो। उसको अपने आमाल नामे से मिटवा लो। एक बार जब सच्चे दिल से तौबा कर लोगे तो गुनाह तुम्हारे आमाल नामे से मिटा दिया जाएगा, और जब तक मरने के क़रीब की हालत और ग़रग़रे की हालत तारी न हो, उस वक़्त तक तौबा का दरवाज़ा खुला है, अल्लाहु अक्बर, कैसे करीम और रहीम की बारगाह है। फ़रमायाः

बाज़ आ बाज़ आ हर आंचे हस्ती बाज़ आ
गर काफ़िर व गिबर व बुत परस्ती बाज़ आ
ए दरगह मा दरगह नौ उम्मीदी नैस्त
सद बार गर तौबा शकिस्ती बाज़ आ

अगर सौ बार तौबा टूट गई है, तो फिर तौबा कर लो, और गुनाह से रुक जाओ। तौबा का दरवाज़ा खुला है।

रात को सोने से पहले तौबा कर लिया करो

हमारे एक बुज़ुर्ग गुज़रे हैं हज़रत बाबा नजम अह्सन साहिब रह.

जो हज़रत थानवी रह. के ख़लीफ़ा थे, बड़े अजीब व ग़रीब बुज़ुर्ग थे। जिन लोगों ने उनकी ज़ियारत की है वे उनके मक़ाम से वाक़िफ़ हैं। अल्लाह तआ़ला ने उनको अ़जीब अक़्ल व समझ अ़ता फ़रमाई थी, अ़जीब बातें इरशाद फ़रमाया करते थे। एक दिन वह तौबा पर बयान फ़रमा रहे थे, मैं भी क़रीब में बैठा हुआ था। उनके छोटे छोटे चुटकले हुआ करते थे। एक आज़ाद मनश नौजवान उस मज्लिस में आ गया। वह अपने किसी मक़्सद से आया था, मगर यह अल्लाह वाले तो हर वक़्त सिखाने और तरबियत करने की फ़िक्र में रहते हैं। चुनांचे उस नौजवान से फ़रमाने लगे कि मियां! लोग समझते हैं कि यह दीन बड़ा मुश्किल है, अरे यह दीन कुछ भी मुश्किल नहीं, बस रात को बैठ कर अल्लाह तआ़ला से तौबा कर लिया करो। बस यही सारा दीन है।

गुनाह का अन्देशा इरादे के मनाफ़ी नहीं

जब वह नौजवान चला गया तो मैंने कहा कि हज़रत! यह तो वाक़ई बड़ा अ़जीब व ग़रीब चीज़ है। लेकिन दिल में एक सवाल रहता है जिसकी वजह से बेचेनी रहती है। फ़रमाने लगे कि क्या? मैंने कहा कि हज़रत! तौबा की तीन शर्तें हैं। एक यह कि दिल में शर्मिन्दगी हो, दूसरे यह कि फ़ौरन उस गुनाह को छोड़ दे, तीसरे यह कि आइन्दा के लिए यह अ़हद कर ले कि आइन्दा यह गुनाह कभी नहीं करूंगा। इनमें से पहली दो बातों पर तो अ़मल करना आसान है कि गुनाह पर शर्मिन्दगी भी हो जाती है और उस गुनाह को उस वक़्त छोड़ भी दिया जाता है लेकिन तीसरी शर्त कि यह पक्का अ़हद करना कि आइन्दा यह गुनाह नहीं करूंगा, यह बड़ा मुश्किल मालूम होता है, और पता नहीं चलता कि यह सही पक्का इरादा सही हुआ या नहीं? और जब सही इरादा नहीं हुआ तो तौबा भी सही नहीं हुई, और जब तौबा सही नहीं हुई तो उस गुनाह के बाक़ी रहने और उसके माफ़ न होने की परेशानी रहती है।

जवाब में हज़रत बाबा नजम अहसन साहिब रह. ने फरमायाः जाओ मियां, तुम तो पक्के इरादे का मतलब भी नहीं समझते, पक्के इरादे का मतलब यह है कि अपनी तरफ़ से यह इरादा कर लो कि आइन्दा यह गुनाह नहीं करूंगा, अब अगर यह इरादा करते वक़्त दिल में यह धड़का और अन्देशा लगा हुआ है कि पता नहीं कि मैं इस इरादे पर साबित क़दम रह सकूंगा या नहीं? तो अन्देशा और धड़का इस इरादे के मनाफ़ी नहीं, और उस अन्देशे और ख़तरे की वजह से तौबा में कोई नुक़्स नहीं आता, शर्त यह है कि अपनी तरफ़ से पुख़्ता इरादा कर लिया हो, और दिल में जो यह ख़तरा लगा हुआ है इसका इलाज यह है कि तौबा करने के साथ साथ अल्लाह तआ़ला से दुआ़ कर लो कि या अल्लाह, मैं तौबा तो कर रहा हूं और आइन्दा न करने का इरादा तो कर रहा हूं लेकिन में क्या? और मेरा इरादा क्या? मैं कमज़ोर हूं। मालूम नहीं कि इस इरादे पर जमा रह सकूंगा या नहीं? या अल्लाह, आप ही मुझे इस इरादे पर साबित क़दम फ़रमा दीजिये। आप ही मुझे इस पर जमना अ़ता फ़रमायें, जब यह दुआ़ कर ली तो इन्शा अल्लाह वह ख़तरा और अन्देशा ख़त्म हो जायेगा।

हक़ीक़त यह है कि जिस वक़्त हज़रत बाबा साहिब ने यह बात फ़रमायी, उसके बाद से दिल में ठन्डक पड़ गई।

मायूस मत हो जाओ

हज़रत सिर्री सक़्ती रह. जो बड़े दर्जे के अल्लाह के वलियों में से हैं। हज़रत जुनैद बग़दादी रह. के शैख़ हैं, वह फ़रमाते हैं कि जब तक तुम्हें गुनाहों से डर लगता हो, और गुनाह करके दिल में शर्मिन्दगी पैदा होती हो, उस वक़्त तक मायूसी का कोई जवाज़ नहीं। हां, यह बात बड़ी खतरनाक है कि दिल से गुनाह का डर मिट जाये और गुनाह करने के बाद दिल में कोई शर्मिन्दगी पैदा न हो, और इन्सान गुनाह पर सीना ज़ोरी करने लगे, और उस गुनाह को

जायज़ करने के लिए बहाने करना शुरू कर दे। अलबत्ता जब तक दिल में शर्मिन्दगी पैदा होती हो उस वक़्त तक मायूसी का कोई रास्ता नहीं। हमारे हज़रत यह शेर पढ़ा करते थे किः

सूए नो उम्मीदी मरो कि उम्मीद हास्त
सूए तारीकी मरो कि खुर्शीद हास्त

यानी ना उम्मीदी की तरफ़ मत जाओ, क्योंकि उम्मीद के रास्ते बेशुमार हैं, अन्धेरे की तरफ़ मत जाओ क्योंकि बेशुमार सूरज मौजूद हैं। लिहाज़ा तौबा कर लो तो गुनाह सब ख़त्म हो जायेंगे।

शैतान मायूसी पैदा करता है

और जब तक अल्लाह तआला ने तौबा का दरवाज़ा खोला हुआ है तो फिर मायूसी कैसी? यह जो कभी कभी हमारे दिल में ख़्याल आता है कि हम तो बड़े मर्दूद हो गये हैं, हम से अमल वग़ैरह होते नहीं हैं। गुनाहों में मुब्तला हैं, इस ख़्याल के बाद मायूसी दिल में पैदा हो जाती है। याद रखो यह मायूसी भी पैदा करना शैतान की चाल है, अरे तुम यह देखो कि जिस बन्दे का मालिक इतना रहमान और रहीम है कि उसने मरते दम तक तौबा का दरवाज़ा खोल दिया है और यह ऐलान कर दिया है कि जो बन्दा तौबा कर लेगा उसके गुनाह आमाल नामे से भी मिटा देंगे। क्या वह बन्दा फिर भी मायूस हो जाये? उसको मायूस होने की कोई ज़रूरत नहीं। बस अल्लाह तआला की बारगाह में हाज़िर होकर इस्तिग़फ़ार करे और तौबा करे, सब गुनाह माफ़ हो जायेंगे।

ऐसी तैसी मेरे गुनाहों की

अरे इन गुनाहों की क्या हक़ीक़त है? तौबा के ज़रिये एक मिनट में सब उड़ जाते हैं, चाहे बड़े से बड़े गुनाह क्यों न हों। वही हज़रत बाबा नजम अहसन साहिब क़द्दसल्लाहु सिर्रहू बड़े अच्छे शायर भी थे। उनके शेर हम जैसे लोगों के लिए बड़ी तसल्ली के शेर होते थे। उनका एक शेर है:

दौलतें मिल गयी हैं आहों की
ऐसी तैसी मेरे गुनाहों की

यानी जब अल्लाह तआ़ला ने आहों की दौलत अ़ता फ़रमा दी कि दिल शर्मिन्दगी से सुलग रहा है और इन्सान अल्लाह तआ़ला के सामने हाज़िर है, और अपने गुनाहों की माफ़ी मांग रहा है, और शर्मिन्दगी का इज़हार कर रहा है, तो फिर ये गुनाह हमारा क्या बिगाड़ लेंगे? लिहाज़ा जब तौबा का रास्ता खुला हुआ है तो अब मायूसी का यहां गुज़र नहीं।

इस्तिग़फ़ार का मतलब

बहर हाल, तौबा के अन्दर तीन चीज़ें शर्त हैं, उनके बग़ैर तौबा कामिल नहीं होती।

दूसरी चीज़ है "इस्तिग़फ़ार" यह इस्तिग़फ़ार तौबा के मुक़ाबले में आ़म है, इस्तिग़फ़ार के मायने यह हैं कि अल्लाह तआ़ला से मग़फ़िरत की दुआ़ मांगना, अल्लाह तआ़ला से बख़्शिश मांगना। हज़रत इमाम ग़ज़ाली रह. फ़रमाते हैं कि "इस्तिग़फ़ार" के अन्दर ये तीन चीज़ें शर्त नहीं बल्कि इस्तिग़फ़ार हर इन्सान हर हालत में कर सकता है। जब कोई ग़लती हो जाए या दिल में कोई वस्वसा पैदा हो जाए, या इबादत में कोताही हो जाये, या किसी भी तरह की कोई ग़लती हो जाए, तो फ़ौरन इस्तिग़फ़ार करे और कहे कि:

استغفر الله ربی من کل ذنب و اتوب الیه

"अस्तग़्फ़िरुल्ला-ह रब्बी मिन कुल्लि ज़म्बिंव्-व अतूबु इलैही"

क्या ऐसा शख़्स मायूस हो जाए?

इमाम ग़ज़ाली रह. फ़रमाते हैं कि मोमिन के लिए असल रास्ता तौबा है कि वह तौबा करे, और तीनों शर्तों के साथ करे, लेकिन कभी–कभी एक शख़्स बहुत से गुनाह छोड़ देता है और जिन गुनाहों में मुब्तला है उनको भी छोड़ने की कोशिश में लगा हुआ है लेकिन

एक गुनाह ऐसा रह गया जिसको छोड़ने पर कोशिश के बावजूद वह क़ादिर नहीं हो पा रहा है, बल्कि हालात या माहौल की वजह से मग़्लूब है और उस गुनाह को नहीं छोड़ पा रहा है। अब सवाल यह है कि क्या ऐसा शख़्स तौबा से मायूस और ना उम्मीद होकर बैठ जाए, कि मैं इसके छोड़ने पर क़ादिर नहीं, इसलिए मैं तो तबाह हो गया?

हराम रोज़गार वाला शख़्स क्या करे?

जैसे एक शख़्स बैंक में मुलाज़िम है और बैंक की मुलाज़मत ना जायज़ और हराम है, इसलिए कि सूद की आमदनी है। जब वह दीन की तरफ़ आया और आहिस्ता आहिस्ता उस ने बहुत से गुनाह छोड़ दिये, नमाज़ रोज़ा शुरू कर दिया और शरीअ़त के दूसरे हुक्मों पर भी अ़मल करना शुरू कर दिया। अब वह दिल से तो यह चाहता है कि मैं अब इस हराम आमदनी से भी किसी तरह बच जाऊं और बैंक की मुलाज़मत छोड़ दूं लेकिन उसके बीवी बच्चे हैं उनके ख़र्च और हुक़ूक़ की ज़िम्मेदारी भी उसके ऊपर है, अब अगर वह मुलाज़मत छोड़ कर अलग हो जाये तो ख़तरा इस बात का है कि परेशानी और तक्लीफ़ में मुब्तला हो जाये, जिसकी वजह से वह बैंक की मुलाज़मत छोड़ने पर क़ादिर नहीं हो रहा है, अलबत्ता दूसरी जायज़ मुलाज़मत की तलाश में भी लगा हुआ है। (बल्कि मैं तो यह कहता हूं कि ऐसा शख़्स दूसरी मुलाज़मत इस तरह तलाश करे जिस तरह एक बेरोज़गार आदमी मुलाज़मत तलाश करता है) तो क्या ऐसा सख़्श मायूस होकर बैठ जाए? इसलिए कि मजबूरी की वजह से मुलाज़मत छोड़ नहीं सकता, जिसकी वजह से छोड़ने का पक्का इरादा भी नहीं कर सकता, जब कि तौबा के अन्दर छोड़ने पर पक्का इरादा करना शर्त है, तो क्या ऐसे मुब्तला सख़्श के लिए तौबा का कोई रास्ता नहीं है?

तौबा नहीं, इस्तिग़फ़ार करे

इमाम ग़ज़ाली रह. फ़रमाते हैं कि ऐसे शख़्स के लिए भी रास्ता मौजूद है, वह यह कि संजीदगी से कोशिश करने के बावजूद जब तक कोई जायज़ और हलाल रोज़गार नहीं मिलता, उस वक़्त तक मुलाज़मत न छोड़े, लेकिन साथ साथ इस पर इस्तिग़फ़ार भी करता रहे, उस वक़्त तौबा नहीं कर सकता, इसलिए कि तौबा के लिए गुनाह का छोड़ना शर्त है और यहां वह मुलाज़मत छोड़ने पर क़ादिर नहीं, इसलिए तौबा नहीं हो सकती, अलबत्ता अल्लाह तआला से इस्तिग़फ़ार करे, और यह कहे कि या अल्लाह, यह काम तो ग़लत और गुनाह है, मुझे इस पर नदामत और शर्मिन्दगी भी है, लेकिन या अल्लाह मैं मजबूर हूं और इसके छोड़ने पर क़ादिर नहीं हो रहा हूं मुझे अपनी रहमत से माफ़ फ़रमा दीजिये और मुझे इस गुनाह से निकाल दीजिए। इमाम ग़ज़ाली रह. फ़रमाते हैं कि जो आदमी यह काम करेगा तो इन्शा अल्लाह एक न एक दिन आगे चल कर उस गुनाह को छोड़ने की तौफ़ीक़ हो ही जाएगी, और एक हदीस से दलील पकड़ी है वह यह कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

ما اصر من استغفر (ترمذی شریف)

यानी जो शख़्स इस्तिग़फ़ार करे वह इसरार करने वालों में शुमार नहीं होता, इसी बात को क़ुरआने करीम में अल्लाह तआला ने इस तरह बयान फ़रमाया कि:

والذین اذا فعلوا فاحشة او ظلموا انفسهم ذکروا الله فا ستغفروا الذنوبهم ومن یغفر الذنوب الاالله و لم یصروا علیٰ ما فعلوا و هم یعلمون۰ (ال عمران)

यानी अल्लाह के नेक बन्दे वे हैं कि अगर कभी उन से ग़लती हो जाए या अपनी जानों पर ज़ुल्म कर लें तो उस वक़्त वे अल्लाह को याद करते हैं और अल्लाह के सिवा कौन है जो गुनाहों की मग़फ़िरत करे, और जो गुनाह उन्हों ने किया है उस पर इसरार नहीं

करते और वे जानते हैं।

इसलिए इस्तिग़फ़ार तो हर हाल में करते रहना चाहिए। अगर किसी गुनाह के छोड़ने पर कुदरत नहीं हो रही है तब भी इस्तिग़फ़ार न छोड़े, बाज़ बुज़ुर्गों ने यहां तक फ़रमाया कि जिस ज़मीन पर गुनाह और ग़लती ज़ाहिर हुई उस ज़मीन पर इस्तिग़फ़ार कर ले ताकि जिस वक़्त वह ज़मीन तुम्हारे गुनाहों की गवाही दे वह तुम्हारे इस्तिग़फ़ार की भी गवाही दे कि इस बन्दे ने हमारे सामने इस्तिग़फ़ार भी कर लिया था।

इस्तिग़फ़ार के बेहतरीन अल्फ़ाज़

नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर कुरबान जाएं आप इस्तिग़फ़ार के लिए ऐसे ऐसे अल्फ़ाज़ उम्मत को सिखा गये कि अगर कोई इन्सान अपने ज़ेहन से सोच कर उन अल्फ़ाज़ तक पहुंचने की कोशिश भी करता तो नहीं पहुंच सकता था। चुनांचे फ़रमाया कि:

رب اغفر وارحم واعف عنا وتكرم و تجاوز عما تعلم فانك تعلم ما لا نعلم، انك انت الاعز الاكرم.

यानी ऐ अल्लाह मेरी मग़फ़िरत फ़रमाइये और मुझ पर रहम फ़रमा दीजिये, इसलिए कि आपके इल्म में हमारे वे गुनाह भी हैं जिनका इल्म हमें भी नहीं है, बेशकर आप ही सब से ज़्यादा इज़्ज़त वाले और मुकर्रम हैं।

जब हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम सफ़ा और मर्वा के दरमियान सई किया करते थे उस वक़्त आप मीलेन अख़्ज़रेन (हरे निशानों) के दरमियान यह दुआ पढ़ा करते थे।

देखिए बहुत से गुनाह ऐसे होते हैं जो हकीकत में गुनाह हैं लेकिन हमें उनके गुनाह होने का एहसास नहीं होता, और कभी–कभी इल्म नहीं होता, अब कहां तक इन्सान अपने गुनाहों का शुमार करके उनका इहाता करेगा, इसलिए दुआ में फ़रमा दिया कि जितने गुनाह

आपके इल्म में हैं, या अल्लाह उन सब को माफ़ फ़रमा।

सय्यिदुल् इस्तिग़फ़ार

बेहतर यह है कि सय्यिदुल् इस्तिग़फ़ार (इस्तिग़फ़ार का सरदार) को याद कर लें और इसे पढ़ा करें, इसका मामूल बना लें:

اللّٰهم انت ربی لا الٰه الا انت خلقتنی و انا عبدك و انا علیٰ عهدك ووعدك ما استطت، اعوذ بك من شر ما صنعت ابوء الیك بنعمتك علی وابوء لك بذنبی، فاغفر لی ذنوبی فانه لا یغفر الذنوب الا انت۔

जिसका तर्जुमा यह है कि:

या अल्लाह आप मेरे परवर्दिगार हैं आपके सिवा कोई माबूद नहीं, आपने मुझे पैदा किया मैं आपका बन्दा हूं और मैं जहां तक हो सका आप से किये हुए अहद और वायदे पर क़ायम हूं, मैंने जो कुछ किया उसकी बुराई से आपकी पनाह मांगता हूं, आपने जो नेमतें मुझे अता फ़रमायीं उन्हें लेकर आप से रुजू करता हूं इसलिये मेरे गुनाह माफ़ फ़रमा दीजिए, क्योंकि आपके सिवा कोई गुनाह की मग़फ़िरत नहीं करता।

हदीस शरीफ़ में है कि जो शख़्स सुबह के वक़्त इसको पूरे यक़ीन के साथ पढ़े तो अगर शाम तक उसका इन्तिक़ाल हो गया तो वह सीधा जन्नत में जायेगा, और अगर कोई शख़्स शाम के वक़्त पढ़ ले और सुबह तक उसका इन्तिक़ाल हो गया तो सीधा जन्नत में जायेगा। इसलिए सुबह शाम सय्यिदुल इस्तिग़फ़ार पढ़ने का मामूल बना लें, बल्कि हर नमाज़ के बाद इसको एक बार पढ़ लिया करें कि इसको हुज़ूरे अक़दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सय्यिदुल इस्तिग़फ़ार का लक़ब दिया। यानी यह तमाम इस्तिग़फ़ारों का सरदार है। जब इस्तिग़फ़ार के ये कलिमे अल्लाह तआला अपने नबी को सिखा रहे हैं और नीब-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम अपनी उम्मत को सिखा रहे हैं तो फिर अल्लाह तआला इस इस्तिग़फ़ार के ज़रिये अपने बन्दों को नवाज़ना ही चाहते हैं और मग़फ़िरत करना ही

चाहते हैं, इसलिए इसको मामूलात में ज़रूर शामिल करें। अगर चाहें तो इस्तिग़फ़ार के मुख़्तसर अल्फ़ाज़ भी याद कर लें, वे ये हैं:

استغفر الله ربی من کل ذنب و اتوب الیه

"अस्तग़्फ़िरुल्ला-ह रब्बी मिन कुल्लि ज़म्बिन् व अतूबु इलैहि"

और अगर सिर्फ़ "अस्तग़्फ़िरुल्ला-ह" ही पढ़ लिया करें तो भी ठीक है।

बेहतरीन हदीस

عن ابی هريرة رضی الله تعالیٰ عنه قال: قال رسول الله صلی الله عليه وسلم والذی نفسی بيده لو لم تذنبوا لذهب الله تعالیٰ بكم، ولجاء بقوم يذنبون فيستغفرون الله تعالیٰ فيغفر لهم (مسلم شريف)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है, (हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को जब कोई बात ज़ोर देकर ताकीद और एहतिमाम के साथ बयान करनी मक़्सूद होती तो क़सम खाकर वह बयान फ़रमाते, और क़सम में भी ये अल्फ़ाज़ फ़रमाते कि उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में मेरी जान है) अगर तुम बिल्कुल गुनाह न करो तो अल्लाह तआला तुम्हारा वजूद ख़त्म कर दे और ऐसे लोगों को पैदा करे कि जो गुनाह करें और फिर इस्तिग़फ़ार करें और फिर अल्लाह तआला उनकी मग़फ़िरत फ़रमा दें।

इन्सान के अन्दर गुनाह की सलाहियत पैदा की

इस हदीस में इस बात की तरफ़ इशारा फरमा दिया कि अगर इनसान की पैदाइश से यह मक़्सूद होता कि हम ऐसी मख़्लूक़ पैदा करें जिसके अन्दर गुनाह करने की सलाहियत ही मौजूद न हो तो फिर इन्सान को पैदा करने की ज़रूरत ही नहीं थी, फिर तो फ़रिश्ते भी काफ़ी थे, इसलिए कि वे ऐसी मख़्लूक़ हैं जो हर वक़्त फ़रमांबर्दारी और इबादत ही में लगी रहती है, और अल्लाह तआला

की तस्बीह व पाकी बयान करने में मश्गूल रहती है। उसमें गुनाह करने की सलाहियत ही नहीं, अगर गुनाह करना चाहे तो भी नहीं कर सकती।

लेकिन इन्सान एक ऐसी मख़्लूक़ है जिस में अल्लाह तआला ने नेकी और गुनाह दोनों की सलाहियत पैदा फ़रमाई है, और पेशे नज़र यह था कि इन्सान में गुनाहों की सलाहियत होने के बावजूद वह गुनाहों से परहेज़ करे, और अगर कभी कोई गुनाह हो जाये तो फ़ौरन इस्तिग़फ़ार करे। अब अगर इन्सान यह अमल न करे तो उसको पैदा करने की क्या ज़रूरत थी? फिर तो फ़रिश्ते ही काफ़ी थे। चुनांचे जब आदम अलैहिस्सलाम को पैदा किया जा रहा था तो फ़रिश्तों ने यही कहा था कि यह आप कौन सी मख़्लूक़ पैदा फ़रमा रहे हैं, जो ज़मीन पर ख़ून बहायेगी, फ़साद मचायेगी और हम आपकी तस्बीह व पाकी बयान करने में दिन रात लगे रहते हैं, तो अल्लाह तआला ने उनको जवाब में फ़रमायाः

انی اعلم مالا تعلمون (سورة البقرة)

यानी मैं वे बातें जानता हूं जो तुम नहीं जानते।

यह फ़रिश्तों का कमाल नहीं

इसलिए कि गुनाह की सलाहियत होने के बावजूद जब यह मख़्लूक़ गुनाहों से परहेज़ करेगी तो यह तुम से भी आगे बढ़ जायेगी, इसलिए कि तुम जो गुनाहों से बच रहे हो, इसमें तुम्हारा कोई कमाल नहीं। क्योंकि तुम्हारे अन्दर गुनाह करने की सलाहियत ही नहीं।

जैसे एक आदमी अन्धा है, उसको कुछ दिखाई नहीं देता, अगर वह किसी ग़ैर मेरहम को न देखे, फ़िल्म न देखे, गन्दी क़िस्म की तस्वीरें न देखे तो इसमें उसका क्या कमाल है? इसलिए कि उसके अन्दर देखने की सलाहियत ही नहीं। वह अगर देखना भी चाहे तो नहीं देख सकता। लेकिन एक शख़्स वह है जिसकी बीनाई (नज़र) कामिल है, हर चीज़ देखने की सलाहियत मौजूद है, और उसके दिल

में ख़्वाहिशें, उमंगें और शौक उमड रहा है, लेकिन इस सारे शौक और उमंगों के बावजूद अल्लाह का बन्दा होने का तसव्वुर करके अपनी आंखों को ग़लत जगह पड़ने से बचाता है। यह वह मकाम है जिस पर अल्लाह तआला ने जन्नत देने का वायदा किया है।

जन्नत की लज़्ज़तें सिर्फ़ इन्सान के लिए हैं

ख़ूब समझ लीजिए: फ़रिश्ते अगरचे जन्नत में रहें लेकिन जन्नत की लज़्ज़तें उनके लिए नहीं, इसलिए कि उनके अन्दर जन्नत की लज़्ज़तों और राहतों को महसूस करने का माद्दा ही नहीं। जन्नत की लज़्ज़तें अल्लाह तआला ने उसी मख़्लूक़ के लिए पैदा फ़रमाई हैं जिसके अन्दर गुनाह की भी सलाहियत मौजूद है और नेकी की भी सलाहियत मौजूद है। अल्लाह तआला की हिक्मते बालिग़ा और मर्ज़ी में कौन दख़ल दे सकता है। उस ने अपनी हिक्मते बालिग़ा ही से सारा जहां इसलिए पैदा फ़रमाया ताकि इस जहां के अन्दर ऐसा इन्सान पैदा करें जिसके अन्दर गुनाह करने की भी सलाहियत हो और फिर वह गुनाह से रुके, और अगर कभी भूल चूक और बशर होने के तक़ाज़े से कोई गुनाह हो जाए तो फ़ौरन इस्तिग़फ़ार करे, और उस इस्तिग़फ़ार करने के नतीजे में वह इन्सान अल्लाह तआला की ग़फ़्फ़ारी का, उसकी सत्तारी का और उसके ग़फ़ूरुर्रहीम होने का का मकाम व महल बनता है। अब अगर गुनाह ही न होता तो फिर अल्लाह तआला की ग़फ़्फ़ारी कहां ज़ाहिर होती?

कुफ़्र भी हिक्मत से ख़ाली नहीं

बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि इस कायनात में कोई चीज़ हिक्मत और मसलिहत से ख़ाली नहीं। यहां तक कि कुफ़्र भी हिक्मत से ख़ाली नहीं, चुनांचे मौलाना रूमी रह. फ़रमाते हैं:

दर कारख़ाना-ए-इश्क़ अज़ कुफ़्र ना गुज़ीर अस्त

आतिश करा बसोज़द गर बू लहब् न बाशद

यानी इस कारख़ाने में कुफ़्र की भी ज़रूरत है, इसलिए कि अगर

अबू लहब न होता यानी काफ़िर न होता तो जहन्नम की आग किस को जलाती?

इसलिये गुनाह भी अल्लाह तआला की मर्ज़ी का एक हिस्सा है, और इस गुनाह की ख़्वाहिश बन्दे के अन्दर इसलिए पैदा की गई ताकि बन्दा उस ख़्वाहिश को कुचले और उसको जलाए, क्योंकि बन्दा इस ख़्वाहिश को जितना कुचलेगा, जितना जलायेगा, उतना ही उसका तक़वा कामिल होगा, और तक़वे का नूर उसको हासिल होगा।

दुनिया की शह्वतें और गुनाह ईंधन हैं

अल्लाह तआला ने मौलाना रूमी रह. को मिसाल देने में कमाल अता फ़रमाया था। आप मिसाल देने में इमाम थे, फ़रमाते हैं कि:

शह्वते दुनिया मिसाले गुलख़न अस्त
कि अज़ो हमामे तक़वा रोशन अस्त

यानी यह दुनिया की शह्वतें और गुनाह इस एतिबार से बड़े काम की चीज़ें हैं कि ये अल्लाह तआला ने तुम्हें ईंधन अता किया है। ताकि तुम इस ईंधन को जला कर तक़वे का हमाम रोशन कर सको। इसलिए कि तक़वे का हमाम इसी ईंधन के ज़रिये रोशन होगा। इसलिए जिस वक़्त गुनाह की भरपूर ख़्वाहिश पैदा हो रही हो, गुनाह का तक़ाज़ा दिल में उमड रहा हो, दिल मचल रहा हो, बेताब हो रहा हो, उस वक़्त तुम उस ख़्वाहिश और उस तक़ाज़े को अल्लाह तआला के लिए कुचल दो। जब उसको कुचल दोगे तो उसके ज़रिये तक़वे का हमाम रोशन होगा, और तक़वे का नूर हासिल होगा। अब अगर यह गुनाह का तक़ाज़ा ही न होता तो तुम्हें इस हमाम को रोशन करने का यह ईंधन कहां से हासिल होता?

ईमान की मिठास

हदीस शरीफ़ में है कि एक शख़्स के दिल में ना मेहरम पर निगाह डालने का तक़ाज़ा और शौक़ पैदा हुआ, लेकिन उस अल्लाह के बन्दे ने इस शौक़ और तक़ाज़े के बावजूद उस निगाह को ना

मेरहम पर डालने से रोक लिया, और यह सोचा कि मेरे अल्लाह और मेरे मालिक ने इस अमल से मना फ़रमाया है। हदीस शरीफ़ में है कि जो शख़्स अल्लाह तआला को याद करके इस तक़ाज़े को रोक लेगा तो अल्लाह तआला इसको ईमान की ऐसी मिठास अता फ़रमाएंगे कि अगर वह नज़र डाल लेता तो उसको ऐसी मिठास हासिल न होती, जो अल्लाह तआला उसको नज़र न डालने की वजह से ईमान की मिठास अता फ़रमाएंगे। देखिये यही गुनाह का तक़ाज़ा ईमान की मिठास हासिल होने का ज़रिया बन गया, अगर यह गुनाह का तक़ाज़ा और जज़्बा न होता तो ईमान की मिठास हासिल न होती।

गुनाह पैदा करने की हिक्मत

एक सवाल पैदा होता है कि जब अल्लाह तआला को बन्दे से गुनाह नहीं कराना तो फिर इस गुनाह को पैदा ही क्यों किया? इसका जवाब यह है कि इसमें अल्लाह तआला की दो हिक्मतें और मसलिहतें हैं, एक मसलिहत तो यह है कि जब बन्दा पूरी कोशिश करके उस गुनाह से बचने का एहतिमाम करेगा तो उसको तक़्वे का नूर हासिल होगा, और अल्लाह तआला का क़ुर्ब (निकट्ता) हासिल होगा, क्योंकि इन्सान जितना जितना गुनाह से दूर होता जाएगा, उसी एतिबार से उसके दर्जों में तरक़्क़ी होती चली जाएगी। क़ुरआने करीम में अल्लाह तआला ने फ़रमायाः

ومن يتق الله يجعل له مخرجا (سورة الطلاق)

यानी जो शख़्स अल्लाह से डरेगा तो अल्लाह तआला उसके लिए नए नए रास्ते पैदा फ़रमायेंगे।

तौबा के ज़रिये दर्जों की बुलन्दी

लेकिन अपनी पूरी कोशिश के बावजूद बशर होने के तक़ाज़े की वजह से इन्सान किसी जगह फिसल गया और गुनाह कर लिया तो जब वह उस गुनाह पर इस्तिग़फ़ार करेगा और नदामत और

शर्मिन्दगी के साथ अल्लाह तआला के हुज़ूर हाज़िर होगा, और यह कहेगा:

استغفراللّٰہ ربی من کل ذنب و اتو ب الیه

यानी ऐ अल्लाह मुझ से ग़लती हो गई, मुझे माफ़ फ़रमा। तो अब उस नदामत और तौबा के नतीजे में उसके दर्जे और ज़्यादा बुलन्द हो जायेंगे, और अल्लाह तआला की गफ़्फ़ारी और सत्तारी उस पर ज़ाहिर होगी।

ये बातें बहुत नाज़ुक हैं, अल्लाह तआला इनको ग़लत समझने से हमारी हिफ़ाज़त फ़रमाएं, आमीन। याद रखो: गुनाह पर कभी जुर्रत नहीं करनी चाहिए, लेकिन अगर गुनाह हो जाए तो फिर मायूस भी न होना चाहिए, अल्लाह तआला ने तौबा और इस्तिग़फ़ार के रास्ते इसी लिए रखे हैं ताकि इन्सान मायूस न हो।

इसलिये अगर कभी गुनाह हो जाए और उसके बाद दिल में शर्मिन्दगी की आग भड़क उठे और उस नदामत के नतीजे में इन्सान अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू करे, तौबा करे, अल्लाह तआला के सामने रोये, गिड़गिड़ाये, तो इस रोने और गिड़गिड़ाने के नतीजे में कभी–कभी उसको वह मक़ाम हासिल होता है कि अगर वह गुनाह न करता तो उस मक़ाम तक न पहुंचता।

हज़रत मुआविया रज़ि. का वाक़िआ

हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना थानवी रह. ने हज़रत मुआविया रज़ियल्लाहु अन्हु का एक वाक़िआ लिखा है। हज़रत मुआविया रज़ि. रोज़ाना तहज्जुद की नमाज़ के लिए उठा करते थे। एक दिन तहज्जुद के वक़्त आंख न खुली, यहां तक कि तहज्जुद का वक़्त निकल गया, चूंकि उस से पहले कभी तहज्जुद की नमाज़ नहीं छूटी थी, पहली बार यह वाक़िआ पेश आया था कि तहज्जुद की नमाज़ छूट गई, चुनांचे उसकी वजह से इस क़द्र नदामत और रन्ज हुआ कि सारा दिन रोते रोते गुज़ार दिया कि या अल्लाह मुझ से आज

तहज्जुद की नमाज़ छूट गई। जब अगली रात को सोए तो तहज्जुद के वक़्त एक बड़े मियां ने तश्रीफ लाकर आपको तहज्जुद की नमाज़ के लिए जगाना शुरू कर दिया कि उठ कर तहज्जुद की नमाज़ पढ़ लो। हज़रत मुआविया रज़ि. फ़ौरन उठ गये और उस से पूछा की तुम कौन हो? और यहां कैसे आये? उसने बताया कि मैं वही ज़माना भर का बदनाम इबलीस और शैतान हूं। हज़रत मुआविया रज़ि. ने पूछा कि तुम्हारा काम तो इन्सान को ग़फ़लत में मुब्तला करना है। नमाज़ के लिये उठाने से तुम्हारा क्या काम? शैतान ने कहा: इस से बहस मत करो, जाओ तहज्जुद पढ़ो और अपना काम करो। हज़रत मुआविया रज़ि. ने फ़रमाया कि नहीं, पहले बताओ कि क्या वजह है? मुझे क्यों उठा रहे थे? जब तक नहीं बताओगे मैं नहीं छोड़ूंगा, जब बहुत ज़िद की तो शैतान ने बताया कि असल में बात यह है कि कल रात मैंने आप पर ग़फ़लत तारी कर दी थी, ताकि आपकी तहज्जुद की नमाज़ छूट जाए, चुनांचे आपकी तहज्जुद की नमाज़ निकल गई, लेकिन तहज्जुद छूट जाने के नतीजे में आपने सारा दिन रोते रोते गुज़ार दिया, और उस रोने के नतीजे में आपके इतने दर्जे बुलन्द हो गए कि अगर आप उठ कर तहज्जुद पढ़ लेते तो आपके दर्जे इतने बुलन्द न होते। यह तो बहुत घाटे को सौदा हुआ, इसलिये मैंने सोचा कि आज आपको उठा दूं ताकि और ज़्यादा दर्जों की बुलन्दी का रास्ता पैदा न हो।

वर्ना दूसरी मख़्लूक़ पैदा कर देंगे

इसलिए बुज़ुर्ग फ़रमाते हैं कि अगर इन्सान सच्चे दिल से तौबा और इस्तिग़फ़ार करे और अल्लाह तआला के हुज़ूर शर्मिन्दगी और शिकस्तगी के साथ हाज़िर हो जाए तो कभी–कभी इसमें इन्सान के दर्जे इतने ज़्यादा बुलंद हो जाते हैं कि इन्सान इसका तसव्वुर भी नहीं कर सकता, इसलिए यह तौबा व इस्तिग़फ़ार बड़ी अ़ज़ीम चीज़ है। इसलिए इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम

फ़रमा रहे हैं कि अगर सारी मख़्लूक़ बिल्कुल गुनाह छोड़ दे तो अल्लाह तआला दूसरी मख़्लूक़ पैदा फ़रमा देंगे जो गुनाह करेगी फिर अल्लाह तआला के सामने तौबा और इस्तिग़फ़ार करेगी तो अल्लाह तआला उसके गुनाहों को माफ़ फ़रमा देंगे।

बहर हाल इस हदीस के ज़रिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हमें अमली तालीम यह दी है कि अगर कभी ग़लती हो जाए तो मायूस मत हो जाओ बल्कि तौबा व इस्तिग़फ़ार की तरफ़ रुजू करो, अलबत्ता अपनी तरफ़ से गुनाह की तरफ़ क़दम मत बढ़ाओ बल्कि गुनाह से बचने की पूरी कोशिश करो, लेकिन अगर गुनाह हो जाये तो तौबा व इस्तिग़फ़ार कर लो।

गुनाह से बचना लाज़मी फ़र्ज़ है

कभी–कभी दिल में ख़्याल होता है कि फिर तो गुनाह छोड़ने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं बल्कि गुनाह भी करते रहो और इस्तिग़फ़ार और तौबा भी करते रहो। ख़ूब समझ लीजिए कि गुनाह से बचना हर इन्सान के ज़िम्मे लाज़मी फ़र्ज़ है, और इसके लिए ज़रूरी है कि वह अपने आपको ज़िन्दगी के हर गोशे में हर वक़्त अपने आपको गुनाह से बचाये, लेकिन अगर बशर होने के तकाज़े के सबब कभी गुनाह हो जाये तो मायूस न हो बल्कि तौबा कर ले, या अगर कोई शख़्स गुनाह में मुब्तला है और उसके लिए किसी वजह से उसको छोड़ना मुम्किन नहीं, जैसे बैंक की नौकरी में मुब्तला है तो उस सूरत में वह दूसरी नौकरी इस तरह तलाश करे जैसे एक बेरोज़गार आदमी तलाश करता है, लेकिन साथ में वह तौबा व इस्तिग़फ़ार भी करता रहे।

बीमारी के ज़रिये दर्जों की बुलन्दी

या जैसे आपने यह हदीस सुनी होगी कि जब इन्सान बीमार होता है तो बीमारी से गुनाह माफ़ होते हैं और उसके ज़रिये दर्जे बुलन्द होते हैं, और बीमारी जितनी ज़्यादा सख़्त होगी उतने ही

इन्सान के दर्जे बुलन्द होंगे, लेकिन क्या इस हदीस का यह मतलब है कि आदमी अल्लाह तआला से बीमारी मांगे? या कौशिश करके बीमार पड़े? ताकि जब मैं बीमार हूंगा मेरे गुनाह माफ़ होंगे और मेरे दर्जे बुलन्द होंगे। ज़ाहिर है कि बीमारी ऐसी चीज़ नहीं जिसको मांगा जाए और जिसको हासिल करने की कौशिश की जाए, जिसकी तमन्ना की जाए, बल्कि हदीस में ख़ुद हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह तआला से ख़ैर व अमन मांगो, कभी बीमारी मत मांगो, लेकिन अगर ग़ैर इख़्तियारी तौर पर बीमारी आ जाये तो उसको अल्लाह तआला की तरफ़ से समझो और यह सोचो कि इसके ज़रिये हमारे गुनाह माफ़ हो रहे हैं, हमारे दर्जे बुलन्द हो रहे हैं। बिल्कुल इसी तरह गुनाह भी करने की चीज़ नहीं है, बल्कि बचने की चीज़ है, परहेज़ करने की चीज़ है, लेकिन कभी हालात के तकाज़े से मजबूर होकर गुनाह हो गया तो फिर इन्सान तौबा व इस्तिग़फ़ार की तरफ़ रुजु करे तो उसके नतीजे में उसके दर्जे बुलन्द होंगे। यह है इस्तिग़फ़ार की हकीकत।

तौबा व इस्तिग़फ़ार की तीन क़िस्में

फिर तौबा व इस्तिग़फ़ार की तीन क़िस्में हैं। १. गुनाहों से तौबा व इस्तिग़फ़ार, २. इताअत में होने वाली कोताहियों से इस्तिग़फ़ार, ३. ख़ुद इस्तिग़फ़ार से इस्तिग़फ़ार, यानी इस्तिग़फ़ार का भी हक अदा नहीं कर सके, इस से भी हम इस्तिग़फ़ार करते हैं।

तौबा का मुकम्मल होना

पहली क़िस्म यानी गुनाहों से इस्तिग़फ़ार करना हर इन्सान पर लाज़मी और फ़र्ज़ है, कोई इन्सान इस से अलग नहीं, हर इन्सान अपने पिछले गुनाहों से इस्तिग़फ़ार करे। यही वजह है कि तसव्वुफ़ और तरीक़त में सब से पहला क़दम तौबा की तकमील है। अगले तमाम दर्जे तौबा को मुकम्मल करने पर मौकूफ़ हैं, जब तक तौबा मुकम्मल नहीं होगी आगे कुछ नहीं होगा, चुनांचे जब कोई शख़्स

अपनी इस्लाह व सुधार के लिए किसी बुज़ुर्ग के पास जाता है तो वह बुज़ुर्ग सब से पहले तौबा की तकमील कराते हैं। इमाम ग़ज़ाली रह. फ़रमाते हैं:

هو اول اقدام المریدین

यानी जो शख़्स किसी शैख़ के पास मुरीद होने के लिए जाए तो उसके लिए सब से पहला काम तौबा की तकमील है, और शैख़ के हाथ पर जो बैअ़त की जाती है वह भी हक़ीक़त में तौबा ही की बैअ़त होती है। बैअ़त के वक़्त मुरीद अपने पिछले गुनाहों से तौबा करता है और आइन्दा गुनाह न करने का इरादा और अ़हद करता है, उसके बाद शैख़ उसकी तौबा को मुकम्मल कराता है।

मुख़्तसर तौबा

बुज़ुर्ग हज़रात फ़रमाते हैं कि तौबा की तकमील के दो दर्जे हैं, एक मुख़्तसर तौबा और दूसरी तफ़सीली तौबा। मुख़्तसर तौबा यह है कि इन्सान एक बार इत्मीनान से बैठ कर अपनी पिछली ज़िन्दगी के तमाम गुनाहों को मुख़्तसर तौर पर याद करके ध्यान में लाकर उन सब से अल्लाह तआ़ला के सामने तौबा करे। मुख़्तसर तौबा का बेहतर तरीक़ा यह है कि सब से पहले नमाज़े तौबा की नियत से दो रक्अ़त नमाज़ पढ़े, उसके बाद अल्लाह तआ़ला के सामने आ़जज़ी, अधीनगी, नदामत और शर्मिन्दगी और रोने व गिड़गिड़ाने के साथ एक एक गुनाह को याद करके यह दुआ़ करे कि या अल्लाह, अब तक मेरी पिछली ज़िन्दगी में मुझ से जो कुछ गुनाह हुए हैं, चाहे वे ज़ाहिरी गुनाह हों या बातिनी, अल्लाह के हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ हुए हों या बन्दों के हुक़ूक़ से मुताल्लिक़ हुए हों, छोटे गुनाह हुए हों या बड़े गुनाह हुए हों। या अल्लाह मैं उन सब से तौबा करता हूं। यह मुख़्तसर तौबा हुई।

तफ़सीली तौबा

लेकिन मुख़्तसर तौबा करने का यह मतलब नहीं कि अब

बिल्कुल पाक साफ़ हो गये, अब कुछ नहीं करना, बल्कि उसके बाद तफ़सीली तौबा ज़रूरी है, वह इस तरह कि जिन गुनाहों की तलाफ़ी मुम्किन है उन गुनाहों की तलाफ़ी करना शुरू कर दें। जब तक इन्सान उनकी तलाफ़ी नहीं करेगा उस वक़्त तक उसकी तौबा कामिल नहीं होगी। जैसे फ़र्ज़ नमाज़ छूट गई थी, अब जब नमाज़ें छूट जाने का ख़्याल आया तो अब तौबा कर ली, लेकिन ज़िन्दगी के अन्दर मौत से पहले उन नमाज़ों को क़ज़ा करना वाजिब है, और अगर तौबा करके इत्मीनान से बैठ गया और नमाज़ों की क़ज़ा नहीं की तो इस सूरत में तौबा कामिल नहीं हुई। इसलिए कि जिन गुनाहों की तलाफ़ी मुम्किन थी उनकी तलाफ़ी नहीं की, इसलिए इस्लाह के अन्दर सब से पहला क़दम यह है कि तौबा को मुकम्मल करे, जब तक यह नहीं करेगा उस वक़्त तक इस्लाह मुम्किन नहीं।

नमाज़ का हिसाब लगाए

तफ़सीली तौबा के अन्दर सब से पहला मामला नमाज़ का है। बालिग़ होने के बाद से अब तक जितनी नमाज़ें क़ज़ा हुई हैं उनका हिसाब लगाऐ। बालिग़ होने का मतलब यह है कि लड़का उस वक़्त बालिग़ होता है जब उसको एहतिलाम (स्वपन्दोष) हो। और लड़की उस वक़्त बालिग़ होती है, जब उसको हैज़ (माहवारी) आना शुरू हो जाए, और अगर किसी के अन्दर ये निशानियां ज़ाहिर न हों तो उस सूरत में जिस दिन पन्द्रह साल उम्र हो जाए उस वक़्त वह बालिग़ हो जाता है, चाहे वह लड़का हो या लड़की हो, उस दिन से उसे बालिग़ समझा जायेगा। उस दिन से उस पर नमाज भी फ़र्ज़ है, रोजे भी फ़र्ज़ हैं और दूसरे दीनी फ़राईज़ भी उस पर लागू हो जाएंगे।

इसलिए इन्सान सब से पहले यह हिसाब लगाए कि जब से मैं बालिग़ हुआ हूं उस वक़्त से अब तक कितनी नमाज़ें छूट गई हैं, बहुत से लोग तो ऐसे भी होते हैं जो दीनदार घराने में पैदा हुए और बचपन ही से मां बाप ने नमाज़ पढ़ने की आदत डाल दी। जिसकी

वजह से बालिग़ होने के बाद से अब तक कोई नमाज़ कज़ा ही नहीं हुई। अगर ऐसी सूरत है तो सुब्हानल्लाह। और हर एक मुसलमान घराने में ऐसा ही होना चाहिए। इसलिए कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि जब बच्चा सात साल का हो जाए तो नमाज़ की तलक़ीन करो। और जब बच्चा दस साल का हो जाए तो उसको मार कर नमाज़ पढ़वाओ। लेकिन अगर फ़र्ज़ करो बालिग़ होने के बाद ग़फ़लत की वजह से नमाज़ें छूट गईं, तो उनकी तलाफ़ी करना फ़र्ज़ है। तलाफ़ी का तरीक़ा यह है कि अपनी ज़िन्दगी का जायज़ा लेकर याद करें कि मेरे ज़िम्मे कितनी नमाज़ें बाक़ी हैं, अगर ठीक ठीक हिसाब लगाना मुम्किन हो तो ठीक ठीक हिसाब लगा ले, लेकिन अगर ठीक ठीक हिसाब लगाना मुम्किन न हो तो उस सूरत में एक एहतियाती अन्दाज़ा करके इस तरह हिसाब लगाए कि उसमें नमाज़ें कुछ ज़्यादा तो हो जाएं लेकिन कम न हों। और फिर उसको एक कापी में लिख ले कि "आज इस तारीख़ को मेरे ज़िम्मे इतनी नमाज़ें फ़र्ज़ हैं, और आज से मैं उनको अदा करना शुरू कर रहा हूं, और अगर मैं अपनी ज़िन्दगी में इन नमाज़ों को अदा न कर सका तो मैं वसीयत करता हूं कि मेरे छोड़े हुए माल में से इन नमाज़ों का फ़िदया अदा कर दिया जाए"।

एक वसीयत नामा लिख ले

यह वसीयत लिखना इसलिए ज़रूरी है कि अगर आपने यह वसीयत नहीं लिखी और क़ज़ा नमाज़ों को अदा करने से पहले आपका इन्तिक़ाल हो गया तो इस सूरत में वारिसों के ज़िम्मे शरई तौर पर ज़रूरी नहीं होगा कि आपकी नमाज़ों का फ़िदया अदा करना उनकी मर्ज़ी पर मौक़ूफ़ होगा। चाहे तो दें और चाहे न दें। अगर फ़िदया अदा करेंगे तो यह उनका एहसान होगा। शरई तौर पर उनके ज़िम्मे फ़र्ज़ व वाजिब नहीं। लेकिन अगर आपने फ़िदया अदा करने की वसीयत कर दी तो इस सूरत में वारिस शरई तौर पर इस

बात के पाबन्द होंगे कि वे कुल माल के एक तिहाई में से उस वसीयत को नाफ़िज़ करें, और नमाज़ों का फ़िदया अदा करें।

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का इरशाद है कि हर वह शख़्स जो अल्लाह पर और आख़िरत के दिन पर ईमान रखता हो, और उसके पास कोई बात वसीयत लिखने के लिए मौजूद हो, तो उसके लिए दो रातें भी वसीयत लिखे बग़ैर गुज़ारना जायज़ नहीं। (तिर्मिज़ी शरीफ़)

इसलिए अगर किसी के ज़िम्मे नमाज़ें क़ज़ा हैं तो इस हदीस की रोशनी में उसको वसीयत लिखना ज़रूरी है। अब हम लोगों को ज़रा अपने गरेबान में मुंह डाल कर देखना चाहिए कि हम में से कितने लोगों ने अपना वसीयत नामा लिख कर रखा हुआ है, हालांकि वसीयत नामा न लिखना एक मुस्तक़िल गुनाह है। जब तक वसीयत नामा नहीं लिखेगा उस वक़्त तक यह गुनाह होता रहेगा। इसलिए फ़ौरन आज ही हम लोगों को अपना वसीयत नामा लिख लेना चाहिए।

क़ज़ा-ए-उमरी की अदायेगी

उसके बाद उन क़ज़ा नमाज़ों को अदा करना शुरू कर दे। उन को क़ज़ा–ए–उमरी भी कहते हैं। इसका तरीक़ा यह है कि हर वक़्ती नमाज़ के साथ एक नमाज़ क़ज़ा भी पढ़ ले, और अगर किसी के पास वक़्त ज़्यादा हो तो एक से ज़्यादा भी पढ़ सकता है, ताकि जितनी जल्दी ये नमाज़ें पूरी हों उतना ही बेहतर है। बल्कि वक़्ती नमाज़ों के साथ जो नवाफ़िल होते हैं उनके बजाए क़ज़ा नमाज़ पढ़ ले। और फ़जर की नमाज़ के बाद और असर की नमाज़ के बाद नफ़्ली नमाज़ पढ़ना तो जायज़ नहीं लेकिन क़ज़ा नमाज़ पढ़ना जायज़ है। इसमें अल्लाह तआला ने इतनी आसानी फ़रमा दी है, हमें चाहिये कि हम इस आसानी से फ़ायदा उठायें और जितनी नमाज़ें अदा करते जाएं उनको उस कापी में साथ ही लिखते जाएं कि इतनी

अदा कर लीं, इतनी बाक़ी हैं।

सुन्नतों के बजाए कज़ा नमाज़ पढ़ना दुरुस्त नहीं

कुछ लोग यह मस्अला पूछते हैं कि चूंकि हमारे ज़िम्मे कज़ा नमाज़ें बहुत बाक़ी हैं तो क्या हम सुन्नतें पढ़ने के बजाए कज़ा नमाज़ पढ़ सकते हैं? ताकि कज़ा नमाज़ें जल्द पूरी हो जाएं। इसका जवाब यह है कि सुन्नते मुअक्कदा पढ़नी चाहिए। उनको छोड़ना दुरुस्त नहीं, हां नफ़िलों के बजाए कज़ा नमाज़ें पढ़ना जायज़ है।

कज़ा रोज़ों का हिसाब और वसीयत

इसी तरह रोज़ों का जायज़ा लें, जब से बालिग़ हुए हैं, उस वक़्त से अब तक रोज़े छूटे हैं या नहीं? अगर नहीं छूटे तो बहुत अच्छा, अगर छूट गए हैं तो उनका हिसाब लगा कर अपने पास वसीयत नामे की कपी में लिख लें कि आज फ़लां तारीख़ को मेरे ज़िम्मे इतने रोज़े बाक़ी हैं। मैं उनकी अदायेगी शुरू कर रहा हूं, अगर मैं अपनी ज़िन्दगी में इनको अदा नहीं कर सका तो मेरे मरने के बाद मेरे छोड़े हुए माल में से इन रोज़ों का फ़िदया अदा कर दिया जाए। उसके बाद जितने रोज़े अदा करते जाएं उस वसीयत नामे की कापी में लिखते जाएं, कि इतने रोज़े अदा कर लिये, इतने बाक़ी हैं। ताकि हिसाब साफ़ रहे।

वाजिब ज़कात का हिसाब और वसीयत

इसी तरह ज़कात का जायज़ा लें, बालिग़ होने के बाद ज़कात अदा करना फ़र्ज़ हो जाता है। इसलिए बालिग़ होने के बाद अगर अपनी मिल्कियत में ज़कात के क़ाबिल चीज़ें थीं और उनकी ज़कात अदा नहीं की थी, तो अब तक जितने साल गुज़रे हैं हर साल की अलग अलग ज़कात निकालें, और इसका बाक़ायदा हिसाब लगायें और फिर ज़कात अदा करें। और अगर याद न हो तो फिर एहतियात करके अन्दाज़ा करें, इसमें ज़्यादा हो जाए तो कोई हर्ज नहीं लेकिन कम न हो। और फिर उसकी अदायेगी की फ़िक्र करें और उसको

अपने वसीयत नामे की कापी में लिख लें और जितनी ज़कात अदा करें उसको कापी में लिखते चले जाएं। और जल्दी से जल्दी अदा करने की फ़िक्र करें।

इसी तरह हज ज़िन्दगी में एक बार हज फ़र्ज़ होता है, अगर हज फ़र्ज़ है और अब तक अदा नहीं किया तो जल्द से जल्द इस से भी फ़ारिग़ होने की फ़िक्र करें। ये सब अल्लाह के हक़ हैं, इनको अदा करना भी तफ़सीली तौबा का एक हिस्सा है।

बन्दों के हुकूक़ अदा करे या माफ़ कराये

उसके बाद बन्दों के हुकूक़ का जायज़ा लें, कि किसी का कोई जानी हक़ या किसी का कोई माली हक़ अपने ज़िम्मे वाजिब हो और अब तक अदा न किया हो, तो उसको अदा करें या माफ़ करायें। या किसी को कोई तकलीफ़ पहुंचाई हो तो उस से माफ़ करायें। हदीस शरीफ़ में है कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बाक़ायदा सहाबा–ए–किराम के मजमे में खड़े होकर यह ऐलान फ़रमाया कि:

"अगर मैंने किसी को कोई तकलीफ़ पहुंचाई हो, या किसी को कोई सदमा पहुंचाया हो, या किसी का कोई हक़ मेरे ज़िम्मे हो तो आज मैं आप सब के सामने खड़ा हूं, वह शख़्स आकर मुझ से बदला ले ले, या माफ़ कर दे"।

इसलिए जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम माफ़ी मांग रहे हैं तो हम और आप किस गिन्ती में हैं। इसलिए ज़िन्दगी में अब तक जिन जिन लोगों से ताल्लुक़ात रहे, या लेन देन के मामलात रहे, या उठना बैठना रहा, या यार रिश्तेदार हैं, उन सब से संपर्क क़ायम करके ज़बानी या ख़त लिख कर उन से मालूम करें और अगर उनका तुम्हारे ज़िम्मे कोई माली हक़ निकले तो उसको अदा करें, और अगर माली हक़ नहीं हैं बल्कि जानी है, जैसे किसी की ग़ीबत की थी, किसी को बुरा भला कह दिया था, या किसी को सदमा पहुंचाया था, उन सब से माफ़ी मांगना ज़रूरी है।

एक दूसरी हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अगर किसी शख़्स ने दूसरे शख़्स पर ज़ुल्म कर रखा है, चाहे वह ज़ुल्म जानी हो या माली ज़ुल्म हो, आज वह उस से माफ़ी मांग ले, या सोना चांदी देकर उस दिन के आने से पहले हिसाब साफ़ कर ले जिस दिन न दिर्हम होगा और न दीनार होगा, कोई सोना चांदी काम नहीं आएगा।

आख़िरत की फ़िक्र करने वालों का हाल

जिन लोगों को अल्लाह तआ़ला आख़िरत की फ़िक्र अ़ता फ़रमाते हैं वे लोग एक एक शख़्स के पास जाकर उनके हुकूक़ अदा करते हैं या उन से हुकूक़ की माफ़ी कराते हैं। हज़रत थानवी रह. ने इसी सुन्नत पर अ़मल करते हुए "अल उज़्र वन्नज़र" के नाम से एक रिसाला लिख कर अपने तमाम ताल्लुक़ात वालों के पास भेजा, जिसमें हज़रत ने यह लिखा कि चूंकि आप से मेरे ताल्लुक़ात रहे हैं, ख़ुदा जाने किस वक़्त क्या ग़लती मुझ से हुई हो, या कोई वाजिब हक़ मेरे ज़िम्मे बाक़ी हो, ख़ुदा के लिए आज मुझ से वह हक़ वुसूल कर लें। या माफ़ कर दें।

इसी तरह मेरे वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. ने भी अपने तमाम ताल्लुक़ात रखने वालों को "कुछ तलाफ़ी–ए–माफ़ात" (यानी गुज़रे हुए की कुछ तलाफ़ी) के नाम से एक ख़त लिख कर भिजवाया। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत की पैरवी में हमारे बुज़ुर्गों का यह मामूल रहा है, इसलिए हर आदमी को इसकी पाबन्दी करनी चाहिए। ये सब बातें तफ़सीली तौबा का हिस्सा हैं।

बन्दों के हुकूक़ बाक़ी रह जायें तो?

यह बात तो अपनी जगह दुरुस्त है कि अल्लाह के हुकूक़ तौबा से माफ़ हो जाते हैं, लेकिन बन्दों के हुकूक़ उस वक़्त तक माफ़ नहीं होते जब तक हक़ वाला माफ़ न करे, या उसको अदा न करे।

लेकिन हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं कि एक आदमी से ज़िन्दगी में बन्दों के हुकूक ज़ाया हुए और बाद में अल्लाह तआ़ला ने उसके दिल में उन हुकूक़ की फ़िक्र अ़ता फ़रमाई और तौबा की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाई, जिसके नतीजे में उसने उन हुकूक़ की अदायेगी की फ़िक्र शुरू कर दी और अब लोगों से मालूम कर रहा है कि मेरे ज़िम्मे किस शख़्स के क्या हुकूक़ रह गये हैं, ताकि मैं उनको अदा कर दूं, लेकिन अभी उन हुकूक़ की अदायेगी को पूरा नहीं कर पाया था कि उस से पहले ही उसका इन्तिक़ाल हो गया, अब सवाल यह है कि चूंकि उसने हुकूक़ की अदायेगी मुकम्मल नहीं की थी और माफ़ भी नहीं कराए थे, क्या आख़िरत के अ़ज़ाब से उसकी नजात और बचाव की कोई सूरत नहीं है? हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं कि उस शख़्स को भी मायूस नहीं होना चाहिए, इसलिए कि जब यह आदमी हुकूक़ की अदायेगी और तौबा के रास्ते पर चल पड़ा था और कोशिश भी शुरू कर दी थी, तो इन्शा अल्लाह उस कोशिश की बर्कत से आख़िरत में अल्लाह तआ़ला उसके हक़ वालों को राज़ी फ़रमा देंगे, और वे हक़ वाले अपना हक़ माफ़ फ़रमा देंगे।

अल्लाह तआ़ला के मग़फ़िरत फ़रमाने का अ़जीब वाक़िआ़

दलील में हज़रत थानवी रह. ने हदीस शरीफ़ का वह मशहूर वाक़िआ़ पेश किया कि एक शख़्स ने निन्नानवे (९९) आदमियों को क़त्ल कर दिया था, उसके बाद उसको तौबा की फ़िक्र हुई, अब सोचा कि मैं क्या करूं, चुनांचे वह ईसाई बुज़ुर्ग के पास गया और उसको जाकर बताया कि मैंने इस तरह ९९ आदमियों को क़त्ल कर दिया है, तो क्या मेरे लिए तौबा का या नजात का कोई रास्ता है? उस आ़लिम ने जवाब दिया कि तू तबाह हो गया और अब तेरी तबाही और हलाकत में कोई शक नहीं, तेरी नजात और तौबा का कोई रास्ता नहीं है। यह जवाब सुन कर वह शख़्स मायूस हो गया, उसने सोचा कि ९९ क़त्ल कर दिये हैं, एक और सही, चुनांचे उस

आलिम को भी क़त्ल कर दिया और सौ (१००) की गिन्ती पूरी कर दी। लेकिन दिल में चूंकि तौबा की फ़िक्र लगी हुई थी इसलिए दोबारा किसी अल्लाह वाले की तलाश में निकल गया, तलाश करते करते एक अल्लाह वाला उसको मिल गया, और जाकर उसे अपना सारा क़िस्सा बताया, उसने कहा कि इसमें मायूस होने की ज़रूरत नहीं, अब तुम पहले तौबा करो और फिर इस बस्ती को छोड़ कर फ़लां बस्ती में चले जाओ, और वह नेक लोगों की बस्ती है, उनकी सोहबत इख़्तियार करो। चूंकि वह तौबा करने में मुख़्लिस था, इसलिए वह उस बस्ती की तरफ़ चल पड़ा, अभी रास्ते में ही था कि उसकी मौत का वक़्त आ गया। रिवायतों में आता है कि जब वह मरने लगा तो मरते मरते भी अपने आपको सीने के बल घसीट कर उस बस्ती के क़रीब करने लगा जिस बस्ती के क़रीब वह जा रहा था, ताकि मैं उस बस्ती के क़रीब हो जाऊँ। आख़िर कार जान निकल गई, अब उसकी रूह लेजाने के लिए रहमत के फ़रिश्ते और अज़ाब के फ़रिश्ते दोनों पहुंच गये और दोनों में इख़्तिलाफ़ शुरू हो गया। रहमत के फ़रिश्ते कहने लगे कि चूंकि यह शख़्स तौबा करके नेक लोगों की बस्ती की तरफ़ जा रहा था, इसलिए इसकी रूह हम ले जायेंगे, अज़ाब के फ़रिश्ते कहने लगे कि इसने सौ आदमियों को क़त्ल किया है और अभी इसकी माफ़ी नहीं हुई, इसलिए इसकी रूह हम ले जायेंगे। आख़िर में अल्लाह तआला ने यह फ़ैसला फ़रमाया कि यह देखा जाये कि यह शख़्स कौन सी बस्ती से ज़्यादा क़रीब है, जिस बस्ती से चला था उस से ज़्यादा क़रीब है या जिस बस्ती की तरफ़ जा रहा था उस से ज़्यादा क़रीब है। अब दोनों तरफ़ के फ़ासलों की पैमाईश की गई तो मालूम हुआ कि जिस बस्ती की तरफ़ जा रहा था उस से थोड़ा सा क़रीब है। चुनांचे रहमत के फ़रिश्ते उसकी रूह ले गये। अल्लाह तआला ने उसकी कोशिश की बर्कत से उसको माफ़ फ़रमा दिया। (मुस्लिम शरीफ़)

हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं कि अगरचे उसके ज़िम्मे बन्दों के हुकूक़ थे, लेकिन चूंकि अपनी तरफ़ से कोशिश शुरू कर दी थी इसलिए अल्लाह तआला ने उस की मग़फ़िरत फ़रमा दी। इसी तरह किसी इनसान के ज़िम्मे बन्दों के हुकूक़ हों और वह उनकी अदायेगी की कोशिश शुरू कर दे और इस फ़िक्र में लग जाये और फिर दरमियान में मौत आ जाए तो अल्लाह तआला की रहमत से उम्मीद है कि वह हक़ वालों को क़ियामत के दिन राज़ी फ़रमा देंगे।

बहर हाल, ये दो किस्म की तौबा कर लें, एक मुख़्तसर तौबा और एक तफ़सीली तौबा, अल्लाह तआला अपनी रहमत से हम सब को इसकी तौफ़ीक़ अता फ़रमाए, आमीन।

पिछले गुनाह भुला दो

हमारे हज़रत डाक्टर अब्दुल हई साहिब फ़रमाया करते थे कि जब तुम ये दोनों क़िस्म की तौबा कर लो, तो उसके बाद अपने पिछले गुनाहों को याद भी न करो बल्कि उनको भूल जाओ। इसलिए कि जिन गुनाहों से तुम तौबा कर चुके हो उनको याद करना एक तरफ़ तो अल्लाह तआला की मग़फ़िरत की ना क़द्री है। क्योंकि अल्लाह तआला ने वायदा फ़रमाया है कि जब इस्तिग़फ़ार करोगे और तौबा करोगे तो मैं तुम्हारी तौबा को क़ुबूल कर लूंगा और तुम्हारे गुनाहों को माफ़ कर दूंगा। अब अल्लाह तआला ने उनको माफ़ फ़रमा दिया लेकिन तुम उल्टा उन गुनाहों को याद करके उनका वज़ीफ़ा पढ़ रहे हो, यह उनकी रहमत की ना क़द्री है। क्योंकि उनकी याद कभी कभी रुकावट बन जाती है। इसलिए उनको याद मत करो, बल्कि भूल जाओ।

याद आने पर इस्तिग़फ़ार कर लो

कामिल और ग़ैर कामिल में यही फ़र्क़ होता है, ग़ैर कामिल कभी कभी उल्टा काम बता देते हैं। मेरे एक दोस्त बहुत नेक थे, हर वक़्त रोज़े से होते थे, तहज्जुद गुज़ार थे। एक पीर साहिब से उनका

ताल्लुक़ था। वे बताया करते थे कि मरे पीर साहिब ने मुझे यह कहा है कि रात को जब तुम तहज्जुद की नमाज़ के लिए उठो तो तहज्जुद पढ़ने के बाद अपने पिछले सारे गुनाहों को याद करो और उनको याद करके ख़ूब रोया करो। लेकिन हमारे हज़रत डाक्टर साहिब रह. फ़रमाया करते थे कि यह तरीक़ा दुरुस्त नहीं, इसलिए कि अल्लाह तआला ने तौबा के बाद हमारे पिछले गुनाहों को माफ़ कर दिया है, और हमारे आमाल नामे से मिटा दिया है। लेकिन तुम उनको याद करके यह ज़ाहिर करना चाहते हो कि अभी उन गुनाहों को नहीं मिटाया, और मैं तो उनको मिटने नहीं दूंगा, बल्कि उनको याद करूंगा। तो इस तरीक़े में अल्लाह तआला की शाने रहमत की ना क़द्री और नाशुक्री है, इसलिए कि जब उन्हों ने तुम्हारे आमाल नामे से उनको मिटा दिया है तो अब उनको भूल जाओ, उनको याद मत करो। और अगर कभी बे इख़्तियार उन गुनाहों का ख़्याल आ जाए तो उस वक़्त इस्तिग़फ़ार पढ़ कर उसे ख़्याल को ख़त्म कर दो।

मौजूदा हालत (वर्तमान) को दुरुस्त कर लो

हमारे हज़रत डा. साहिब रह. ने क्या अच्छी बात बयान फ़रमाई, याद रखने के क़ाबिल है। फ़रमाया कि जब तुम तौबा कर चुके तो फिर माज़ी (भूतकाल) की फ़िक्र छोड़ दो। इसलिए कि जब तौबा कर ली तो यह उम्मीद रखो कि अल्लाह तआला अपनी रहमत से क़ुबूल फ़रमाएंगे, इन्शा अल्लाह! और मुस्तक़बिल (भविष्य) की फ़िक्र भी छोड़ दो कि आइन्दा क्या होगा क्या नहीं होगा। हाल (वर्तमान) जो इस वक़्त गुज़र रहा है, उसकी फ़िक्र करो कि यह दुरुस्त हो जाए, यह अल्लाह तआला की इताअत में गुज़र जाए और इसमें कोई गुनाह ज़ाहिर न हो।

आज कल हमारा यह हाल है कि या तो हम गुज़रे हुए ज़माने में पड़े रहते हैं कि हम से इतने गुनाह हो चुके हैं, अब हमारा क्या हाल

होगा, किस तरह बख़्शिश होगी। इसका नतीजा यह होता है कि मायूसी पैदा होकर हाल (वर्तमान) भी ख़राब हो जाता है। या मुस्तक़बिल (भविष्य) की फ़िक्र में पड़े रहते हैं कि अगर इस वक़्त तौबा कर भी ली तो आइन्दा किस तरह गुनाह से बचेंगे। अरे यह सोचो कि जब आइन्दा वक़्त आएगा, उस वक़्त देखा जाएगा, उस वक़्त की फ़िक्र करो जो गुज़र रहा है, इसलिए कि यही हाल (वर्तमान) माज़ी (भूतकाल) बन रहा है, और हर मुस्तक़बिल को हाल (वर्तमान) बनना है। इसलिए बस अपने हाल (वर्तमान) को दुरुस्त कर लो, और माज़ी को याद करके मायूस मत हो जाओ। हक़ीक़त में शैतान हमें बहकाता है, वह यह वस्वसा डालता है कि अपने माज़ी को देखो कि तुम कितने बड़े बड़े गुनाह कर चुके हो, और अपने मुस्तक़बिल को देखो कि तुम से मुस्तक़बिल में क्या बनेगा? और माज़ी और मुस्तक़बिल के चक्कर में डाल कर हमारे हाल (वर्तमान) को ख़राब करता रहता है, इसलिए शैतान के धोखे में मत आओ और अपने हाल (वर्तमान) को दुरुस्त करने की फ़िक्र करो। अल्लाह तआला हम सब को यह फ़िक्र अता फ़रमा दे, आमीन।

बेहतरीन ज़माना

عن ابی قلابة رحمة اللّٰہ تعالیٰ علیه قال: ان اللّٰہ لما لعن ابلیس سئله النظرة فا نظره الیٰ یوم الدین، قال و عزتك لا اخرج من قلب ابن اٰدم ما دام فیه الروح، قال اللّٰہ تعالیٰ و عزتی لا احجب عنه التوبة ما دام الروح فی الجسد۔

हज़रत अबू क़लाबा रह. बड़े दर्जे के ताबिईन में से हैं। अगर किसी ने इस्लाम की हालत में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ियारत की हो तो उसको सहाबी कहते हैं, और जिसने इस्लाम की हालत में किसी सहाबी की ज़ियारत की हो उसको ताबिई कहते हैं, और अगर किसी ने इस्लाम की हालत में किसी ताबिई की ज़ियारत की हो तो उसको तबए ताबिई कहते हैं। ये तीन ज़माने हैं

जिनको हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने ख़ैरुल क़ुरून (बेहतरीन ज़माना) क़रार दिया है।

चुनांचे आपने इरशाद फ़रमायाः

خير الناس قرني ثم الذين يلونهم ثم الذين يلونهم (بخاری شریف)

यानी सब से बेहतरीन लोग मेरे ज़माने के लोग हैं, फिर वे लोग जो उन से मिले हुए हैं, और फिर वे जो उन से मिले हुए हैं। इसलिए हज़रात सहाबा-ए-किराम रिज़वानुल्लाहि तआ़ला अ़लैहिम अज्मईन की सोहबत की बर्कत से अल्लाह तआ़ला ने ताबिईन को भी बड़ा ऊँचा मक़ाम अ़ता फ़रमाया है। हज़रत अबू क़लाबी रह. भी ताबिईन में से हैं, उन्हों ने बराहे रास्त (प्रत्यक्ष रूप से) हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ियारत नहीं की, लेकिन अनेक सहाबा-ए-किराम की ज़ियारत की है, और हज़रत अनस रज़ि. के ख़ास शार्गिद हैं।

हज़रात ताबिईन की एहतियात और डर

यह हदीस जो हज़रत क़लाबा रह. ने बयान फ़रमाई है, अगरचे आपने कहावत के तौर पर बयान फ़रमाई है, लेकिन हक़ीक़त में यह हदीस है, इसलिए कि वह अपनी तरफ़ से अपनी अ़क़्ल से ऐसी बात नहीं कह सकते। और अपन बात और कहावत के तौर पर इसलिए बयान फ़रमाया कि हज़रात ताबिईन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ कोई बात मन्सूब करते हुए डरते थे, इसलिये कि कहीं कोई बात करने में ऊँच नीच हो जाए, जिसके नतीजे में हमारी पकड़ हो जाए कि तुमने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ ग़लत बात मन्सूब कर दी, इसलिए कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

من كذب على متعمدا فليتبوأ مقعده من النار

यानी जो शख़्स जान बूझ कर मुझ पर झूठ बांधे और मेरी तरफ़ ऐसी बात मन्सूब करे जो मैंने नहीं कही तो उसको चाहिए कि अपना

ठिकाना जहन्नम में बना ले।

इतनी सख़्त वईद आपने बयान फ़रमाई। इसलिए सहाबा-ए-किराम और ताबिईन हदीस बयान करते हुए कांपते थे।

हदीस बयान करने में एहतियात करनी चाहिए

एक ताबिई एक सहाबी के बारे में बयान फ़रमाते हैं कि जब वह सहाबी हमारे सामने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की कोई हदीस बयान फ़रमाते तो उस वक़्त उनका चेहरा पीला पड़ जाता था, और कभी कभी उन पर कपकपी तारी हो जाती थी, कि कहीं कोई बात बयान करने में ग़लती हो जाए। यहां तक कि कुछ सहाबी हदीस नक़ल करने के बाद फ़रमाते कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस तरह की, या इस जैसी, या इस क़िस्म की बात बयान फ़रमाई थी, हो सकता है कि मेरे बयान करने में कुछ उलट फेर हो गया हो। यह सब इसलिए करते ताकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तरफ़ कोई बात ग़लत मन्सूब करने का गुनाह न हो। इस से हमें और आपको यह सबक़ मिलता है कि हम लोग बहुत सी बार तहक़ीक़ और एहतियात के बग़ैर हदीस बयान करनी शुरू कर देते हैं, ज़रा सी कोई बात कहीं से सुनी, फ़ौरन हमने कह दिया कि हदीस में यूं आया है, हालांकि यह देखिए कि सहाबा-ए-किराम जिन्हों ने बराहे रास्त हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से बातें सुनीं, वे कितनी एहतियात कर रहे हैं, लेकिन हम इसमें एहतियात नहीं करते। इसलिए हदीसें बयान करने में हमेशा बहुत एहतियात से काम लेना चाहिए। जब तक ठीक ठीक अल्फ़ाज़ मालूम न हों, उस वक़्त तक उसको हदीस के तौर पर बयान नहीं करना चाहिए। इस हदीस में देखिए कि हज़रत अबू क़लाबा रह. यह नहीं फ़रमा रहे हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यों फ़रमाया, बल्कि उसको अपने क़ौल (बात) के तौर पर फ़रमा रहे हैं, हालांकि हक़ीक़त में यह हदीस है।

बहर हाल, वह फ़रमाते हैं कि जब अल्लाह तआला ने शैतान को मर्दूद किया। हर मुसलमान को यह वाक़िआ मालूम है कि शैतान को हुक्म दिया गया कि हज़रत आदम अलैहिस्सलाम को सज्दा करे। उसने इन्कार कर दिया कि मैं तो सज्दा नहीं करता, इस इन्कार की वजह से अल्लाह तआला ने उसको मर्दूद कर दिया।

शैतान की बात दुरुस्त थी, लेकिन......

एक बात यहां यह समझ लें कि अगर ग़ौर किया जाए तो शैतान ज़ाहिर में जो बात कह रहा था, वह कोई बुरी बात नहीं थी, क्योंकि अगर वह यह बात कहता कि यह पैशानी (माथा) तो आपके लिए ख़ास है, यह पैशानी तो सिर्फ़ आपके सामने झुक सकती है, किसी और के सामने नहीं झुक सकती। यह मिट्टी का पुतला जिसको आपने अपने हाथ से बनाया, इसको मैं सज्दा क्यों करूं? मेरा सज्दा तो आपके लिए है, तो बज़ाहिर यह बात ग़लत नहीं थी। लेकिन यह बात इसलिए ग़लत हुई कि जिस ज़ात के आगे सज्दा करना है, जब वह ज़ात ख़ुद ही हुक्म दे रही है कि इस मिट्टी के पुतले को सज्दा करो तो अब चूं व चरा की मजाल न होनी चाहिए थी। इस हुक्म के बाद फिर अपनी अक़्ल के घोड़े नहीं दौड़ाने चाहिएं थे कि यह मिट्टी का पुतला सज्दा करने के लायक़ है या नहीं?

देखिए: हक़ीक़त में आदमी सज्दे के लायक़ तो नहीं था। चुनांचे जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की आख़री उम्मत इस दुनिया में आई तो हमेशा के लिए यह हुक्म दे दिया गया कि अब किसी इन्सान को सज्दा करना जायज़ नहीं। मालूम हुआ कि असल हुक्म यही था कि इन्सान को सज्दा करना किसी हाल में भी जायज़ नहीं था, लेकिन जब अल्लाह तआला ही हुक्म फ़रमायें कि सज्दा करो तो अब अक़्ली घोड़े नहीं दौड़ाने चाहिएं। शैतान ने पहली ग़लती यह की कि अपनी अक़्ल के घोड़े दौड़ाने शुरू कर दिये।

मैं आदम (अलैहिस्सलाम) से बेहतर हूं

दूसरी ग़लती यह की कि शैतान ने सज्दा न करने की वजह बताते हुए यह नहीं कहा कि यह पैशानी (माथा) तो आपके लिए है, बल्कि यह वजह बताई कि इस आदम को आपने मिट्टी से बनाया है और मुझे आपने आग से बनाया है, और आग मिट्टी से अफ़ज़ल व बेहतर है, इसलिए मैं इसको सज्दा नहीं करता, इसके नतीजे में अल्लाह तआला ने उसको मर्दूद कर दिया और हुक्म दे दिया कि यहां से निकल जा।

अल्लाह तआला से मोहलत मांग ली

बहर हाल! जिस वक़्त अल्लाह तआला ने इसको अपनी बारगाह से निकाल दिया, (यानी मर्दूद कर दिया) उस वक़्त इसने अल्लाह तआला से मोहलत मांगी, और कहा:

انظرنی الیٰ یوم یبعثون

यानी ऐ अल्लाह मुझे उस वक़्त तक की मोहलत दे दीजिए जिस वक़्त आप लोगों को उठाएंगे, यानि मैं क़ियामत तक ज़िन्दा रहूं और मुझे मौत न आए।

शैतान बड़ा बुज़ुर्ग था

हज़रत थानवी रह. फ़रमाते थे कि इस वाक़िए से मालूम हुआ कि शैतान अल्लाह तआला की बहुत मारिफ़त रखता था। बहुत बड़ा आरिफ़ (अल्लाह वाला) था, क्योंकि एक तरफ़ तो इसको धुतकारा जा रहा है, मर्दूद किया जा रहा है, जन्नत से निकाला जा रहा है, अल्लाह तआला का इस पर ग़ज़ब नाज़िल हो रहा है, लेकिन ऐन ग़ज़ब की हालत में भी अल्लाह तआला से दुआ मांग ली, और मोहलत मांग ली, इसलिए कि वह जानता था कि अल्लाह तआला ग़ज़ब से मग़लूब नहीं होते, और ग़ज़ब की हालत में भी अगर उनसे कोई चीज़ मांगी जाए तो वे दे देते हैं, चुनांचे उसने मोहलत मांग ली।

मैं मौत तक उसको बहकाता रहूंगा

चुनांचे अल्लाह तआला ने जवाब में फ़रमाया किः

انك من المنظرين الى يوم الوقت المعلوم

हम तुम्हें क़ियामत तक के लिए मोहलत देते हैं, तुम्हें क़ियामत तक मौत नहीं आएगी। जब मोहलत मिल गई तो अल्लाह तआला से मुख़ातिब होकर कहता है कि ऐ अल्लाह, मैं आपकी इज़्ज़त की क़सम खाकर कहता हूं कि मैं आदम की औलाद के दिल से उस वक़्त तक नहीं निकलूंगा जब तक उसके जिस्म में रूह बाक़ी रहे। यानी मौत आने तक नहीं निकलूंगा। और यह आदम की औलाद जिसकी वजह से मुझे मर्दूद बनना पड़ा, उसके दिल में ग़लत क़िस्म के ख़्यालात डालता रहूंगा, उसको बहकाता रहूंगा, गुनाहों की ख़्वाहिश, उसके जज़्बे, उसके अस्बाब उसके दिल में पैद करता रहूंगा, और उसको गुनाहों की तरफ़ माईल करता रहूंगा, जब तक वह ज़िन्दा है।

मैं मौत तक तौबा कुबूल करता रहूंगा

शैतान के जवाब में अल्लाह तआला ने भी अपनी इज़्ज़त की क़सम खाई, मेरी इज़्ज़त की क़सम मैं इस औलादै आदम के लिए तौबा का दर्वाज़ा भी उस वक़्त तक बन्द नहीं करूंगा, जब तक उसके जिस्म में रूह बाक़ी रहे। तू मेरी इज़्ज़त की क़सम खाता है कि मैं नहीं निकलूंगा, मैं भी अपनी इज़्ज़त की क़सम खाता हूं कि मैं उसके लिए तौबा का दर्वाज़ा बन्द नहीं करूंगा। तू अगर ज़हर है तो मैंने हर आदम के बेटे को उस ज़हर का तिर्याक़ भी दे दिया है, कि उसके लिए तौबा का दर्वाज़ा खुला है। जब आदम का बेटा गुनाहों से तौबा कर लेगा तो मैं तेरे सारे फ़रेब, चालबाज़ी और तेरे सारे बहकावे को उस तौबा के नतीजे में एक आन में ख़त्म कर दूंगा। गोया कि अल्लाह तआला ने आदम की औलाद के लिए अपनी रहमत का आम ऐलान फ़रमा दिया, और फ़रमा दिया कि यह मत समझना कि हमने कोई बाला तर ताक़त शैतान की सूरत में तुम्हारे ऊपर

मुसल्लत कर दी है, जिस से तुम नजात नहीं पा सकते।

शैतान एक आज़माईश है

बात दर असल यह है कि हमने शैतान को सिर्फ़ तुम्हारी ज़रा सी आज़माईश और इम्तिहान के लिए पैदा कर दिया है, हमने ही उसको बनाया और हमने ही उसको बहकाने की ताक़त दी है। लेकिन ऐसी ताक़त नहीं दी कि तुम उसको हरा न सको।

क़ुरआन ने साफ़ ऐलान कर दिया कि:

ان کید الشیطان کان ضعیفا (سورۃالنسآء)

यानी शैतान का जाल बहुत कमज़ोर है, और इतना कमज़ोर है कि अगर कोई शख़्स इस शैतान के आगे डट जाये कि तेरी बात नहीं मानूंगा, तू जिस गुनाह पर आमादा करना चाह रहा है, मैं वह गुनाह नहीं करूंगा तो शैतान उसी वक़्त पिघल जाता है। यह शैतान बुज़ दिलों पर और उन लोगों पर शेर हो जाता है जो अपनी हिम्मत से काम लेने से जी चुराते हैं और जो गुनाहों को छोड़ने का इरादा ही नहीं करते। लेकिन अगर उसका दाव चल जाये, और कोई बे हिम्मत आदमी उसकी बात मान लें तो फिर मैंने तौबा का तिर्याक़ पैदा कर दिया है, हमारे पास आ जाओ और अपने गुनाहों का इक़रार कर लो कि या अल्लाह हम से ग़लती हो गई, और अपने गुनाह से तौबा करो और कहो:

"अस्तग़्फ़िरुल्ला-ह रब्बी मिन कुल्लि जम्बिन् व अतूबु इलैही"

तो इसके नतीजे में शैतान का सारा असर एक लम्हे में ख़त्म हो जायेगा।

बेहतरीन गुनाहगार बन जाओ

चुनांचे इसी वजह से एक दूसरी हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

کلکم خطائون و خیر الخطا ئین التوابون (ترمذی شریف)

यानी तुम में से हर शख़्स बहुत ख़ताकार है, अ़रबी में

"ख़त्ता-उ" उस शख़्स को कहते हैं जो बहुत ज़्यादा ग़लतियां करे, और जो मामूली ग़लती करे उसको अ़रबी में "ख़ाती" कहते हैं, यानी ग़लती करने वाला। और "ख़त्ता-उ" के मायने हैं बहुत ज़्यादा ग़लती करने वाला, तो फ़रमाया कि तुम में से हर शख़्स बहुत ख़ताकार है। लेकिन साथ में यह भी फ़रमाया कि ख़ताकारों में सब से बेहतर ख़ताकार वह है जो तौबा भी बहुत करता है।

इस हदीस में इशारा इस बात की तरफ़ कर दिया कि दुनिया के अन्दर तुम से गुनाह भी होंगे, गुनाहों के जज़्बे भी पैदा होंगे, लेकिन उनके आगे डट जाने की कोशिश करो, और उनके आगे जल्दी से हथियार मत डाला करो, और अगर कभी गुनाह हो जाये तो फिर मायूस होने के बजाए हमारे दरबार में हाज़िर होकर तौबा कर लिया करो" यहां भी "तव्वाब" का लफ़्ज़ इस्तेमाल किया, "ताइब" नहीं कहा, इसलिए कि ताइब के मायने हैं "तौबा करने वाला" और "तव्वाब" के मायने हैं "बहुत तौबा करने वाला"। मतलब यह है कि सिर्फ़ एक बार तौबा कर लेना काफ़ी नहीं, बल्कि हर बार जब भी गुनाह हो जाये तो अल्लाह तआ़ला के सामने तौबा करते रहो, और जब कस्रत से तौबा करोगे तो फिर इन्शा अल्लाह शैतान का दाव नहीं चलेगा, और शैतान से हिफ़ाज़त रहेगी।

अल्लाह की रहमत के सौ हिस्से हैं

عن ابی ھریرۃ رضی اللہ عنہ قال : سمعت رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم یقول: جعل اللہ الر حمۃ مائۃ جزء، فامسک عندہ تسعۃ وتسعین وانزل فی الارض جزء واحدا، فمن ذالک لجزء یتراحم لخلائق حتی ترفع لدابتہ حافرھا عن ولدھا خشیۃ ان تصیبہ (مسلم شریف)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु रिवायत फ़रमाते हैं कि मैंने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना कि अल्लाह तआ़ला ने जो रहमत पैदा फ़रमाई है, उसके सौ हिस्से किये हैं, उन सौ में से एक हिस्सा रहमत का इस दुनिया में उतारा है, जिसकी

वजह से लोग आपस में एक दूसरे पर रहमत का तरस खाने का और शफ़क़त का मामला करते हैं। जैसे बाप अपने बेटे पर रहम कर रहा है, या मां अपने बच्चों पर रहम कर रही है, भाई भाई पर रहम कर रहा है, भाई बहन पर रहम कर रहा है, या एक दोस्त दूसरे दोस्त पर रहम कर रहा है। गोया कि दुनिया में जितने लोग भी आपस में शफ़क़त और रहम का मामला कर रहे हैं वह एक हिस्सा रहम का नतीजा और तुफ़ैल है, जो अल्लाह तआ़ला ने इस दुनिया में नाज़िल फ़रमाया, यहां तक कि जब घोड़ी का बच्चा दूध पीने के लिए आता है तो वह घोड़ी अपना पांव उठा लेती है, कहीं ऐसा न हो कि दूध पीने के दौरान यह पांव बच्चे को लग जाये, यह भी उसी सौवें हिस्से का एक हिस्सा है। और निन्नानवें हिस्से रहमत के अल्लाह तआ़ला ने अपने पास महफ़ूज़ रखे हुए हैं, उनके ज़रिये आख़िरत में अल्लाह तआ़ला अपने बन्दों पर रहमत का मुज़ाहरा फ़रमायेंगे।

उस ज़ात से मायूसी कैसी?

इस हदीस के ज़रिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हमें यह बता दिया कि क्या तुम उस ज़ात की रहमत से मायूस होते हो, जिस ज़ात ने आख़िरत में तुम्हारे लिए इतनी सारी रहमतें इकट्ठी करके रखी हुई हैं, उस ज़ात से मायूसी का इज़हार करते हो? क्या वह अपनी रहमत से तुमको दूर कर देगा? अलबत्ता सिर्फ़ इतनी बात है कि उन रहमतों को अपनी तरफ़ मुतवज्जह करने की देर है। और उन रहमतों को अपनी तरफ़ मुतवज्जह करने का तरीक़ा यह है कि गुनाहों से तौबा करो, इस्तिग़फ़ार करो और जितना तौबा व इस्तिग़फ़ार करोगे उतना ही अल्लाह तआ़ला की रहमत तुम्हारी तरफ़ मुतवज्जह होगी, और आख़िरत में तुम्हारा बेड़ा पार कर देगी।

सिर्फ़ तमन्ना करना काफ़ी नहीं

लेकिन यह रहमत उसी शख़्स को फ़ायदा देगी जो यह चाहे कि मैं अल्लाह तआ़ला की इस रहमत से फ़ायदा उठा लूं। अब अगर

कोई शख़्स इस रहमत से फ़ायदा उठाना ही न चाहे, बल्कि सारी उम्र ग़फ़लत ही में गुज़ार दे और फिर अल्लाह तआ़ला से तमन्ना रखे कि अल्लाह तआ़ला बड़ा माफ़ करने वाला रहम करने वाला है, ऐसे लोगों के लिए हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

العاجز من اتبع نفسه هواها و تمنى على الله

यानी आ़जिज़ शख़्स वह है जो ख़्वाहिशात के पीछे दौड़ा चला जा रहा है और अल्लाह तआ़ला पर उम्मीदें बांधे हुए है कि अल्लाह तआ़ला बड़ा बख़्शने वाले और रहम करने वाले हैं, माफ़ फ़रमा देंगे। हां अलबत्ता जो शख़्स अपने अ़मल से अल्लाह तआ़ला की रहमत का उम्मीदवार हो और कोशिश कर रहा हो, फिर अल्लाह तआ़ला की रहमत इन्शा अल्लाह उसको आख़िरत में ढांप लेगी।

एक शख़्स का अ़जीब वाक़िआ़

एक और हदीस हज़रत अबू हुरैरह रज़ियल्लाहु अ़न्हु से रिवायत है, फ़रमाते हैं कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने पिछली उम्मतों के एक शख़्स का वाक़िआ़ बयान फ़रमाया कि एक शख़्स था, जिसने अपनी जान पर बड़ा ज़ुल्म किया था, बड़े बड़े गुनाह किये थे, बड़ी ख़राब ज़िन्दगी गुज़ारी थी, और जब उसकी मौत का वक़्त आया तो उसने अपने घर वालों को वसीयत करते हुए कहा कि मैंने अपनी ज़िन्दगी गुनाहों और ग़फ़लतों में गुज़ार दी है, कोई नेक काम तो किया नहीं, इसलिए जब मैं मर जाऊँ तो मेरी लाश को जला देना, और जो राख बन जाए उसको बिल्कुल बारीक पीस लेना फिर उस राख को विभिन्न जगहों पर तेज़ हवा में उड़ा देना, ताकि वे ज़र्रे दूर दूर तक चले जाएं। यह वसीयत मैं इसलिए कर रहा हूं कि अल्लाह की क़समः अगर मैं अल्लाह तआ़ला के हाथ आ गया तो मुझे अल्लाह तआ़ला ऐसा अ़ज़ाब देंगे कि ऐसा अ़ज़ाब दुनिया में किसी और शख़्स को नहीं दिया होगा, इसलिए कि मैंने

गुनाह ही ऐसे किये हैं कि उस अज़ाब का हक़दार हूं।

जब उस शख़्स का इन्तिक़ाल हो गया तो उसके घर वालों ने उसकी वसीयत पर अमल करते हुए उसकी लाश को जलाया, फिर उसको पीसा और फिर उसको हवाओं में उड़ा दिया। जिसके नतीजे में उसके ज़र्रे दूर दूर तक बिखर गये। यह तो उसकी बेवकूफ़ी की बात थी कि शायद अल्लाह तआला मेरे ज़र्रों को जमा करने पर क़ादिर नहीं होंगे। चुनांचे अल्लाह तआला ने हवा को हुक्म दिया कि उसके सारे ज़र्रे जमा कर दो, जब तमाम ज़र्रे जमा हो गये तो अल्लाह तआला ने हुक्म दिया कि इसको दोबारा मुकम्मल इन्सान जैसा था वैसा बना दिया जाये, चुनांचे वह दोबारा ज़िन्दा होकर अल्लाह तआला के सामने पेश किया गया, अल्लाह तआला ने उस से सवाल किया कि तुमने अपने घर वालों को यह सब काम करने की वसीयत क्यों की थी? जवाब में उसने कहा:

خشيتك يا رب

यानी ऐ अल्लाह! आपके डर की वजह से। इसलिए कि मैंने गुनाह बहुत किये थे। और उन गुनाहों के नतीजे में मुझे यक़ीन हो गया था कि मैं आपके अज़ाब का हक़दार हो गया हूं और आपका अज़ाब बड़ा सख़्त है, तो मैंने उस अज़ाब के डर से यह वसीयत कर दी थी। अल्लाह तआला फ़रमायेंगे कि मेरे डर की वजह से तुमने यह काम किया था, जाओ मैंने तुम्हें माफ़ कर दिया।

यह वाक़िआ हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बयान फ़रमाया और मुस्लिम शरीफ़ में सही सनद के साथ मौजूद है।

अब ज़रा सोचिये कि उस शख़्स की यह वसीयत बड़ी अहमक़ाना थी, बल्कि ग़ौर से देखा जाये तो वह काफ़िराना थी, इसलिए कि वह शख़्स यह कह रहा था कि अगर मैं अल्लाह तआला के हाथ आ गया तो अल्लाह तआला मुझे बहुत अज़ाब देगा, लेकिन अगर तुम लोगों ने मुझे जला कर और राख बनाकर उड़ा दिया तो फिर मैं अल्लाह

तआला के हाथ नहीं आऊंगा। खुदा की पनाह। यह अक़ीदा रखना तो कुफ़्र और शिर्क है, गोया कि अल्लाह तआला राख के ज़र्रों को जमा करने पर क़ादिर नहीं हैं, लेकिन जब अल्लाह तआला ने उस से पूछा कि तूने यह काम क्यों किया? तो उसने जवाब दिया कि ऐ अल्लाह! आपके डर की वजह से, अल्लाह तआला फ़रमायेंगे अच्छा तू जानता था कि हम तेरे रब हैं, और मानता था कि हम तेरे रब हैं, और यह भी मानता था कि तूने हमारी ना फ़रमानी की है, और उस ना फ़रमानी पर शर्मिन्दा और नादिम भी था, और तूने अपने मरने से पहले अपने उन गुनाहों पर शर्मिन्दगी का इज़हार कर दिया था, इसलिए हम तेरी मग़फ़िरत करते हैं और तुझे माफ़ फ़रमाते हैं।

इस वाक़िए को बयान करने से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मक़सद यह था कि अल्लाह तआला की रहमत हक़ीक़त में बन्दे से सिर्फ़ एक चीज़ का मुतालबा करती है, वह यह कि बन्दा अपने किये पर सच्चे दिल से शर्मिन्दा हो जाए, नादिम हो जाए और नादिम होकर उस वक़्त जो कुछ कर सकता है वह कर गुज़रे। तो फिर अल्लाह तआला उसकी तौबा क़ुबूल करके उसको माफ़ फ़रमा देते हैं। अल्लाह तआला हम सब को सही मायने में अपने गुनाहों पर शर्मिन्दा होने और तौबा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाए, और अपनी रहमत से हम सब की मग़फ़िरत फ़रमाये, आमीन!

واخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

दुरूद शरीफ़ के फ़ज़ाइल

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

اِنَّ اللّٰهَ وَمَلٰٓئِكَتَهٗ يُصَلُّوْنَ عَلَى النَّبِيِّ، يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا صَلُّوْا عَلَيْهِ وَسَلِّمُوْا تَسْلِيْمًا. (الاحزاب: ٥٦)

وقال رسول اللّٰه صلى اللّٰه عليه وسلم يحسب المؤمن من البخل اذا ذكرت عنده فلم يصل علي. (كتاب الزهد: ٢٦٣)

इन्सानियत के सब से बड़े मुह्सिन

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया, मोमिन के बख़ील होने के लिये यह बात काफ़ी है कि जब मेरा ज़िक्र उसके सामने किया जाये तो वह मुझ पर दुरूद न भेजे, यानी यह एक मुसलमान के बख़ील होने की इन्तिहा है कि उसके सामने नबी–ए–करीम सरवरे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मुबारक नाम आये और वह आप पर दुरूद न भेजे, चूंकि इस कायनात में एक मोमिन का सब से बड़ा मुहसिन नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के सिवा कोई नहीं हो सकता, आपके जितने एहसानात इस उम्मत पर हैं, और ख़ास तौर से उन लोगों पर जिन्हें अल्लाह तआला ने ईमान की दौलत से नवाज़ा, इतने किसी के भी एहसानात नहीं हैं, ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का यह हाल था कि अपनी उम्मत की फ़िक्र में दिन रात घुलते रहते थे, एक सहाबी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व

सल्लम की इस हालत को बयान फ़रमाते हुए कहते हैं किः

كان دائم الفكرة، متواصل الاحزان

यानी जब भी आपको देखता हूं तो ऐसा मालूम होता है कि आप किसी फ़िक्र में हैं, और कोई ग़म आप पर तारी है। उलमा फ़रमाते हैं कि यह फ़िक्र और ग़म कोई इस बात का नहीं था कि आपको तिजारत में नुक़सान हो रहा था और माल व दौलत में कमी आ रही थी, या दुनिया के और दूसरे माल व अस्बाब में कमी आ रही थी, बल्कि यह फ़िक्र और ग़म इस उम्मत के लिये था कि मेरी उम्मत किसी तरीक़े से जहन्नम के अज़ाब से बच जाये और अल्लाह तआला की रिज़ा उसको हासिल हो जाये।

मैं तुम्हें आग से रोक रहा हूं

एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि मेरी मिसाल और तुम्हारी मिसाल ऐसी है, जैसे एक शख़्स ने आग रोशन की, अब परवाने आकर उस आग में गिरने लगे, यह शख़्स उन परवानों को आग से दूर हटाने लगा ताकि वे आग में जल कर ख़त्म न हो जायें इसी तरह मैं तुम्हारी कमर पकड़ पकड़ कर तुमको आग से रोक रहा हूं और तुम मेरे हाथ से निकले जा रहे हो, और उस आग में गिरे जा रहे हो। (मुस्लिम शरीफ़)

बहर हाल हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सारी ज़िन्दगी इस फ़िक्र में गुज़री कि यह उम्मत किसी तरह जहन्नम के अज़ाब से बच जाये, तो क्या एक उम्मती इतना भी नहीं करेगा कि जब सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का नामे नामी आये तो कम से कम आप पर एक बार दुरूद भेज दे? जब कि दुरूद भेजने से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को जो फ़ायदा होता है वह तो होगा, ख़ुद दुरूद भेजने वाले को इसका फ़ायदा पहुंचता है।

अल्लाह तआला भी इस अमल में शरीक हैं

अल्लाह तआला ने कुरआने करीम में दुरूद भेजने के बारे में अजीब अन्दाज़ से बयान फ़रमाया, चुनांचे फ़रमायाः

"ان الله وملائكته يصلون على النبى، يا ايها الذين امنوا صلوا عليه وسلموا تسليمًا.

"यानी बेशक अल्लाह तआला और उसके फ़रिश्ते नबी–ए–पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजते हैं, ऐ ईमान वालो, तुम भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद और सलाम भेजो"।

देखिये शुरू में यह नहीं फ़रमाया कि तुम दुरूद भेजो, बल्कि यह फ़रमाया कि अल्लाह और उसके फ़रिश्ते दुरूद भेजते हैं, इस से दो बातों की तरफ़ इशारा फ़रमा दिया, एक यह कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को तुम्हारे दुरूद की ज़रूरत नहीं, इसलिये कि उन पर पहले ही से अल्लाह तआला दुरूद भेज रहे हैं, और अल्लाह के फ़रिश्ते दुरूद भेज रहे हैं, उनको तुम्हारे दुरूद की क्या ज़रूरत है? लेकिन अगर तुम अपनी भलाई और ख़ैर चाहते हो तो तुम भी नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजो। दूसरे इस बात की तरफ़ इशारा फ़रमाया कि यह दुरूद शरीफ़ भेजने का जो अमल है, इस अमल की शान ही निराली है, इसलिये कि कोई अमल भी ऐसा नहीं है जिसके करने में अल्लाह तआला भी बन्दों के साथ शरीक हों, जैसे नमाज़ है, बन्दा पढ़ता है अल्लाह तआला नमाज़ नहीं पढ़ते, रोज़ा बन्दा रखता है अल्लाह तआला रोज़ा नहीं रखते, ज़कात या हज वग़ैरह जितनी इबादतें हैं उनमें से कोई अमल ऐसा नहीं है जिसमें बन्दे के साथ अल्लाह तआला भी शरीक हों, लेकिन दुरूद शरीफ़ ऐसा अमल है जिसके बारे में अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि यह अमल मैं पहले से कर रहा हूं, अगर तुम भी करोगे तो तुम भी हमारे साथ इस अमल में शरीक हो जाओगे, "अल्लाहु अक्बर" क्या ठिकाना है इस अमल का कि बन्दे के साथ

अल्लाह तआला भी इस अमल में शरीक हो रहे हैं।

बन्दा किस तरह दुरूद भेजे?

लेकिन अल्लाह तआला के दुरूद भेजने का मतलब और है और बन्दे के दुरूद भेजने का मतलब और है, अल्लाह तआला के दुरूद भेजने का मतलब यह है कि अल्लाह तआला बराहे रास्त उन पर अपनी रहमतें फ़रमा रहे हैं, और बन्दे के दुरूद भेजने का मतलब यह है कि वह बन्दा अल्लाह तआला से दुआ कर रहा है कि या अल्लाह, आप मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजिये। चुनांचे हदीस शरीफ़ में आता है कि जब यह आयत नाज़िल हूयी:

"ان الله وملائكته يصلون على النبى، يا ايها الذين آمنوا صلوا عليه وسلموا تسليمًا"۔

तो उस वक़्त सहाबा–ए–किराम ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सवाल किया कि या रसूलल्लाह इस आयत में अल्लाह तआला ने हमें दो हुक्म दिये हैं कि मेरे नबी पर दुरूद भेजो और सलाम भेजो, सलाम भेजने का तरीक़ा तो हमें मालूम है कि जब हम आपकी ख़िदमत में हाज़िर हों तो "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू" कहें, इसी तरह "तशह्हुद" के अन्दर भी सलाम का तरीक़ा आपने बताया कि उसमें "अस्सलामु अलै–क अय्युहन्–नबी व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू" कहा करें, लेकिन हम आप पर दुरूद शरीफ़ किस तरह भेजें? इसका तरीक़ा क्या है?

इस पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जवाब दिया कि मुझ वर दुरूद भेजने का तरीक़ा यह है कि यों कहो:

" اللهم صل على محمد وعلى آل محمد كما صليت على ابراهيم وعلى آل ابراهيم انك حميدمجيد"

"अल्लाहुम्–म सल्लि अला मुहम्मदिन् व अला आलि मुहम्मदिन् कमा सल्लै–त अला इब्राही–म व अला आलि इब्राही–म इन्न–क हमीदुम्–मजीद"

इसके मायने यह हैं कि ऐ अल्लाह! आप मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजीये, इस से इस बात की तरफ़ इशारा कर दिया कि जब बन्दा दुरूद भेजे तो यह समझे कि मेरी क्या हक़ीक़त और हैसियत है कि मैं हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजूं, मैं हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के औसाफ़ और कमालात का इहाता कहां कर सकता हूं? मैं आपके एहसानात का बदला कैसे अदा कर सकता हूं? इसलिये पहले ही क़दम पर अपनी आ़जज़ी का एतिराफ़ कर लो कि या अल्लाह! मैं तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दुरूद शरीफ़ का हक़ अदा नहीं कर सकता, ऐ अल्लाह! आप ही उन पर दुरूद भेज दिजीये। (मुस्लिम शरीफ़)

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मर्तबा अल्लाह तआ़ला ही जानते हैं

ग़ालिब अगरचे आज़ाद शायर थे, लेकिन बाज़ शेर ऐसे कहे हैं कि हो सकता है कि इसी पर अल्लाह तआ़ला उसकी मग़फ़िरत फ़रमा दें, एक शेर उसने बड़ा अच्छा कहा है। वह यह कि:

ग़ालिब सनाये ख़्वाजा बह यज़दां गुज़ाश्तम
कां ज़ाते पाक मर्तबा दाने मुहम्मद अस्त
(सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम)

यानी ग़ालिब! हमने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तारीफ़ का मामला तो अल्लाह तआ़ला ही पर छोड़ दिया है, इसलिये कि हम लोग कितनी भी तारीफ़ करेंगे मगर सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के एहसानात का दसवां हिस्सा भी अदा नहीं कर सकते, इसलिये कि अल्लाह तआ़ला ही की ज़ात एक ऐसी है जो मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मर्तबे को जानती है, हम और आप उनके मर्तबे को जान भी नहीं सकते, इसलिये दुरूद शरीफ़ के ज़रिये यह बता दिया कि तुम इस बात का

एतिराफ़ करो कि मैं न तो हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़ुबियों को पहचान सकता हूं, न उनके एहसानात का हक़ अदा कर सकता हूं और न सही मायने में मेरे अन्दर दुरूद भेजने की अहलियत है, मैं तो यह दुआ ही कर सकता हूं कि ऐ अल्लाह आप ही मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजिये।

यह दुआ सौ फ़ीसद कुबूल होगी

उलमा–ए–किराम ने फ़रमाया कि सारी कायनात में कोई दुआ ऐसी नहीं है जिसके सौ फ़ीसद कुबूल होने का यक़ीन हो, कौन शख़्स यह कह सकता है कि मेरी यह दुआ सौ फ़ीसद ज़रूर कुबूल होगी, और जैसा मैं कह रहा हूं वैसा ही होगा, यह नहीं हो सकता, लेकिन दुरूद शरीफ़ ऐसी दुआ है जिसके सौ फ़ीसद कुबूल होने का यक़ीन है, इसलिये कि दुआ करने से पहले ही अल्लाह तआला ने यह ऐलान फ़रमा दिया कि:

"ان اللہ و ملائکتہ یصلون علی النبی"

यानी हम और हमारे फ़रिश्ते तो तुम्हारी दुआ से पहले ही नबी–ए–पाक पर दुरूद भेज रहे हैं, इसलिये इस दुआ के कुबूल होने में मामूली से शुबह की भी गुन्जाइश नहीं।

दुआ करने का अदब

इसी लिये बुज़ुर्गों ने दुआ करने का यह अदब सिखा दिया कि जब तुम अपने किसी मक़सद के लिये दुआ करो, तो उस दुआ से पहले और बाद में दुरूद शरीफ़ पढ़ लो, इसलिये कि दुरूद शरीफ़ का कुबूल होना तो यक़ीनी ही है, और अल्लाह तआला की शाने करीमी से यह बईद है कि पहली दुआ कुबूल फ़रमा लें और आख़री दुआ को कुबूल फ़रमा लें और दरमियान की दुआ को कुबूल न फ़रमायें, इसलिये जब दुरूद शरीफ़ पढ़ कर फिर अपने मक़सद के लिये दुआ करोगे तो इन्शा अल्लाह उस दुआ को भी ज़रूर कुबूल फ़रमायेंगे, इसी लिये दुआ करने का यह अदब सिखा दिया कि पहले

अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ व सना करो, फिर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ भेजो, और उसके बाद अपने मक़्सदों के लिये दुआ़ करो।

दुरूद शरीफ़ पर अज्र व सवाब

और फिर दुरूद शरीफ़ पढ़ने पर अल्लाह तआ़ला ने अज्र व सवाब भी रखा है, फ़रमाया कि जो शख़्स नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर एक बार दुरूद शरीफ़ भेजे तो अल्लाह तआ़ला उस पर दस रहमतें नाज़िल फ़रमाते हैं, एक रिवायत में है कि दस गुनाह माफ़ फ़रमाते हैं और दस दर्जे बुलन्द फ़रमाते हैं। (निसाई शरीफ़)

हज़रत अब्दुर्रहमान बिन औ़फ़ रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि एक दिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम आबादी से निकल कर एक खजूर के बाग़ में पहुंचे और सज्दे में गिर गये, मैं इन्तिज़ार करने के लिये बैठ गया ताकि जब आप फ़ारिग़ हो जायें तो फिर बात करूं, लेकिन आपका सजदा इतना लम्बा था कि मुझे बैठे बैठे और इन्तिज़ार करते करते बहुत देर हो गयी, यहां तक कि मेरे दिल में यह ख़्याल आने लगा कि कहीं आपकी रूहे मुबारक तो परवाज़ नहीं कर गयी, और यह सोचा कि आपका हाथ हिला कर देखूं, काफ़ी देर के बाद जब सज्दे से उठे तो देखा कि आपके चेहरे पर बड़ी खुशी के आसार हैं, मैंने पूछा कि या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम आज मैंने एक ऐसा मन्ज़र देखा कि जो पहले नहीं देखा था, वह यह कि आपने आज इतना लम्बा सज्दा फ़रमाया कि इस से पहले इतना लम्बा सज्दा नहीं फ़रमाया, और मेरे दिल में यह ख़्याल आने लगा कि कहीं आपकी रूह परवाज़ न कर गयी हो, इसकी क्या वजह थी?

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जवाब में फ़रमाया कि बात यह है कि हज़रत जिबराईल अ़लैहिस्सलाम ने आकर कहा कि मैं तुम्हें खुश ख़बरी सुनाता हूं कि अल्लाह तआ़ला ने फ़रमाया

कि जो शख़्स भी एक बार आप पर दुरूद भेजगा, मैं उस पर रहमत नाज़िल करूंगा और जो शख़्स आप पर सलाम भेजेगा मैं उस पर सलाम भेजूंगा, इस खुश ख़बरी और इनाम के शुक्र में मैंने यह सज्दा किया।

दुरूद शरीफ़ फ़ज़ाइल का मजमूआ है

और फिर दुरूद शरीफ़ ऐसी अफ़ज़ल इबादत है कि "ज़िक्र" उसके अन्दर मौजूद है, हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के एहसानात का एतिराफ़ इसमें है, दुआ की फ़ज़ीलत इसमें है, बेशुमार फ़ज़ाइल दुरूद शरीफ़ में जमा हैं, इसलिये जब यह दुरूद शरीफ़ इतनी फ़ज़ीलत वाला है तो आदमी फिर भी इतना बख़ील बन जाये कि जब नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का ज़िक्रे मुबारक आये तो एक बार भी दुरूद न भेजे? इसलिये हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि मोमिन के बख़ील होने के लिये यह काफ़ी है कि उसके सामने मेरा नाम आये और वह मुझ पर दुरूद न भेजे।

दुरूद शरीफ़ न पढ़ने पर वईद

एक बार हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मस्जिदे नबवी में खुतबा देने के लिये तशरीफ़ लाये, जिस वक़्त मिम्बर की पहली सीढ़ी पर क़दम रखा, उस वक़्त ज़बान से फ़रमाया "आमीन" फिर जिस वक़्त दूसरी सीढ़ी पर क़दम रखा, उस वक़्त फिर फ़रमाया "आमीन" फिर जिस वक़्त तीसरी सीढ़ी पर क़दम रखा, उस वक़्त फिर फ़रमाया "आमीन" उसके बाद आपने खुतबा दिया, जब आप खुतबे से फ़ारिग़ होकर नीचे तशरीफ़ लाये तो सहाबा ने सवाल किया कि या रसूलल्लाह आज आपने मिम्बर पर जाते हुए (बग़ैर किसी दुआ के) तीन बार "आमीन" कहा, इसकी क्या वजह है? हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जवाब दिया कि बात असल में यह है कि जिस वक़्त मैं मिम्बर पर जाने लगा, उस वक़्त जिबराईल

अ़लैहिस्सलाम मेरे सामने आ गये, उन्हों ने तीन दुआ़यें कीं, और मैंने उन दुआ़ओं पर "आमीन" कहा, हक़ीक़त में वे दुआ़यें नहीं थीं बल्कि वे बद् दुआ़यें थीं।

आप तसव्वुर करें कि मस्जिदे नबवी जैसा मुक़द्दस मक़ाम है, और ग़ालिबन जुमे का दिन है, और ख़ुतबा–ए–जुमा का वक़्त है जो दुआ़ के क़ुबूल होने का वक़्त है और दुआ़ करने वाले जिबराईल अ़लैहिस्सलाम हैं, और "आमीन" कहने वाले हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं, किसी दुआ़ के क़ुबूल होने की इस से ज़्यादा क्या गारन्टी हो सकती है जिसमें इतनी चीज़ें जमा हो जायें।

फिर फ़रमाया कि पहली दुआ़ हज़रत जिबराईल अ़लैहिस्सलाम ने यह की कि वह शख़्स बर्बाद हो जाये जो अपने मां बाप को बुढ़ापे में पाये और फिर उनकी ख़िदमत करके अपने गुनाहों की मग़फ़िरत न करा ले और जन्नत न हासिल कर ले, इसलिये कि कई बार मां बाप औलाद की ज़रा सी बात और ख़िदमत पर ख़ुश होकर दुआ़यें दे देते हैं और इन्सान की मग़फ़िरत का सामान हो जाता है। इसलिये जिसके मां बाप बूढ़े हों और वह उनकी ख़िदमत करके जन्नत का परवाना हासिल न कर सके, और अपने गुनाहों को माफ़ न करा सके तो ऐसा शख़्स हलाक व बर्बाद होने के लायक़ है, यह बद् दुआ़ हज़रत जिबराईल अ़लैहिस्सलाम ने की और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस पर "आमीन" कही।

दूसरी बद् दुआ़ यह की कि वह शख़्स हलाक हो जाये जिस पर रमज़ानुल मुबारक का पूरा महीना गुज़र जाये, इसके बावजूद वह अपने गुनाहों की मग़फ़िरत न करा ले, क्योंकि रमज़ानुल मुबारक में अल्लाह तआ़ला की रहमत मग़फ़िरत के बहाने ढूंढती है।

तीसरी बद् दुआ़ यह थी कि वह शख़्स हलाक व बर्बाद हो जाये जिसके सामने मेरा नाम लिया जाये और वह मुझ पर दुरूद न भेजे, दुरूद शरीफ़ न पढ़ने पर इतनी सख़्त वईद है, इसलिये जब भी

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मुबारक नाम आए तो आप पर दुरूद शरीफ़ पढ़ना चाहिये। (तारीख़े कबीर)

बहुत ही मुख़्तसर दुरूद शरीफ़

असल दुरूद शरीफ़ तो "दुरूदे इब्राहीमी" है जो अभी मैंने पढ़ कर सुनाया, जिसको नमाज़ के अन्दर भी पढ़ते हैं, अगरचे दुरूद शरीफ़ के और भी अल्फ़ाज़ हैं लेकिन तमाम उलाम-ए-किराम को इस पर इत्तिफ़ाक़ है कि अफ़्ज़ल दुरूद शरीफ़ "दुरूदे इब्राहीमी" है, क्योंकि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बराहे रास्त सहाबा को यह दुरूद सिखाया है कि इस तरह मुझ पर दुरूद भेजा करो, लेकिन जब भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मुबारक नाम आए तो हर बार चूंकि दुरूदे इब्राहीमी का पढ़ना मुश्किल होता है इसलिये दुरूद शरीफ़ का आसान और मुख़्तसर जुमला यह तज्वीज़ कर दिया किः

"صلى الله عليه وسلم"

"सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम"

इसके मायने यह हैं कि अल्लाह तआ़ला उन पर दुरूद भेजे और सलाम भेजे, इसमें दुरूद भी हो गाया और सलाम भी हो गया, इसलिये अगर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मुबारक नाम सुनते वक़्त सिर्फ़ "सल्लल्लाहू अ़लैहि व सल्लम" कह लिया जाये या लिखते वक़्त सिर्फ़ "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" लिख दिया जाये तो दुरूद शरीफ़ की फ़ज़ीलत हासिल हो जाती है।

"सल्‌अम" या सिर्फ़ "साद" लिखना दुरुस्त नहीं

लेकिन बहुत से हज़रात को यह भी लम्बा लगता है, मालूम नहीं हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का पाक नाम लिखने के बाद "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" लिखने में उनको घबराहट होती है, या वक़्त ज़्यादा लगता है, या रोशनाई ज़्यादा ख़र्च होती है। चुनांचे "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" लिखने के बजाये "सल्‌अम"

लिख देते हैं, या बाज़ लोग सिर्फ़ "साद" लिख देते हैं। दुनिया के दूसरे सारे कामों में छोटा होने की फ़िक्र नहीं होती, सारा छोटा करने का काम हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नाम के साथ दुरूद शरीफ़ लिखने में आता है, यह कितनी बड़ी महरूमी और बुख़्ल की बात है। अरे! पूरा "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" लिखने में क्या बिगड़ जायेगा?

दुरूद शरीफ़ लिखने का सवाब

हालांकि हदीस शरीफ़ में आया है कि अगर ज़बान से एक बार दुरूद शरीफ़ पढ़ो तो उस पर अल्लाह तआ़ला दस रहमतें नाज़िल फ़रमाते हैं, दस नेकियां उसके नामा–ए–आमाल में लिख देते हैं और दस गुनाह माफ़ फ़रमाते हैं। और अगर लिखने में "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" कोई शख़्स लिखे तो हदीस में आता है कि जब तक वह तहरीर (लिखावट) बाक़ी रहेगी उस वक़्त तक फ़रिश्ते बराबर उस पर दुरूद भेजते रहेंगे। (ज़ादुस्–सईद)

इस से मालूम हुआ कि तहरीर में "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" लिखा तो अब जो शख़्स भी उस तहरीर को पढ़ेगा उसका सवाब लिखने वाले को भी मिलेगा, इसलिये लिखने के वक़्त मुख़्तसर "साद" (सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का निशान) या "सल्अ़म" लिखना यह बड़ी बख़ीली, कन्जूसी और महरूमी की बात है, इसलिये कभी ऐसा नहीं करना चाहिये।

मुहद्दिसीने इज़ाम मुक़र्रब बन्दे हैं

इल्मे हदीस के फ़ज़ाइल सीरते तैयबा के फ़ज़ाइल के बयान में उलमा–ए–किराम ने एक बात यह भी लिखी है कि इस इल्म के पढ़ने वाले और पढ़ाने वाले को बार बार दुरूद शरीफ़ पढ़ने की तौफ़ीक़ होती है, क्योंकि जब भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ज़िक्रे मुबारक आयेगा, वह शख़्स "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" कहेगा, इसलिये उसको ज़्यादा से ज़्यादा दुरूद भेजने की

तौफ़ीक़ हो जाती है, चुनांचे फ़रमाया गया कि मुहद्दिसीने इज़ाम जो इल्मे हदीस के साथ मश्गूलियत रखते हैं, वे अल्लाह तआला के सब से ज़्यादा मुक़र्रब बन्दे हैं, इसलिये कि ये दुरूद शरीफ़ ज़्यादा भेजते हैं। यह दुरूद शरीफ़ इतनी फ़ज़ीलत की चीज़ है। अल्लाह तआला हम सब को इसमें मश्गूल होने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये और इसकी क़द्र करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

फ़रिश्ते रहमत की दुआ करते हैं

"عن عامر بن ربيعة رضى الله عنه قال: سمعت رسول الله صلى الله عليه وسلم، يقول: من صلى على صلاة صلت عليه الملائكة ما صلى على، فليقل عبد من ذلك او ليكثر" (ابن ماجه شريف)

हज़रत आमिर बिन रबीआ रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि मैंने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सुना है कि जो शख़्स मुझ पर दुरूद भेजता है तो जब तक वह दुरूद भेजता रहता है फ़रिश्ते उसके लिये रहमत की दुआ करते रहते हैं, अब जिसका दिल चाहे फ़रिश्तों की रहमत की दुआ अपने लिये कम कर ले या ज़्यादा कर ले।

दस रहमतें, दस बार सलामती

"وعن ابى طلحة رضى الله عنه ان رسول الله صلى الله عليه وسلم جاء ذات يوم والبشرىٰ يرى فى وجهه فقال: انه جاء جبرئيل فقال: اما يرضيك يا محمد ان لا يصلى عليك احد من امتك الا صليت عشرًا، ولا يسلم عليك احد من امتك الا سلمت عليه عشراً" (سنن نسائى شريف)

हज़रत अबू तलहा रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि एक दिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम इस तरह तशरीफ़ लाये कि आपके चेहरे पर खिलेपन और ख़ुशी के आसार थे, और आकर फ़रमाया कि मेरे पास हज़रत जिबराईल तशरीफ़ लाये, और उन्हों ने आकर फ़रमाया कि ऐ मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अल्लाह तआला फ़रमा रहे हैं कि क्या आपके राज़ी होने के लिये यह बात

काफ़ी नहीं है कि आपकी उम्मत में से जो बन्दा भी आप पर दुरूद भेजेगा तो मैं उस पर दस रहमतें नाज़िल करूंगा, और जो भी बन्दा आप पर दुरूद भेजेगा तो मैं उस पर दस बार सलामती नाज़िल करूंगा।

दुरूद शरीफ़ पहुंचाने वाले फ़रिश्ते

"عن ابی مسعود رضی الله عنه قال: قال رسول الله صلی الله علیه وسلم : ان لله تعالی ملائکة سیاحین فی الارض، یبلغونی من امتی السلام". (سنن نسائی شریف)

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि अल्लाह तआ़ला के बहुत से फ़रिश्ते ऐसे हैं जो ज़मीन पर घूमते फिरते हैं और जो कोई बन्दा मुझ पर सलाम भेजता है वे फ़रिश्ते उस सलाम को मुझ तक पहुंचा देते हैं।

एक और हदीस में है कि जब कोई बन्दा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजता है तो वह दुरूद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास नाम लेकर पहुंचाया जाता है कि आपकी उम्मत में से फ़लां बिन फ़लां ने आपकी ख़िदमत में दुरूद शरीफ़ का यह तोहफ़ा भेजा है। इन्सान की इस से बड़ी क्या सआ़दत होगी कि नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की बारगाह में उसका नाम पहुंज जाये। (कन्ज़ुल उम्माल)

मैं खुद दुरूद सुनता हूं

एक हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब मेरा उम्मती दूर से मेरे ऊपर दुरूद भेजता है तो उस वक़्त फ़रिश्तों के ज़रिये वह दुरूद मुझ तक पहुंचाया जाता है। और जब कोई उम्मती मेरी क़ब्र पर आकर दुरूद भेजता है, और यह कहता है कि:

"الصلاة والسلام علیك یا رسول الله"

"अस्सलातु वस्सलामु अ़लै–क या रसूलल्लाह"

उस वक़्त मैं खुद उसके दुरूद व सलाम को सुनता हूं।

(कन्ज़ुल उम्माल)

अल्लाह तआला ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को क़ब्र में एक ख़ास क़िस्म की ज़िन्दगी अता फ़रमाई हुई है, इसलिये वह सलाम आप खुद सुनते हैं, और इसी वजह से उलमा ने फ़रमाया कि जब कोई आपकी क़ब्र पर जाकर दुरूद भेजे तो ये अल्फ़ाज़ कहे:

"الصلاة والسلام عليك يا رسول الله"

"अस्सलातु वस्सलामु अलै–क या रसूलल्लाह"

और जब दूर से दुरूद शरीफ़ भेजे तो उस वक़्त दुरूदे इब्राहीमी पढ़े।

दुख और परेशानी के वक़्त दुरूद शरीफ़ पढ़ें

मेरे शैख़ हज़रत डाक्टर अब्दुल हई साहिब रह. ने एक बार फ़रमाया कि जब आदमी को कोई दुख और परेशानी हो, या कोई बीमारी हो, या कोई ज़रूरत और हाजत हो तो अल्लाह तआला से दुआ तो करनी चाहिये कि या अल्लाह! मेरी इस ज़रूरत को पूरा फ़रमा दीजिये, मेरी इस परेशानी और बीमारी को दूर फ़रमा दीजिये लेकिन एक तरीक़ा ऐसा बताता हूं कि उसकी बर्कत से अल्लाह तआला उसकी ज़रूरत को ज़रूर ही पूरा फ़रमा देंगे, वह यह है कि जब कोई परेशानी हो उस वक़्त दुरूद शरीफ़ कस्रत से पढ़ें, उस दुरूद शरीफ़ की बर्कत से अल्लाह तआला उस परेशानी को दूर फ़रमा देंगे।

हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. की दुआयें हासिल करें

दलील इसकी यह है कि सीरते तैयबा में यह बात लिखी हुई है कि जब कोई शख़्स हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में कोई हदिया लाता तो आप इस बात की कोशिश फ़रमाते कि उसके जवाब में उस से बेहतर तोहफ़ा उसकी ख़िदमत में पेश

करूं, ताकि उसका बदल हो जाये, सारी ज़िन्दगी आपने इस पर अ़मल फ़रमाया, यह दुरूद शरीफ़ भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हदिया है, और चूंकि सारी ज़िन्दगी में आपका यह मामूल था कि जवाब में उस से बढ़ कर हदिया देते थे, तो आज जब फ़रिश्ते दुरूद शरीफ़ आपकी ख़िदमत में पहुंचायेंगे कि आपके फ़लां उम्मती ने आपकी ख़िदमत में दुरूद शरीफ़ का यह तोहफ़ा भेजा है तो ग़ालिब गुमान यह है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इस हदिये का भी जवाब देंगे, वह जवाबी हदिया यह होगा कि वे अल्लाह तआ़ला से दुआ़ करेंगे कि जिस तरह इस बन्दे ने मुझे हदिया भेजा, ऐ अल्लाह! इस बन्दे की हाजतें भी आप पूरी फ़रमा दें और इसकी परेशानियां दूर फ़रमा दें। अब इस वक़्त हम लोग हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में जाकर यह नहीं कह सकते कि आप हमारे हक़ में दुआ़ फ़रमा दीजिये, दुआ़ की दरख़्वास्त करने का तो कोई रास्ता नहीं है, हां एक रास्ता है, वह यह कि हम दुरूद शरीफ़ कस्रत से भेजें, जवाब में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमारे हक़ में दुआ़ फ़रमायेंगे। इसलिये दुरूद शरीफ़ पढ़ने का यह अ़ज़ीम फ़ायदा हमें हासिल करना चाहिये, इसी वजह से बहुत से बुज़ुर्गों से मन्क़ूल है कि वे बीमारी और दुख की हालत में दुरूद शरीफ़ की कस्रत किया करते थे। इसलिये दिन भर में कम से कम सौ बार दुरूद शरीफ़ पढ़ लिया करें, अगर पूरा दुरूदे इब्राहीमी पढ़ने की तौफ़ीक़ हो जाये तो बहुत अच्छा है वर्ना मुख़्तसर दुरूद पढ़ लें:

"اللهم صلى على محمد النبى الامى وعلى اله واصحابه وبارك وسلم"

अल्लाहुम्-म सल्लि अ़ला मुहम्मदिन् नबिय्यिल् उम्मिय्यि व अ़ला आलिही व अस्हाबिही व बारिक व सल्लिम्"

और भी मुख़्तसर करना चाहें तो यह पढ़ लें:

"اللهم صلى على محمد وسلم"

"अल्लाहुम्-म सल्लि अ़ला मुहम्मदिन् व सल्लिम्"

या "सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम" पढ़ लें, लेकिन सौ बार ज़रूर पढ़ लें, उसकी बर्कत से अज्र व सवाब के ज़ख़ीरे भी जमा हो जायेंगे और इन्शा अल्लाह अल्लाह की रहमत से मग़्फ़िरत होने की भी उम्मीद है।

दुरूद शरीफ़ के अल्फ़ाज़ क्या हों?

एक बात और समझ लें, यह दुरूद शरीफ़ पढ़ना एक इबादत भी है और एक दुआ भी है, जो अल्लाह तआला के हुक्म पर की जा रही है, इसलिये दुरूद शरीफ़ के लिये वही अल्फ़ाज़ इख़्तियार करने चाहियें जो अल्लाह ने और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बताये हैं, और उलमा-ए-किराम ने इस पर मुस्तकिल किताबें लिख दी हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से कौन कौन से दुरूद साबित और मन्कूल हैं, जैसे हाफ़िज़ सख़ावी रह. ने एक किताब अर्बी में लिखी है:

"القول البديع فى الصلاة على الحبيب الشفيع"

" अल् क़ौलुल् बदीअ् फ़िस्सलाति अलल् हबीबिश्शफ़ी"

जिसमें तमाम दुरूद शरीफ़ जमा कर दिये हैं, इसी तरह हज़रत थानवी रह. ने एक रिसाला लिखा है जिसका नाम है "ज़ादुस्-सईद" जिसमें हज़रत थानवी रह. ने दुरूद शरीफ़ के वे तमाम अल्फ़ाज़ और सीग़े जमा फ़रमा दिये हैं जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से साबित हैं, और उनकी फ़ज़ीलतें बयान फ़रमाई हैं।

मन घड़त दुरूद शरीफ़ न पढ़ें

लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से इतनी कस्रत से दुरूद शरीफ़ मन्कूल होने के बावजूद लोगों का यह शौक़ हो गया है कि हम अपनी तरफ़ से दुरूद बनाकर पढ़ेंगे, चुनांचे किसी ने दुरूदे ताज घड़ लिया, किसी ने दुरूदे लख्खी घड़ लिया, वग़ैरह वग़ैरह। और उनके फ़ज़ाइल भी अपनी तरफ़ से बना कर पेश कर दिये कि इसको पढ़ोगे तो यह हो जायेगा, हालांकि न तो ये अल्फ़ाज़

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मन्कूल हैं और न उनके ये फ़ज़ाइल मन्कूल हैं, बल्कि बाज़ के तो अल्फ़ाज़ भी शरीअ़त के ख़िलाफ़ हैं, यहां तक कि बाज़ में शिरकिया कलिमे भी दर्ज हैं। इसलिये सिर्फ़ वे दुरूद शरीफ़ पढ़ने चाहियें जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मन्कूल हैं, दूसरे दुरूद नहीं पढ़ने चाहियें। इसलिये हज़रत थानवी रह. की किताब "ज़ादुस्–सईद" हर शख़्स को अपने घर में रखना चाहिये और उसमें बयान किये हुए दुरूद शरीफ़ पढ़ने चाहियें।

नालैन मुबारक का नक़्शा और उसकी फ़ज़ीलत

इस रिसाले में हज़रत थानवी रह. ने एक काम की चीज़ और एक नेमत और देदी है, वह है हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नालैन मुबारक (मुबारक जूतों) का नक़्शा, उस नक़्शे के बारे में बुज़ुर्गों का तजुर्बा यह है कि सख़्त बीमारी और परेशानी की हालत में अगर नालैन मुबारक के उस नक़्शे को सीने पर रख दिया जाये तो अल्लाह तआ़ला उसकी बर्कत से परेशानी और मुसीबत को दूर फ़रमा देते हैं। इसलिये कोई घर इस रिसाले से ख़ाली नहीं होना चाहिये। इसी तरह शैख़ुल हदीस हज़रत मौलाना मुहम्मद ज़करिया साहिब रह. का एक रिसाला है "फ़ज़ाइले दुरूद शरीफ़" वह भी अपने घर में रखें और पढ़ें और दुरूद शरीफ़ को अपने लिये बहुत बड़ी नेमत समझ कर उसको वज़ीफ़ा बनायें।

दुरूद शरीफ़ का हुक्म

तमाम उलमा–ए–उम्मत का इस बात पर इत्तिफ़ाक़ है कि हर शख़्स के ज़िम्मे ज़िन्दगी में कम से कम एक बार दुरूद शरीफ़ पढ़ना लाज़मी फ़र्ज़ है, और बिल्कुल इसी तरह फ़र्ज़ है जैसे नमाज़, रोज़ा, ज़कात और हज फ़र्ज़ हैं, इसके फ़र्ज़ होने की दलील क़ुरआने करीम की यह आयत है:

" ان الله وملائكته يصلون على النبى، يا ايها الذين امنوا صلوا عليه

وسلوا تسليمًا"

और इसके अलावा जब कभी एक ही मज्लिस में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मुबारक नाम बार बार आये, चाहे पढ़ने में या सुनने में तो उस वक़्त एक बार दुरूद शरीफ़ पढ़ना वाजिब है, अगर नहीं पढ़ेगा तो गुनाहगार होगा।

वाजिब और फ़र्ज़ में फ़र्क़

वाजिब और फ़र्ज़ में अमली एतिबार से कोई फ़र्क़ नहीं होता, इसलिये कि वाजिब पर भी अमल करना ज़रूरी है और फ़र्ज़ पर भी अमल करना ज़रूरी है, फ़र्ज़ को छोड़ने वाला भी गुनाहगार होता है और वाजिब को छोड़ने वाला भी गुनाहगार होता है। लेकिन दोनों के दरमियान फ़र्क़ यह है कि अगर कोई शख़्स फ़र्ज़ का इन्कार कर दे तो काफ़िर हो जाता है, जैसे अगर कोई शख़्स कहे कि नमाज़ फ़र्ज़ नहीं है, (अल्लाह अपनी पनाह में रखे) तो वह शख़्स मुसलमान नहीं रहेगा, काफ़िर हो जायेगा। या रोज़े के फ़र्ज़ होने का इन्कार कर दे तो वह काफ़िर हो जायेगा, वाजिब के इन्कार करने से काफ़िर नहीं होता, लेकिन सख़्त गुनाहगार और फ़ासिक़ हो जाता है। जैसे अगर कोई शख़्स वित्र की नमाज़ का इन्कार कर दे कि वित्र की नमाज़ वाजिब नहीं तो वह शख़्स बहुत सख़्त गुनाहगार होगा और फ़ासिक़ हो जायेगा, लेकिन अमली एतिबार से दोनों ज़रूरी हैं।

हर बार दुरूद शरीफ़ पढ़ना चाहिये

लेकिन शरीअत ने इस बात का लिहाज़ रखा है कि जो हुक्म बन्दे को दिया जाये वह क़ाबिले अमल हो। इसलिये अगर एक ही मज्लिस में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का पाक नाम बार बार लिया जाये तो सिर्फ़ एक बार दुरूद शरीफ़ पढ़ने से वाजिब अदा हो जाता है, अगर हर बार दुरूद शरीफ़ नहीं पढ़ेगा तो वाजिब छोड़ने का गुनाह नहीं होगा, लेकिन एक मुसलमान के ईमान का तक़ाज़ा यह है कि एक ही मज्लिस में अगर बार बार भी हुज़ूरे

अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का ज़िक्रे मुबारक आये तो हर बार वह दुरूद शरीफ़ पढ़े अगरचे मुख़्तसर ही "सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम" पढ़ ले।

वुज़ू के दौरान दुरूद शरीफ़ पढ़ना

कुछ वक़्त ऐसे हैं जिन में दुरूद शरीफ़ पढ़ना मुस्तहब है, वुज़ू करने के दौरान एक बार दुरूद शरीफ़ पढ़ना मुस्तहब है, और बार बार पढ़ते रहना और ज़्यादा फ़ज़ीलत का सबब है। इसलिये एक मुसलमान को चाहिये कि जब तक वुज़ू में मश्ग़ूल रहे दुरूद शरीफ़ पढ़ता रहे, उलमा-ए-किराम ने इसको मुस्तहब क़रार दिया है।

जब हाथ पांव सुन हो जायें

इसी तरह हदीस शरीफ़ में आया है कि अगर तुम में से किसी शख़्स का हाथ या पांव सुन हो जाये, यानी हाथ या पांव सो जाये, और उसकी वजह से उसके अन्दर एहसास ख़त्म हो जाये और वह शल हो जाये, उस वक़्त वह शख़्स मुझ पर दुरूद शरीफ़ भेजे:

"اللهم صل على محمد وعلى آل محمد كما صليت على ابراهيم وعلى آل ابراهيم انك حميد مجيد"

"अल्लाहुम्-म सल्लि अ़ला मुहम्मदिंव्-व अ़ला आलि मुहम्मदिन् कमा सल्लै-त अ़ला इब्राही-म व अ़ला आलि इब्राही-म इन्न-क हमीदुम्-मजीद"

जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस मौक़े पर दुरूद शरीफ़ पढ़ने की तलक़ीन फ़रमाई है तो इस से यह ज़ाहिर होता है कि दुरूद शरीफ़ पढ़ना इस बीमारी का इलाज भी है, और अल्लाह तआ़ला की रहमत से उम्मीद यह है कि दुरूद शरीफ़ पढ़ने से सुन हो जाने का असर ख़त्म हो जायेगा। मैं कहता हूं कि यह इस बीमारी का इलाज हो या न हो, लेकिन एक मोमिन को हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ भेजने और दुरूद शरीफ़ की फ़ज़ीलत हासिल करने का एक मौक़ा मिला है, इसलिये

इस मौक़े को ग़नीमत समझ कर एक मुसलमान को उस वक़्त दुरूद शरीफ़ पढ़ना चाहिये।

मस्जिद में दाख़िल होते और निकलते वक़्त दुरूद शरीफ़

इसी तरह मस्जिद में दाख़िल होते वक़्त और मस्जिद से निकलते वक़्त भी दुरूद शरीफ़ पढ़ना मुस्तहब है। चुनांचे मस्जिद में दाख़िल होने की मस्नून दुआ यह है:

"اللهم افتح لی ابواب رحمتك"

"अल्लाहुम्मफ़्तह् ली अब्वा–ब रह्मति–क"

और मस्जिद से निकलने की मस्नून दुआ यह है:

"اللهم انی اسئلك من فضلك"

"अल्लाहुम्–म इन्नी अस्अलु–क मिन् फ़ज़्लि–क"

रिवायतों में आता है कि इन दुआओं के साथ बिस्मिल्लाह और दुरूद शरीफ़ का इज़ाफ़ा भी कर लेना चाहिये, और मस्जिद में दाख़िल होते वक़्त इस तरह दुआ पढ़नी चाहिये:

"بسم الله والصلاة والسلام علی رسول الله، اللهم افتح لی ابواب رحمتك"

"बिस्मिल्लाहि वस्सलातु वस्सलामु अला रसूलिल्लाहि, अल्लाहुम्मफ़्तह् ली अब्वा–ब रह्मति–क"

और मस्जिद से निकलते वक़्त इस तरह पढ़नी चाहिये:

"بسم الله والصلاة والسلام علی رسول الله، اللهم انی اسئلك من فضلك"

"बिस्मिल्लाहि वस्सलातु वस्सलामु अला रसूलिल्लाहि, अल्लाहुम्–म इन्नी अस्अलु–क मिन् फ़ज़्लि–क"

इसलिये इन दोनों मौक़ों पर दुरूद शरीफ़ पढ़ना पसन्दीदा है।

इन दुआओं की हिक्मत

अल्लाह तआला ने मस्जिद में दाख़िल होते वक़्त और मस्जिद से निकलते वक़्त ये दो अजीब दुआयें तल्क़ीन फ़रमायी हैं, फ़रमाया कि दाख़िल होते वक़्त यह दुआ करो कि ऐ अल्लाह! मेरे लिये अपनी

रहमत के दरवाज़े खोल दे, और मस्जिद से निकलते वक़्त यह दुआ करो कि ऐ अल्लाह! मैं आप से आपका फ़ज़्ल मांगता हूं, गोया कि मस्जिद में दाख़िल होते वक़्त रहमत की दुआ मांगी, और मस्जिद से निकलते वक़्त फ़ज़्ल की दुआ मांगी। उलमा ने इन दोनों दुआओं की हिक्मत यह बयान फ़रमाई कि कुरआने करीम और हदीसों में आम तौर पर "रहमत" का इस्तेमाल आख़िरत की नेमतों पर होता है, चुनांचे जब किसी का इन्तिक़ाल हो जाता है तो उसके लिये "रह्हि–महुल्लाह" या "रह्मतुल्लाहि अ़लैहि" के अल्फ़ाज़ से दुआ की जाती है, यानी अल्लाह तआ़ला उस पर रहम फ़रमाये। और "फ़ज़्ल" का इस्तेमाल आ़म तौर पर दुनियावी नेमतों पर होता है, जैसे माल व दौलत, बीवी बच्चे, घर बार, रोज़ी कमाने के अस्बाब वग़ैरह को "फ़ज़्ल" कहा जाता है, इसलिये मस्जिद में दाख़िल होते वक़्त यह दुआ करो कि ऐ अल्लाह मेरे लिये रहमत के दरवाज़े खोल दीजिये, यानी आख़िरत की नेमतों के दरवाज़े खोल दीजिये, और मस्जिद में दाख़िल होने के बाद मुझे ऐसी इबादत करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाइये, और इस तरह आपका ज़िक्र करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाइये, जिसके ज़रिये आपकी रहमत के यानी आख़िरत की नेमतों के दरवाज़े मुझ पर खुल जायें, और आख़िरत की नेमतें हासिल हो जायें।

और चूंकि मस्जिद से निकलने के बाद या तो आदमी अपने घर जायेगा, या मुलाज़मत के लिये दफ़्तर में जायेगा, या अपनी दुकान पर जायेगा और रोज़ी कमायेगा, इसलिये इस मौक़े पर यह दुआ तलक़ीन फ़रमाई, कि ऐ अल्लाह! मुझ पर अपने फ़ज़्ल के दरवाज़े खोल दीजिये, यानी दुनियावी नेमतों के दरवाज़े खोल दीजिये।

आप ग़ौर करें कि अगर इन्सान की सिर्फ़ ये दो दुआयें क़ुबूल हो जायें तो फिर इन्सान को और क्या चाहिये? इसलिये कि दुनिया में अल्लाह का फ़ज़्ल मिल गया और आख़िरत में अल्लाह की रहमत हासिल हो गयी। "अल्लाह तआ़ला हम सब के हक़ में इन दोनों

दुआओं को कुबूल फ़रमाये, आमीन। और जब ये अज़ीमुश्शान दुआयें करो तो इस से पहले हमारे नबी मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेज दिया करो, इसलिये कि जब तुम हमारे नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजोगे तो चूंकि वह दुरूद तो हमें कुबूल ही करना है, यह मुम्किन नहीं कि हम उसको कुबूल न करें। इसलिये कि हम तो कुबूलियत का पहले से ऐलान कर चुके हैं। और जब हम दुरूद शरीफ़ कुबूल करेंगे तो उसके साथ तुम्हारी ये दुआयें भी कुबूल कर लेंगे, और अगर ये दुआयें कुबूल हो गयीं तो दुनिया व आख़िरत की नेमतें हासिल हो गयीं। इसलिये मस्जिद में जाते वक़्त और निकलते वक़्त दुरूद शरीफ़ ज़रूर पढ़ लिया करो।

अहम बात से पहले दुरूद शरीफ़

इसी तरह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब आदमी कोई अहम बात करना शुरू करे, या अहम बात लिखे, तो उस से पहले अल्लाह तआला की तारीफ़ व सना करे, और फिर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजे, उसके बाद अपनी बात कहे या लिखे, चुनांचे आपने देखा होगा कि तक़रीर के शुरू में एक ख़ुतबा पढ़ा जाता है, उस ख़ुतबे में अल्लाह तआला की तारीफ़ और तौहीद का बयान होता है, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद और आपकी रिसालत का बयान होता है, और अगर मुख़्तसर वक़्त हो तो आदमी सिर्फ़ इतना ही कह दे:

"نحمده ونصلی علی رسوله الکریم"

"नह्मदुहू व नुसल्ली अला रसूलिहिल् करीम"

यानी हम अल्लाह तआला की तारीफ़ करते हैं और हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ भेजते हैं या यह पढ़ ले:

"الحمد لله و کفیٰ و سلام علیٰ عباده الذین اصطفیٰ"

"अल्हम्दु लिल्लाहि व कफ़ा व सलामुन् अ़ला अ़िबादि-हिल्लज़ीनस्तफ़ा"

यह भी मुख़्तसर दुरूद शरीफ़ की एक सूरत है। इसलिये जब भी कोई बात कहनी हो या लिखनी हो, उस वक़्त तारीफ़ व दुरूद कहना चाहिये, हमारे यहां तो जब कोई शख़्स बाक़ायदा तक़रीर करता है उस वक़्त यह पढ़ता है:

"نحمده ونصلى على رسوله الكريم"

"नह्मदुहू व नुसल्ली अ़ला रसूलिहिल् करीम"

लेकिन सहाबा-ए-किराम रिज़यल्लाहु अ़न्हुम के यहां यह मामूल था कि किसी भी मस्अले पर बात करनी हो, चाहे वे दुनियावी मसाइल ही क्यों न हों, जैसे ख़रीद व बेच की बात हो या रिश्ते नाते की बात हो, तो बात शुरू करने से पहले अल्लाह की तारीफ़ व सना और दुरूद शरीफ़ पढ़ते, उसके बाद अपनी मक़्सद की बात करते। चुनांचे अ़रब वालों के अन्दर अभी तक इसकी झलक और इसका नमूना कुछ कुछ मौजूद है कि जब किसी काम के मश्विरे के लिये बैठते हैं तो पहले अल्लाह की तारीफ़ व सना और दुरूद शरीफ़ पढ़ते हैं, हमारे यहां यह सुन्नत ख़त्म होती जा रही है, इस सुन्नत को ज़िन्दा करने की ज़रूरत है।

गुस्से के वक़्त दुरूद शरीफ़ पढ़ना

उलमा-ए-किराम ने फ़रमाया कि जब आदमी को ग़ुस्सा आ रहा हो और अन्देशा यह हो कि ग़ुस्से के अन्दर कहीं आपे से बाहर होकर कोई काम शरीअ़त के ख़िलाफ़ न हो जाये या कहीं ज़्यादती न हो जाये, किसी को बुरा भला न कह दे, या कहीं ग़ुस्से के अन्दर मार पीट तक नौबत न पहुंच जाये, उस वक़्त ग़ुस्से की हालत में दुरूद शरीफ़ पढ़ लेना चाहिये, दुरूद शरीफ़ पढ़ने से इन्शा अल्लाह ग़ुस्सा ठन्डा हो जायेगा, वह ग़ुस्सा क़ाबू से बाहर नहीं होगा।

अ़रब के लोगों में आज तक यह बड़ी अच्छी रस्म चली आ रही

है कि जहां कहीं दो आदमियों में कोई तकरार और लड़ाई की नौबत आ गई तो फ़ौरन उस वक़्त उनमें से कोई या कोई तीसरा आदमी उन से कहता है कि:

"صل على النبی"

"सल्लि अ़लन्नबिय्यि"

यानी नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद भेजो, उसके जवाब में दूसरा आदमी दुरूद शरीफ़ पढ़ना शुरू कर देता है:

"اللهم صل على محمد وعلى آل محمد"

"अल्लाहुम्–म सल्लि अ़ला मुहम्मदिंव्– व अ़ला आलि मुहम्मद"

बस उसी वक़्त लड़ाई ख़त्म हो जाती है और दोनों फ़रीक़ ठन्डे पड़ जाते हैं और दोनों का गुस्सा ख़त्म हो जाता है। यह हक़ीक़त में उलमा–ए–किराम की तलक़ीन का नतीजा है कि गुस्से को ठन्डा करने के लिये दुरूद शरीफ़ पढ़ना बहुत मुफ़ीद है। इसलिये इसको भी अपने दरमियान रिवाज देने की ज़रूरत है।

सोने से पहले दुरूद शरीफ़ पढ़ना

इसी तरह उलमा ने फ़रमाया कि जब आदमी सोने के लिये बिस्तर पर लेटे, उस वक़्त वह पहले मस्नून दुआयें पढ़े, उसके बाद दुरूद शरीफ़ पढ़ते पढ़ते सो जाये, ताकि इन्सान के जागने की हालत का आख़री कलाम दुरूद शरीफ़ हो जाये, ये ऐसी बातें हैं जिन पर अ़मल करने में कोई मेहनत और मशक़्क़त नहीं, और कोई वक़्त भी ख़र्च नहीं होता, इसलिये कि तुम सोने के लिये लेटे हो, कोई और काम तो नहीं कर सकते, इसलिये दुरूद शरीफ़ पढ़ते रहो यहां तक कि नींद आ जाये, ताकि तुम्हारे आमाल का ख़ातमा ख़ैर के साथ हो जाये, इसको भी अपना मामूल बना लेने की ज़रूरत है। बहर हाल, ये वे मौक़े थे जिन में दुरूद शरीफ़ पढ़ना उलमा ने मुस्तहब यानी पसन्दीदा बताया है, इनको अपने मामूलात में दाख़िल कर लेना

चाहिये।

रोज़ाना तीन सौ बार दुरूद शरीफ़

कुछ बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि कम से कम सुबह व शाम तीन सौ बार दुरूद शरीफ़ पढ़ना चाहिये, हज़रत मौलाना रशीद अहमद गंगोही रह. से मुन्कूल है कि वे अपने ताल्लुक़ रखने वाले और मुरीदों को तलक़ीन फ़रमाया करते थे कि कम से कम दिन में तीन सौ बार दुरूद शरीफ़ पढ़ लिया करो, और इन्शा अल्लाह इसकी वजह से कस्रत से दुरूद शरीफ़ पढ़ने वालों में तुम्हारा शुमार हो जायेगा, वर्ना कम से कम सौ बार तो ज़रूर ही पढ़ लिया करो। अल्लाह तआला हम सब को इसकी तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

दुरूद शरीफ़ मुहब्बत बढ़ाने का ज़रिया

और दुरूद शरीफ़ पढ़ने पर आख़िरत में जो नेकियां और जो अज्र व सवाब मिलना है, वह तो मिलेगा, लेकिन दुनिया में इसका फ़ायदा यह है कि जो शख़्स जितनी कस्रत से दुरूद शरीफ़ पढ़ेगा उतना ही हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत में इज़ाफ़ा होगा, और जितनी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत बढ़ेगी; उतने ही इन्सान पर ख़ैर व भलाई के दरवाज़े खुलते जायेंगे। हदीस शरीफ़ में है कि एक सहाबी ने पूछा: या रसूलल्लाह! क़ियामत कब आयेगी? आपने पूछा कि तुमने उसकी क्या तैयारी की है? सहाबी ने फ़रमाया कि या रसूलल्लाह! मैंने बहुत ज़्यादा नफ़्ली नमाज़ें या नफ़िल रोज़े तो नहीं रखे लेकिन मैं अल्लाह और अल्लाह के रसूल से मुहब्बत रखता हूं, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

"المرء مع من احب" (ترمذی شریف)

इन्सान आख़िरत में उसी के साथ होगा जिसके साथ उसने दुनिया में मुहब्बत की। इसलिये जो शख़्स हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से मुहब्बत रखता होगा, आख़िरत में अल्लाह

तआला उसको हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का साथ भी अता फ़रमायेंगे। इसलिये दुरूद शरीफ़ पढ़ने का दुनियावी फ़ायदा यह है कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत में इज़ाफ़ा हो जायेगा, वैसे तो अल्हम्दु लिल्लाह हर मोमिन के दिल में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत है, कोई मोमिन ऐसा नहीं होगा जिसके दिल में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत न हो, लेकिन मुहब्बत मुहब्बत में फ़र्क़ होता है, इसलिये जो शख़्स जितना ज़्यादा दुरूद शरीफ़ पढ़ने वाला होगा, उसके दिल में उतनी ही ज़्यादा मुहब्बत होगी। और यह दुरूद शरीफ़ का कोई मामूली फ़ायदा नहीं है।

दुरूद शरीफ़ दीदारे रसूल का सबब

बुज़ुर्गों ने दुरूद शरीफ़ का एक दुनियावी फ़ायदा यह बताया है कि जो शख़्स कस्रत से दुरूद शरीफ़ पढ़ेगा अल्लाह तआला उसको हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का दीदार नसीब फ़रमायेंगे। अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रह. ने जो बड़े दर्जे के उलमा–ए–किराम में से हैं, यह वह बुज़ुर्ग हैं जिन्हों ने दीन व दुनिया के उलूम में से कोई ऐसा इल्म नहीं छोड़ा जिस पर कोई किताब न लिखी हो, इल्मे तफ़सीर पर, इल्मे हदीस पर, फ़िक़ह पर, बलाग़त पर, नह्व पर, हिसाब पर, गोया हर मौज़ू पर आपकी तस्नीफ़ मौजूद है, और इल्मे तफ़सीर पर आपकी तीन किताबें हैं, जिनमें से एक (८०) जिल्दों पर मुश्तमिल है, जिसका "मज्मउल बह्रैन" है, दूसरी तफ़सीर है "दुर्रे मन्सूर" और तीसरी है "जलालैन" उनकी लिखी हुई सारी किताबें अगर आज कोई शख़्स पढ़ना चाहे तो उसके लिये पूरी उमर चाहिये, लेकिन अल्लामा जलालुद्दीन सुयूती रह. ने चालीस की उमर के अन्दर यह तमाम किताबें लिखीं और उसके बाद अपने आपको अल्लाह की इबादत के लिये फ़ारिग़ कर लिया।

जागते में हुज़ूरे पाक की ज़ियारत

उनके हालात में लिखा है कि अल्लाह तआला ने उनको यह दौलत अ़ता फ़रमाई कि ३५ बार सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की जागने की हालत में ज़ियारत हुई, और जागने की हालत में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ियारत एक कश्फ़ की एक क़िस्म है, किसी ने अ़ल्लामा जलालुद्दीन सुयूती से पूछा कि हज़रत! हमने सुना है कि आपने ३५ बार जागने की हालत में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ियारत की है? हमें बताइये कि वह क्या अ़मल है जिसकी बदौलत अल्लाह तआ़ला ने आपको इस दौलत से सरफ़राज़ फ़रमाया? जवाब में उन्हों ने फ़रमाया कि मैं तो कोई ख़ास अ़मल नहीं करता, लेकिन अल्लाह तआ़ला का मुझ पर यह ख़ास फ़ज़्ल रहा है कि मैं सारी उम्र दुरूद शरीफ़ बहुत कस्रत से पढ़ता रहा हूं, चलते फिरते, उठते बैठते, सोते जागते मेरी यह कोशिश होती है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ पढ़ता रहूं, शायद इसी अ़मल की बदौलत अल्लाह तआ़ला ने मुझे यह दौलत अ़ता फ़रमाई हो।

हुज़ूरे पाक की ज़ियारत का तरीक़ा

बहर हाल, बुज़ुर्गों ने लिखा है कि अगर किसी शख़्स को नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़ियारत का शौक़ हो तो वह जुमे की रात में दो रक्अ़त नफ़िल नमाज़ इस तरह पढ़े कि सूरः फ़ातिहः के बाद ११ बार आयतुल कुर्सी और ११ बार सूरः इख़्लास पढ़े और सलाम फेरने के बाद सौ बार यह दुरूद शरीफ़ पढ़े।

"اللهم صل على محمد النبى الامى وعلى اله واصحابه وبارك وسلم"

"अल्लाहुम्–म सल्लि अ़ला मुहम्मदिन् नबिय्यिल् उम्मिय्यि व अ़ला आलिही व अस्हाबिही व बारिक् व सल्लिम्"

अगर कोई शख़्स चन्द बार यह अ़मल करे तो अल्लाह तआ़ला

उसको ज़ियारत नसीब फ़रमा देते हैं, बशर्ते कि शौक़ और तलब कामिल हो और गुनाहों से भी बचता हो।

हज़रत मुफ़्ती साहिब रह. का मैलान

लेकिन सच्ची बात यह है कि हम कहां और नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़ियारत कहां? चुनांचे मेरे वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. की ख़िदमत में एक साहिब आये और कहा कि हज़रत! मुझे कोई ऐसा वज़ीफ़ा बता दीजिये कि जिसकी बर्कत से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़ियारत नसीब हो जाये, हज़रत वालिद साहिब रह. ने फ़रमाया कि: भाई! तुम बड़े हौसले वाले आदमी हो कि तुम इस बात की तमन्ना कर रहे हो कि सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़ियारत हो जाये, हमें तो यह हौसला नहीं होता कि यह तमन्ना भी करें, इसलिये कि हम कहां और नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़ियारत कहां, और अगर ज़ियारत हो जाये तो उसके आदाब, उसके हुकूक़ और उसके तक़ाज़े किस तरह पूरे करेंगे, इसलिये ख़ुद इसके हासिल करने की न तो कोशिश की और न कभी इस क़िस्म के अमल सीखने की नौबत आई जिसके ज़रिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ज़ियारत हो जाये, लेकिन अल्लाह तआला अपने फ़ज़्ल से ख़ुद ही ज़ियारत करा दें तो यह उनका इनाम है, और जब ख़ुद करायेंगे तो फिर उसके आदाब की भी तौफ़ीक़ बख़्शेंगे।

हज़रत मुफ़्ती साहिब रह्मतुल्लाहि अलैहि और रौज़ा-ए-अक़्दस की ज़ियारत

हज़रत वालिद सहिब रह. जब रौज़ा–ए–अक़्दस पर हाज़िर होते तो कभी रौज़ा–ए–अक़्दस की जाली के क़रीब नहीं जाते थे बल्कि हमेशा का यह मामूल देखा कि जाली बराबर में जो सतून है उस

सतून से लग कर खड़े हो जाते, और अगर कोई आदमी खड़ा होता तो उसके पीछे जाकर खड़े हो जाते।

एक दिन ख़ुद फ़रमाने लगे कि एक बार मेरे दिल में यह ख़्याल पैदा हुआ कि शायद तू बड़ा बंद क़िस्मत है, इस वजह से जालियों के क़रीब होने की कोशिश नहीं कर रहा है, और ये अल्लाह के बन्दे हैं जो जाली के क़रीब होने और उस से चिमटने की कोशिश कर रहे हैं, और सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का जितना क़ुर्ब हासिल हो जाये वह नेमत ही नेमत है, लेकिन मैं क्या करूं कि मेरा क़दम आगे बढ़ता ही नहीं, जैसे ही मुझे यह ख़्याल आया उसी वक़्त मुझे महसूस हुआ कि रौज़ा–ए–अक़्दस की तरफ़ से यह आवाज़ आ रही थी कि:

"यह बात लोगों तक पहुंचा दो कि जो शख़्स हमारी सुन्नतों पर अ़मल करता है वह हम से क़रीब है, चाहे हज़ारों मील दूर हो, और जो शख़्स हमारी सुन्नतों पर अ़मल पैरा नहीं है, वह हम से दूर है, चाहे वह हमारी जालियों से चिमटा खड़ा हो"।

चूंकि इसमें हुक्म भी था कि "लोगों तक यह बात पहुंचा दो" इसलिये मेरे वालिद साहिब रह. अपनी तक़रीरों और ख़ुतबात में यह बात लोगों के सामने बयान फ़रमाते थे, लेकिन अपना नाम ज़िक्र नहीं करते थे, बल्कि यह फ़रमाते थे कि एक ज़ियारत करने वाले ने जब रौज़ा–ए–अक़्दस की ज़ियारत की तो उसको रौज़ा–ए–अक़्दस पर यह आवाज़ सुनाई दी, लेकिन एक बार तन्हाई में बताया कि यह वाक़िआ मेरे ही साथ पेश आया था।

असल चीज़ सुन्नत की इत्तिबा है

हक़ीक़त यह है कि असल चीज़ नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत की इत्तिबा है, अगर यह हासिल है तो फिर इन्शा अल्लाह नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क़ुर्ब (निकटता) भी हासिल है, ख़ुदा न करे अगर यह चीज़ हासिल

नहीं तो आदमी चाहे कितना ही करीब पहुंच जाये, रौज़ा–ए–अक़्दस की जालियां तो क्या बल्कि हुजरा–ए–अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के अन्दर भी चला जाये, तब भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का कुर्ब हासिल नहीं हो सकता। अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से हम सब को और तमाम मुसलमानों को इत्तिबा–ए–सुन्नत की दौलत अ़ता फ़रमा दे, आमीन।

दुरूद शरीफ़ में नये तरीक़े ईजाद करना

वैसे तो दुरूद शरीफ़ की कस्रत बहुत ही अफ़्ज़ल अ़मल है, लेकिन हर काम अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को उसी वक़्त तक पसन्दीदा है जब तक उनके बताये हुए तरीक़े के मुताबिक़ हो, लेकिन अगर किसी काम के अन्दर अपनी तरफ़ से कोई तरीक़ा ईजाद कर लिया और उसके मुताबिक़ काम शुरू कर दिया तो उस से अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को कोई ख़ुशी हासिल नहीं होगी। चुनांचे दुरूद शरीफ़ के बारे में आज कल बहुत से ऐसे तरीक़े चल पड़े हैं जो अपनी तरफ़ से घड़े हुये हैं, अल्लाह और अल्लाह के रसूल के बताये हुये तरीक़े नहीं हैं, इस सूरत में इन्सान यह समझता है कि मैं अच्छा काम कर रहा हूं और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ मुहब्बत का इज़हार कर रहा हूं, लेकिन चूंकि वे तरीक़े अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बताये हुये तरीक़े के मुताबिक़ नहीं हैं, इसलिये हक़ीक़त में उनका कोई फ़ायदा हासिल नहीं होगा।

यह तरीक़ा बिद्अ़त है

जैसे अज कल दुरूद व सलाम भेजने का मतलब यह हो गया कि दुरूद व सलाम की नुमाइश करो, चुनांचे बहुत से आदमी मिलकर खड़े होकर लाऊडिस्पीकर पर ज़ोर ज़ोर से तरन्नुम के साथ पढ़ते हैं।

"الصلاة والسلام عليك يا رسول الله"

"अस्सलातु वस्सलामु अलै–क या रसूलल्लाह"

और यह समझते हैं कि दुरूद व सलाम का भेजने का यही तरीका है, चुनांचे अगर कोई शख़्स तन्हाई के कोने में बैठ कर दुरूद व सलाम पढ़ता है तो उसको दुरुस्त नहीं समझते, और उसकी इतनी क़द्र व इज़्ज़त नहीं करते, हालांकि पूरी सीरते तैयबा में और सहाबा–ए–किराम की ज़िन्दगी में कहीं भी यह मुरव्वजा तरीक़ा नहीं मिलता, जब्कि सहाबा–ए–किराम में से हर शख़्स मुजस्सम दुरूद था और सुबह से लेकर शाम तक नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ भेजता था।

इस से भी बड़ी बात यह है कि अगर कोई शख़्स इस तरीक़े में शामिल न हो तो उसको यह ताना दिया जाता है कि इसको हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से मुहब्बत नहीं, यह दुरूद व सलाम का इन्कारी है, वग़ैरह वग़ैरह। यह ताना देना और ज़्यादा बुरी बात है, ख़ूब समझ लीजिये, दुरूद भेजने का कोई तरीक़ा उस तरीक़े से ज़्यादा बेहतर नहीं हो सकता जो तरीक़ा नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने खुद बताया हो। वह तरीक़ा यह है कि एक सहाबी ने सवाल किया कि या रसूलल्लाह! आप पर दुरूद भेजने का क्या तरीक़ा है? हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने जवाब में दुरूदे इब्राहीमी पढ़ा और फ़रमाया कि इस तरीक़े से दुरूद शरीफ़ पढ़ा करो।

नमाज़ में दुरूद शरीफ़ की कैफ़ियत

दूसरी तरफ़ यह देखिये कि अल्लाह तआला ने दुरूद शरीफ़ को नमाज़ का एक हिस्सा बनाया है, लेकिन नमाज़ के अन्दर सूरः फ़ातिहः खड़े होकर पढ़ी जाती है, सूरत खड़े होकर पढ़ी जाती है, लेकिन जब दुरूद शरीफ़ क मौक़ा आया तो फ़रमाया कि तशह्हुद के बाद इत्मीनान के साथ अदब के साथ हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु

अलैहि व सल्लम पर दुरूद शरीफ़ पढ़ो।

बहर हाल, वैसे तो खड़े होकर दुरूद शरीफ़ पढ़ना, बैठ कर पढ़ना, लेट कर पढ़ना, हर हालत में दुरूद शरीफ़ पढ़ना जायज़ है, लेकिन इनमें से किसी एक तरीके को ख़ास करके मुक़र्रर कर लेना और उसके बारे में यह कहना कि यह तरीक़ा दूसरे तरीक़ों के मुक़ाबले में ज़्यादा बेहतर और अफ़ज़ल है, यह बे बुनियाद और ग़लत है।

क्या दुरूद शरीफ़ के वक़्त हुज़ूरे पाक तश्रीफ़ लाते हैं?

और यह तरीक़ा उस वक़्त और ज़्यादा ग़लत हो गया जब उसके साथ एक ख़राब अक़ीदा भी लग गया है, वह यह है कि जब हम दुरूद शरीफ़ पढ़ते हैं तो उस वक़्त हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम तश्रीफ़ लाते हैं, या आपकी रूह मुबारक तश्रीफ़ लाती है, और जब आप तश्रीफ़ ला रहे हैं तो ज़ाहिर है कि आपकी ताज़ीम और अदब में खड़े होना चाहिये, इसलिये हम खड़े हो जाते हैं।

बताइये यह बात कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम तश्रीफ़ लाते हैं यह कहां से साबित है? क्या क़ुरआने करीम की आयत से या हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की किसी हदीस से, या किसी सहाबी के क़ौल से साबित है? कहीं भी कोई सुबूत नहीं, यह हदीस जो अभी मैंने आपके सामने पढ़ी, इसको ग़ौर से पढ़ लें तो बात समझ में आ जायेगी, वह यह कि:

"ان للہ تعالی ملائکۃ سیاحین فی الارض یبلغون من امتی السلام"۔

(यानी) हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ियल्लाहु अन्हु रिवायत करते हैं कि नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि अल्लाह तआला के कुछ फ़रिश्ते ऐसे हैं जो सारी ज़मीन का चक्कर लगाते रहते हैं, और उनका काम यह है कि जो शख़्स मेरी उम्मत मे से मुझ पर दुरूद व सलाम भेजता है, वे मुझ तक पुहंचाते हैं।

देखिये इस हदीस में यह तो बयान फ़रमाया कि फ़रिश्ते मुझ तक दुरूद शरीफ़ पहुंचाते हैं, लेकिन किसी हदीस में यह नहीं आया कि जहां कहीं दुरूद पढ़ा जा रहा होता है तो मैं वहां पहुंच जाता हूं।

हदिया देने का अदब

फिर ज़रा ग़ौर तो करें कि यह दुरूद शरीफ़ क्या चीज़ है? यह दुरूद शरीफ़ एक हदिया और तोहफ़ा है, जो नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में पेश किया जा रहा है, और जब किसी बड़े को हदिया दिया जाता है तो क्या उसको यह कहा जाता है कि आप हमारे घर तश्रीफ़ लायें हम आपकी ख़िदमत में तोहफ़ा पेश करेंगे? या उसके घर भेजा जाता है? ज़ाहिर है कि जिस शख़्स के दिल में अपने बड़े की इज़्ज़त और एहतिराम होगा, वह कभी इस बात को गवारा नहीं करेगा कि वह बड़े से यह कहे कि आप हदिया कुबूल करने के लिये मेरे घर आयें, वहां आकर यह हदिया ले लें, बल्कि वह शख़्स हमेशा यह चाहेगा कि वह अदब और एहतिराम के साथ उसकी ख़िदमत में यह हदिया पहुंचा दे। चुनांचे अल्लाह तआ़ला ने तो अपने नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में दुरूद शरीफ़ पहुंचाने के लिये यह तरीक़ा मुक़र्रर फ़रमाया कि आपका उम्मती जहां कहीं भी है, उसको यह हक़ हासिल है कि वह सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में हदिया पेश करे, और फिर उस दुरूद शरीफ़ को वुसूल करके आप तक पहुंचाने के लिये अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़रिश्ते मुक़र्रर कर रखे हैं जो नाम लेकर पहुंचाते हैं कि आपके फ़लां उम्मती ने जो फ़लां जगह रहता है, आपकी ख़िदमत में यह हदिया भेजा है।

यह ग़लत अ़क़ीदा है

लेकिन इसके उलट हमने अपनी तरफ़ से यह तरीक़ा मुक़र्रर कर लिया है कि हम दुरूद शरीफ़ वहां तक नहीं पहुंचायेंगे बल्कि

हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को हदिया लेने कि लिये ख़ुद हमारी ख़िदमत में आना होगा, जब आप हमारी मस्जिद में तशरीफ़ लायेंगे तो उस वक़्त हम हदिया पेश करेंगे, हालांकि यह अदब और ताज़ीम के ख़िलाफ़ है कि अपने बड़े को हदिया वुसूल करने के लिये घर बुलाया जाये कि यहां आकर मुझ से हदिया वुसूल कर लो।

इसलिये यह तसव्वुर कि जब हम यहां बैठ कर हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में दुरूद भेजते हैं तो हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उस दुरूद शरीफ़ को लेने के लिये ख़ुद तशरीफ़ लाते हैं, और चूंकि ख़ुद हमारी महफ़िल में तशरीफ़ लाते हैं तो हम उनकी ताज़ीम के लिये खड़े हो जाते हैं, यह तसव्वुर हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की अज़्मते शान के बिल्कुल मुताबिक़ नहीं, इसलिये दुरूद शरीफ़ भेजने का यह तसव्वुर और यह तरीक़ा दुरुस्त नहीं, जो तरीक़ा अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने बताया है वह तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिये।

आहिस्ता और अदब के साथ दुरूद शरीफ़ पढ़ें

दूसरी तरफ़ क़ुरआने करीम ने फ़रमाया कि जब तुम्हें अल्लाह तआला से कोई दुआ करनी हो, या अल्लाह का ज़िक्र करना हो तो जितना आहिस्तगी और आजिज़ी से करोगे उतना ही ज़्यादा अफ़्ज़ल होगा, चुनांचे फ़रमाया:

"ادعوا ربكم تضرعا وخفية" (الاعراف:٥٥)

यानी अपने रब को आजिज़ी और आहिस्तगी के साथ पुकारो। अब दुरूद शरीफ़ में तुम अल्लाह तआला को बुलन्द आवाज़ से पुकार रहे हो, "अल्लाहुम्–म सल्लि अला मुहम्मदिन्" ऐ अल्लाह! मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजिये, यह तरीक़ा दुरुस्त नहीं, बल्कि जितना आहिस्तगी के साथ अदब के साथ हुज़ूरे अक्दस

सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर दुरूद भेजेंगे, उतना ही अफ़ज़ल होगा। इसलिये दुरूद शरीफ़ भेजने का यह तरीक़ा है। लेकिन अगर कोई शख़्स अपनी तरफ़ से कोई तरीक़ा घड़ कर दुरूद शरीफ़ भेजेगा तो वह अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का पसन्दीदा तरीक़ा नहीं होगा।

ख़ाली ज़ेहन होकर सोचिये

आज कल फ़िर्क़ा बन्दियां हो गयी हैं, और इन फ़िर्क़ा बन्दियों की वजह से यह सूरते हाल हो गयी है कि अगर कोई सही बात कहे तो भी कान उसको सुनने के लिये तैयार नहीं होते, यह बात मैं कोई ऐब जोई के तौर पर नहीं कर रहा हूं बल्कि दर्दमन्दी के साथ, दिल सोज़ी के साथ हक़ीक़ते हाल बयान करने के लिये कह रहा हूं। इसलिये इस हक़ीक़त को समझने की ज़रूरत है, सिर्फ़ ताना दे देना कि फ़लां फ़िर्क़ा तो दुरूद शरीफ़ का इन्कारी है, उनके दिल में तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत नहीं है। इस तरह ताना देने से बात नहीं बनती, अगर ज़रा कान खोल कर बात सुनी जाये और यह देखा जाये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की मुहब्बत का तक़ाज़ा क्या है? तब जाकर हक़ीक़ते हाल सामने आयेगी।

तुम बहरे को नहीं पुकार रहे हो

एक बार कुछ सहाबा-ए-किराम कहीं तश्रीफ़ लेजा रहे थे तो उन्हों ने रास्ते में बुलन्द आवाज़ से ज़िक्र करना और दुआ करनी शुरू कर दी, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनको मना करते हुए फ़रमाया कि आहिस्तगी के साथ दुआ करो। और फ़रमाया कि:

"انكم لا تدعون اصم ولا غائبا"

यानी तुम बहरे को नहीं पुकार रहे हो, और न ऐसी ज़ात को पुकार रहे हो जो तुम से ग़ायब है, वह तो तुम्हारी हर बात को सुनने

वाला है, यहां तक कि वह तुम्हारे दिल में गुज़रने वाले ख़्यालात से भी वाकिफ़ है। इसलिये उसको पुकारने के लिये आवाज़ ज़्यादा बुलन्द करने की ज़रूरत नहीं, इसलिये उसको आहिस्तगी और अदब के साथ पुकारो। यह तरीक़ा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सहाबा-ए-किराम को तलक़ीन फ़रमाया। अल्लाह तआला हम सब को इस तरीक़े पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, और दुरूद शरीफ़ को उसके सही आदाब के साथ, उसके अहकाम और पसन्दीदा तरीक़ों के साथ अदा करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

واخردعوانا ان الحمد لله رب العلمين

मिलावट

नाप तौल में कमी

और दूसरों के हक़ अदा करने में कोताही

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّااللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْماً كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

"وَيْلٌ لِّلْمُطَفِّفِيْنَ○ الَّذِيْنَ اِذَا اكْتَالُوْا عَلَى النَّاسِ يَسْتَوْفُوْنَ○ وَاِذَا كَالُوْهُمْ اَوْ وَّزَنُوْهُمْ يُخْسِرُوْنَ○ اَلَا يَظُنُّ اُولٰٓئِكَ اَنَّهُمْ مَّبْعُوْثُوْنَ○ لِيَوْمٍ عَظِيْمٍ○ يَوْمَ يَقُوْمُ النَّاسُ لِرَبِّ الْعٰلَمِيْنَ○ (سورة المطففين)

آمنت بالله صدق الله مولانا العظيم، وصدق رسوله النبى الكريم، و نحن على ذلك من الشاهدين والشاكرين، والحمدلله رب العالمين۔

कम तौलना एक बड़ा गुनाह

बुज़ुर्गाने मोहतरम और बिरादराने अज़ीज़! मैंने आप हज़रात के सामने सूरः मुतफ़्फ़िफ़ीन की शुरू की आयतें तिलावत कीं, इन आयतों में अल्लाह तआ़ला ने हमें एक बहुत बड़े गुनाह और ना फ़रमानी की तरफ़ मुतवज्जह फ़रमाया है, वह गुनाह है "कम नापना और कम तौलना" यानी जब कोई चीज़ किसी को बेची जाये तो जितना उस ख़रीदने वाले का हक़ है, उस से कम तौल कर दे। अ़र्बी में कम नापने और कम तौलने को "तत्फ़ीफ़" कहा जाता है, और यह "तत्फ़ीफ़" सिर्फ़ तिजारत और लेन देन के साथ मख़्सूस नहीं, बल्कि "तत्फ़ीफ़" का मतलब बहुत फैलाव वाला है, वह यह कि दूसरे का

जो भी हक़ हमारे ज़िम्मे वाजिब है, उसको अगर उसका हक़ कम करके देंगे तो यह "तत्फ़ीफ़" के अन्दर दाख़िल है।

आयतों का तर्जुमा

आयतों का तर्जुमा यह है कि कम नापने और कम तौलने वालों के लिये अफ़सोस है, (अल्लाह तआ़ला ने "वैल" का लफ़्ज़ इस्तेमाल फ़रमाया, "वैल" के एक मायने तो "अफ़सोस" के आते हैं, दूसरे मायने इसके हैं "दर्दनाक अ़ज़ाब" इस दूसरे मायने के लिहाज़ से आयत का तर्जुमा यह होगा कि) उन लोगों पर दर्दनाक अ़ज़ाब है जो दूसरों का हक़ कम देते हैं और कम नापते और कम तौलते हैं। ये वे लोग हैं कि जब दूसरों से अपना हक़ वुसूल करने का मौक़ा आता है तो उस वक़्त अपना हक़ पूरा पूरा लेते हैं। (उस वक़्त तो एक दमड़ी भी छोड़ने को तैयार नहीं होते) लेकिन जब दूसरों को नाप कर या तौल कर देने का मौक़ा आता है तो उस वक़्त (डन्डी मार देते हैं) कम कर देते हैं। (जितना हक़ देना चाहिये था, उतना नहीं देते) (आगे अल्लाह तआ़ला फ़रमा रहे हैं कि) "क्या उन लोगों को यह ख़्याल नहीं कि एक अ़ज़ीम दिन में दोबारा ज़िन्दा किये जयेंगे, जिस दिन सारे इन्सान रब्बुल आ़लमीन के सामने पेश होंगे" (और उस वक़्त इन्सान को अपने छोटे से छोटे अ़मल को भी छुपाना मुम्किन नहीं होगा, और उस दिन हमारा आमाल नामा हमारे सामने आ जायेगा, तो क्या उन लोगों को यह ख़्याल नहीं कि इस वक़्त कम नाप कर और कम तौल कर दुनिया के चन्द टकों का जो थोड़ा सा फ़ायदा और नफ़ा हासिल कर रहे हैं, यह चन्द टकों का फ़ायदा उनके लिये जहन्नम के अ़ज़ाब का सबब बन जायेगा। इसलिये कुरआने करीम ने बार बार कम नापने और कम तौलने की बुराई बयान फ़रमाई, और इस से बचने की ताकीद फ़रमाई। (और हज़रत शुऐब अ़लैहिस्सलाम की क़ौम का वाक़िआ़ भी बयान फ़रमाया)

शुअ़ैब अ़लैहिस्सलाम की क़ौम का जुर्म

हज़रत शुअ़ैब अ़लैहिस्सलाम जब अपनी क़ौम की तरफ़ भेजे गये उस वक़्त उनकी क़ौम बहुत से गुनाहों और ना फ़रमानियों में मुब्तला थी, कुफ़्र, शिर्क और बुत परस्ती में तो मुब्तला थी ही इसके अ़लावा पूरी क़ौम कम नापने और कम तौलने में मशहूर थी, तिजारत करते थे लेकिन उसमें लोगों का हक़ पूरा नहीं देते थे, दूसरी तरफ़ वे एक इन्सानियत के ख़िलाफ़ हर्कत यह करते थे कि मुसाफ़िरों को रास्ते में डराया करते और उन पर हमला करके लूट लिया करते थे। चुनांचे हज़रत शुअ़ैब अ़लैहिस्सलाम ने उनको कुफ़्र, शिर्क और बुत परस्ती से मना किया और तौहीद की दावत दी, और कम नापने, कम तौलने और मुसाफ़िरों को रास्ते में डराने और उन पर हमला करने से बचने का हुक्म दिया, लेकिन वह क़ौम अपने बुरे आमालों में मस्त थी, इसलिये हज़रत शुअ़ैब अ़लैहिस्सलाम की बात मानने के बजाये उनसे यह पूछा कि:

"أَصَلٰوتُكَ تَأْمُرُكَ اَنْ نَّتْرُكَ مَا يَعْبُدُ اٰبَآؤُنَآ اَوْ اَنْ نَّفْعَلَ فِيْٓ اَمْوَالِنَا مَا نَشٰٓؤُا"

(سورة هود:٨٧)

यानी क्या तुम्हारी नमाज़ इस बात का हुक्म दे रही है कि हम उन माबूदों को छोड़ दें जिनकी हमारे बाप दादा इबादत करते थे, या हम अपने माल में जिस तरह चाहें तसर्रुफ़ करना छोड़ दें।

यह हमारा माल है हम इसको जिस तरह चाहें हासिल करें, चाहे कम तौल कर हासिल करें या कम नाप कर हासिल करें या धोखा देकर हासिल करें। तुम हमें रोकने वाले कौन हो? इन बातों के जवाब में हज़रत शुअ़ैब अ़लैहिस्सलाम उनको मुहब्बत और शफ़क़त के साथ समझाते रहे और अल्लाह के अ़ज़ाब से और आख़िरत के अ़ज़ाब से डराते रहे, लेकिन ये लोग बाज़ न आये और आख़िर कार उनका वही अन्जाम हुआ जो नबी की बात न मानने वालों का होता है, वह यह कि अल्लाह तआ़ला ने उन पर ऐसा अ़ज़ाब भेजा जो शायद किसी

और क़ौम की तरफ़ नहीं भेजा गया।

शुऐ़ब अ़लैहिस्सलाम की क़ौम पर अ़ज़ाब

वह अ़ज़ाब उन पर इस तरह आया कि पहले तीन दिन लगातार पूरी बस्ती में सख़्त गर्मी पड़ी, ऐसा मालूम हो रहा था कि आसमान से अंगारे बरस रहे हैं और ज़मीन आग उगल रही है, हवा के बन्द हो जाने और तपिश ने सारी बस्ती वालों को परेशान कर दिया, तीन दिन के बाद बस्ती वालों ने देखा कि अचानक एक बादल का टुकड़ा बस्ती की तरफ़ आ रहा है और उस बादल के नीचे ठन्डी हवायें चल रही हैं, चूंकि बस्ती के लोग तीन दिन से सख़्त गर्मी की वजह से बिलबिलाये हुए थे इसलिये सारे बस्ती वाले बहुत इश्तियाक़ के साथ बस्ती छोड़ कर उस बादल के नीचे जमा हो गये, ताकि यहां ठन्डी हवाओं का लुत्फ़ उठायें। लेकिन अल्लाह तआ़ला उन लोगों को बादल के नीचे इसलिये जमा करना चाहते थे ताकि सब पर एक साथ अ़ज़ाब नाज़िल कर दिया जाये। चुनांचे जब वे सब वहां जमा हो गये तो वही बादल जिसमें से ठन्डी हवायें आ रही थीं उसमें से आग के अंगारे बरस्ना शुरू हो गये और सारी क़ौम उन अंगारों का निशाना बन कर झुलस कर ख़त्म हो गयी। इसी वाक़िए की तरफ़ क़ुरआन करीम ने इन अल्फ़ाज़ से इशारा फ़रमाया किः

"فكذبوه فاخذهم عذاب يوم الظلة" (سورة الشعرآء:١٨٩)

तर्जुमाः यानी उन्हों ने हज़रत शुऐ़ब अ़लैहिस्सलाम को झुठलाया, उसके नतीजे में उनको सायबान वाले दिन के अ़ज़ाब ने पकड़ लिया।

एक और जगह फ़रमायाः

"فتلك مساكنهم لم تسكن من بعدهم الا قليلا وكنانحن الوارثين"

(سورة القصص:٨٥)

"यानी ये उनकी बस्तियां देखो जो उनकी हलाकत के बाद आबाद भी नहीं हो सकीं मगर बहुत कम, हम ही उनके सारे माल व

दौलत और जायदाद के वारिस बन गये।

वे तो यह समझ रहे थे कि कम नाप कर, कम तौल कर, मिलावट करके, धोखा देकर हम अपने माल व दौलत में इज़ाफ़ा करेंगे, लेकिन वह सारी दौलत धरी की धरी रह गयी।

ये आग के अंगारे हैं

अगर तुमने डन्डी मार कर एक तौला या दो तौला, एक छटांक या दो छटांक माल ख़रीदार को कम दे दिया और चन्द पैसे कमा लिये, देखने में तो ये पैस हैं लेकिन हक़ीक़त में आग के अंगारे हैं, जिनको तुम अपने पेट में डाल रहे हो, हराम माल और हराम खाने के बारे में क़ुरआने करीम में अल्लाह तआला ने फ़रमायाः

"ان الذین یاکلون اموال الیتمیٰ ظلمًا انما یاکلون فی بطونهم نارًا وسیصلون سعیرًا" (سورۃ النسآء: ١٠)

यानी जो लोग यतीमों का माल ज़ुल्म करके ख़ाते हैं वे हक़ीक़त में अपने पैट में आग भर रहे हैं, जो लुक़्मे हलक़ से नीचे उतर रहे हैं ये हक़ीक़त में आग के अंगारे हैं, अगरचे देखने में वह रुपया पैसा और माल व दौलत नज़र आ रहा है। क्योंकि अल्लाह के हुक्म की ख़िलाफ़ वर्ज़ी (उल्लंघन) करके और अल्लाह की मासियत और ना फ़रमानी करके ये पैसे हासिल किये गये हैं। ये पैसे और यह माल व दौलत दुनिया में भी तबाही का सबब है और आख़िरत में भी तबाही का ज़रिया है।

उजरत कम देना गुनाह है

और यह कम नापना और कम तौलना सिर्फ़ तिजारत के साथ ही ख़ास नहीं है बल्कि कम नापना और कम तौलना अपने अन्दर एक फैला हुआ मफ़हूम रखता है। चुनांचे हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन अ़ब्बास रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो इमामुल मुफ़स्सिरीन हैं, सूरः मुतफ़्फ़िफ़ीन की शुरू की आयतों की तफ़्सीर करते हुए फ़रमाते हैः

"شدة العذاب يومئذ للمطففين من الصلاة والزكاة والصيام وغير ذلك من العبادات" (تنوير المقياس من تفسير ابن عباسؓ)

"यानी कियामत के दिन सख़्त अज़ाब उन लोगों को भी होगा जो अपनी नमाज़, ज़कात, रोज़े और दूसरी इबादतों में कमी करते हैं"।

इस से मालूम हुआ कि इबादतों में कोताही करना, उनको पूरे आदाब के साथ अदा न करना भी तत्फ़ीफ़ के अन्दर दाख़िल है।

मज़दूर को मज़दूरी फ़ौरन दे दो

या जैसे एक आक़ा मज़दूर से पूरा पूरा काम लेता है, उसको ज़रा सी भी सहूलत देने को तैयार नहीं है, लेकिन नौकरी देने के वक़्त उसकी जान निकलती है, और पूरी नौकरी नहीं देता, या सही वक़्त पर नहीं देता, टाल मटोल करता है, यह भी ना जायज़ और हराम है, और तत्फ़ीफ़ में दाख़िल है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का इरशाद है:

"اعطوا الاجير اجره قبل ان يجف عرقه" (ابن ماجه شريف)

"यानी मज़दूर को उसकी मज़दूरी पसीना ख़ुश्क होने से पहले अदा कर दो"। इसलिये कि जब तुम ने उस से मज़दूरी कराली, काम ले लिया तो अब मज़दूरी देने में ताख़ीर (यानी देरी) करना जायज़ नहीं।

नौकर को खाना कैसा दिया जाये?

हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अ़ली साहिब थानवी रह. फ़रमाते हैं कि आपने एक नौकर रखा, और नौकर से यह तय किया कि तुम्हें माहाना इतनी तन्ख़्वाह दी जायेगी और रोज़ाना दो वक़्त का खाना दिया जायेगा, लेकिन जब खाने का वक़्त आया तो ख़ुद तो ख़ूब पुलाव ज़र्दे उड़ाये, आला दर्जे का खाना खाया और बचा कुचा खाना जिसको एक माक़ूल और शरीफ़ आदमी पसन्द न करे वह नौकर के हवाले कर दिया, तो यह भी "तत्फ़ीफ़" है, इसलिये कि

तुम ने उसके साथ दो वक़्त का खाना तै कर लिया, तो इसका मतलब यह है कि तुम उसको इतनी मिक़्दार यानी मात्रा में ऐसा खाना दोगे जो एक माकूल आदमी पेट भर कर खा सके, इसलिये अब उसको बचा कुचा खाना देना उसकी हक़ तल्फ़ी और उसके साथ ना इन्साफ़ी है, इसलिये यह भी "तत्फ़ीफ़" के अन्दर दाख़िल होगा।

नौकरी के वक़्तों में डन्डी मारना

या जैसे एक शख़्स किसी महक्मे में, किसी दफ़्तर में आठ घन्टे का मुलाज़िम है, तो गोया कि उसने ये आठ घन्टे उस महक्मे के हाथ फ़रोख़्त कर दिये हैं, और यह मुआहदा कर लिया है कि मैं आठ घन्टे आपके पास काम करूंगा और उसके बदले उसको उज्रत और तन्ख़्वाह मिलेगी, अब अगर वह उज्रत तो पूरी लेता है लेकिन उस आठ घन्टे की ड्यूटी में कमी कर लेता है और उसमें से कुछ वक़्त अपने ज़ाती कामों में ख़र्च कर लेता है तो उसका यह अमल भी "तत्फ़ीफ़" के अन्दर दाख़िल है, हराम है, बड़ा गुनाह है। यह भी इसी तरह गुनाहगार है जिस तरह कम नापने और कम तौलने वाला गुनाहगार होता है। इसलिये कि उसने आठ घन्टे के बजाये सात घन्टे काम किया तो एक घन्टे की ड्यूटी मार दी, गोया कि उज्रत के वक़्त अपना उज्रत का हक़ तो पूरा ले रहा है और जब दूसरों के हक़ देने का वक़्त आया तो कम दे रहा है। इसलिये तन्ख़्वाह का वह हिस्सा हराम होगा जो उस वक़्त के बदले में होगा जो उसने अपने ज़ाती कामों में ख़र्च किया।

एक एक मिनट का हिसाब होगा

किसी ज़माने में तो दफ़्तरों में ज़ाती काम चोरी छुपे हुआ करते थे मगर आज कल दफ़्तरों का यह हाल है कि ज़ाती काम चोरी छुपे करने की कोई ज़रूरत नहीं बल्कि खुल्लम खुल्ला, ऐलानिया, डंके की चोट पर किया जाता है। अपने मुतालबे पेश करने के लिये हर वक़्त

तैयार हैं कि तन्ख़्वाह बढ़ाओ, भत्ता बढ़ाओ, फ़लां फ़लां सहूलियतें हमें दो, और इस मक़सद के लिये एहतिजाज करने, जल्से जुलूस करने और नारे लगाने के लिये, हड़ताल करने के लिये हर वक़्त तैयार हैं, लेकिन यह नहीं देखते कि हमारे ज़िम्मे क्या हुकूक़ आयद हो रहे हैं? हम उनको अदा कर रहे हैं या नहीं? हमने आठ घन्टे की नौकरी इख़्तियार की थी, उन आठ घन्टों को कितनी दियानत और अमानत के साथ ख़र्च किया। इसकी तरफ़ बिल्कुल ध्यान नहीं जाता। याद रखो ऐसे ही लोगों के लिये कुरआने करीम में फ़रमाया है कि उन लोगों के लिये दर्दनाक अज़ाब है जो दूसरों के हुकूक़ में कमी करते हैं और जब दूसरों से हक़ वुसूल करने का वक़्त आता है तो उस वक़्त पूरा पूरा लेते हैं। याद रखो अल्लाह तआला के यहां एक एक मिनट का हिसाब होगा, इसमें कोई रियायत नहीं की जायेगी।

दारुल उलूम देवबन्द के उस्ताज़ हज़रात

आप हज़रात ने दारुल उलूम देवबन्द का नाम सुना होगा, इस आख़री दौर में अल्लाह तआला ने इस इदारे को इस उम्मत के लिये रहमत बना दिया, और यहां ऐसे लोग पैदा हुए जिन्हों ने सहाबा-ए-किराम की यादें ताज़ा कर दीं, मैंने अपने वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. से सुना कि दारुल उलूम देवबन्द के शुरू के दौर में पढ़ाने वालों यह मामूल था कि दारुल उलूम के वक़्त में अगर कोई मेहमान मिलने के लिये आ जाता तो जिस वक़्त वह मेहमान आता उस वक़्त घड़ी देख कर वक़्त नोट कर लेते, और यह नोट कर लेते कि यह मेहमान मदरसे के औक़ात में से इतने वक़्त मेरे पास रहा, पूरा महीना इस तरह करते और जब महीना ख़त्म हो जाता तो उस्ताज़ एक दरख़्वास्त पेश करते कि चूंकि फ़लां फ़लां दिनों में इतनी देर तक मैं मेहमान के साथ मश्गूल रहा, उस वक़्त को दारुल उलूम के काम में ख़र्च नहीं कर सका, इसलिये मेरी तन्ख़्वाह से इतने वक़्त की तन्ख़्वाह काट ली जाये।

तन्ख़्वाह हराम होगी

आज तन्ख़्वाह बढ़ाने की दरख़्वास्त देने के बारे में तो आप रोज़ाना सुनते रहते हैं, लेकिन यह कहीं सुनने में नहीं आता कि किसी ने यह दरख़्वास्त दी हो कि मैंने दफ़्तरी समय में से इतना वक़्त ज़ाती काम में ख़र्च किया था इसलिये मेरी इतनी तन्ख़्वाह काट ली जाये। यह अमल वही शख़्स कर सकता है जिसको अल्लाह तआला के सामने पेश होने की फ़िक्र हो। आज हर शख़्स अपने गरेबान में मुंह डाल कर देखे, मज़दूरी करने वाले, सर्विस करने वाले लोग कितना वक़्त दियानतदारी के साथ अपनी ड्यूटी पर ख़र्च कर रहे हैं? आज हर जगह फ़साद बर्पा है, अल्लाह की मख़्लूक़ परेशान है और दफ़्तर के बाहर धूप में खड़ी है, और साहब बहादुर अपने ऐयर कन्डीशन्ड कमरे में मेहमानों के साथ गप शप में मस्रूफ़ हैं। चाये पी जा रही है, नाश्ता हो रहा है। इस अमल के इख़्तियार करने में एक तरफ़ तो तन्ख़्वाह हराम हो रही है, और दूसरी तरफ़ अल्लाह की मख़्लूक़ को परेशान करने का गुनाह अलग हो रहा है।

सरकारी दफ़्तरों का हाल

एक सरकारी महकमे के ज़िम्मेदार अफ़्सर ने मुझे बताया कि मेरे ज़िम्मे यह ड्यूटी है कि मैं मुलाज़िमों की हाज़री लगाऊं। एक हफ़्ते के बाद हफ़्ते भर का चिट्ठा तैयार करके ऊपर वाले अफ़्सर को पेश करता हूं ताकि उसके मुताबिक़ तन्ख़्वाहें तैयार की जायें, और मेरे महकमे में नौजवानों की एक बड़ी तायदाद ऐसी है जो मार पीट वाले नौजवान हैं, उनका हाल यह है कि अव्वल तो दफ़्तर में आते ही नहीं हैं, और अगर कभी आते भी हैं तो एक दो घन्टे के लिये आते हैं और यहां आकर भी यह करते हैं कि दोस्तों से मुलाक़ात करते हैं, कैन्टीन में बैठ कर गप शप करते हैं और मुश्किल से आधा घन्टा दफ़्तरी काम करते हैं और चले जाते हैं। मैंने हाज़री के रजिस्टर में लिख दिया कि ये हाज़िर नहीं हुए तो वे लोग पिस्तौल और रिवालवर

लेकर मुझे मारने के लिये आ गये और कहा कि हमारी हाज़री क्यों नहीं लगाई? फ़ौरन हमारी हाज़री लगाओ।

अब मुझे बतायें कि मैं क्या करूं? अगर हाज़री लगाता हूं तो झूठ होता है, और अगर नहीं लगाता हूं तो उन लोगों के गुस्से और नाराज़गी का निशाना बनता हूं, मैं क्या करूं? आज हमारे दफ़्तरों का यह हाल है।

अल्लाह तआला के हुकूक़ में कोताही

और सब से बड़ा हक़ अल्लाह तआला का है, उस हक़ की अदायगी में कमी करना भी कम नापने और कम तौलने में दाख़िल है, जैसे नमाज़ अल्लाह तआला का हक़ है, और नमाज़ का तरीक़ा बता दिया गया कि इस तरह खड़े हो, इस तरह रूकू करो, इस तरह सज्दा करो, इस तरह इत्मीनान के साथ सारे अर्कान अदा करो, अब आपने जल्दी जल्दी बग़ैर इत्मीनान के एक मिनट के अन्दर नमाज़ पढ़ ली। न सज्दा इत्मीनान से किया, न रुकू इत्मीनान से किया, तो आपने अल्लाह तआला के हक़ में कोताही कर दी, चुनांचे हदीस शरीफ़ में आता है कि एक साहिब ने जल्दी जल्दी नमाज़ अदा कर ली, न रुकू इत्मीनान से किया, न सज्दा इत्मीनान से किया, तो एक सहाबी ने उनकी नमाज़ देख कर फ़रमाया कि:

"لقد طففت"

यानी तुमने नमाज़ के अन्दर तत्फ़ीफ़ की, यानी अल्लाह तआला का पूरा हक़ अदा नहीं किया।

याद रखिये, किसी का भी हक़ हो, चाहे अल्लाह तआला का हक़ हो या बन्दे का हक़ हो, उसमें जब कमी और कोताही की जायेगी तो यह भी नाप तौल में कमी के हुक्म में दाख़िल होगी, और उस पर वे सारी वओदें सादिक़ आयेंगी जो कुरआने करीम ने नाप तौल की कमी पर बयान की हैं।

मिलावट करना हक़ तलफ़ी है

इसी तरह "ततफ़ीफ़" के विस्तृत मफ़्हूम में यह बात भी दाख़िल है कि जो चीज़ फ़रोख़्त की वह ख़ालिस फ़रोख़्त नहीं की बल्कि उसके अन्दर मिलावट कर दी, यह मिलावट करना कम नापने और कम तौलने में इस लिहाज़ से दाख़िल है कि जैसे आपने एक किलो आटा फ़रोख़्त किया लेकिन उस एक किलो आटे में ख़ालिस आटा तो आधा किलो है और आधा किलो कोई और चीज़ मिला दी है। इस मिलावट का नतीजा यह हुआ कि ख़रीदार का जो हक़ था कि उसको एक किलो आटा मिलता वह हक़ उसको पूरा नहीं मिला, इसलिये यह भी हक़ तलफ़ी में दाख़िल है।

अगर थोक विक्रेता मिलावट करे?

बाज़ लोग यह इश्काल पेश करते हैं कि हम छोटे दुकानदार हैं। हमारे पास थोक विक्रेताओं की तरफ़ से जैसा माल आता है, वह हम आगे फ़रोख़्त कर देते हैं, इसलिये हमें मजबूरन् वह चीज़ वैसे ही आगे फ़रोख़्त करनी पड़ती है। इस इश्काल का जवाब यह है कि अगर एक शख़्स ख़ुद माल नहीं बनाता और न मिलावट करता है बल्कि दूसरे से माल लेकर आगे फ़रोख़्त करता है तो इस सूरत में ख़रीदार के सामने यह बात वाज़ेह कर दे कि मैं इस बात का ज़िम्मेदार नहीं कि इसमें कितनी अस्लियत है और कितनी मिलावट है, अलबत्ता मेरी मालूमात के मुताबिक़ इतनी असलियत है और इतनी मिलावट है।

ख़रीदार के सामने वज़ाहत कर दे

लेकिन हमारे बाज़ारों में बाज़ चीज़ें ऐसी हैं जो असली और ख़ालिस मिलती ही नहीं हैं बल्कि जहां से भी लोगे वह मिलावट शुदा ही मिलेगी, और सब लोगों को यह बात मालूम भी है कि यह चीज़ असली नहीं है बल्कि इसमें मिलावट है। ऐसी सूरत में वह ताजिर जो उस चीज़ को दूसरे से ख़रीद कर लाया है, उसके ज़िम्मे यह

ज़रूरी नहीं है कि वह हर हर शख़्स को उस चीज़ के बारे में बताये, इसलिये कि हर शख़्स को उसके बारे में मालूम है कि यह ख़ालिस नहीं है। लेकिन अगर यह ख़्याल हो कि ख़रीदने वाला इस चीज़ की हक़ीक़त से बे ख़बर है तो इस सूरत में उसको बताना चाहिये कि यह चीज़ ख़ालिस नहीं है बल्कि इसमें मिलावट है।

ऐब के बारे में ग्राहक को बता दे

इसी तरह अगर बेचे जाने वाले सामान में कोई ऐब हो, वह ऐब ख़रीदार को बता देना चाहिये, ताकि अगर वह शख़्स उस ऐब के साथ कोई चीज़ ख़रीदना चाहता है तो ख़रीद ले वर्ना छोड़ दे, नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

"من باع عيبا لم يبينه لم يزل في مقت الله، ولم تزل الملائكة تلعنه"

(ابن ماجه شريف)

"यानी जो शख़्स ऐबदार चीज़ फ़रोख़्त करे, और उस ऐब के बारे में वह ख़रीदार को न बताये कि उसके अन्दर यह ख़राबी है तो ऐसा शख़्स मुसल्सल अल्लाह के ग़ज़ब में रहेगा और फ़रिश्ते ऐसे आदमी पर मुसल्सल लानत भेजते रहते हैं"।

धोखा देने वाला हम में से नहीं

एक मर्तबा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम बाज़ार तशरीफ़ ले गये, वहां आपने देखा कि एक शख़्स गेहूं बेच रहा है, आप उसके क़रीब तशरीफ़ ले गये और गेहूं की ढेरी में अपना हाथ डाल कर उसको ऊपर नीचे किया तो यह नज़र आया कि ऊपर तो अच्छा गेहूं है और नीचे बारिश और पानी के अन्दर गीला होकर ख़राब हो जाने वाला गेहूं है, अब देखने वाला जब ऊपर से देखता है तो उसको यह नज़र आता है कि गेहूं बहुत अच्छा है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उस शख़्स से फ़रमाया कि तुमने यह ख़राब वाला गेहूं ऊपर क्यों नहीं रखा, ताकि ख़रीदार को मालूम हो जाये कि यह गेहूं ऐसा है, वह लेना चाहे तो ले ले, न लेना चाहे तो

छोड़ दे। उस शख़्स ने जवाब दिया कि या रसूलल्लाह, बारिश की वजह से कुछ गेहूं ख़राब हो गया थी, इसलिये मैंने उसको नीचे कर दिया, आपने फ़रमाया कि ऐसा न करो बल्कि उसको ऊपर कर दो, और फिर आपने इरशाद फ़रमाया कि:

"من غش فليس منا" (مسلم شريف)

यानी जो शख़्स धोखा दे वह हम में से नहीं, यानी जो शख़्स मिलावट करके धोखा दे कि बज़ाहिर तो ख़ालिस चीज़ बेच रहा है लकिन हकीक़त में उसमें कोई दूसरी चीज़ मिला दी गयी है, या बज़ाहिर तो पूरी चीज़ दे रहा है लेकिन हक़ीक़त में वह उस से कम दे रहा है, तो यह ग़श और धोखा है, और जो शख़्स यह काम करे वह हम में से नहीं है, यानी मुसलमानों में से नहीं है, देखिये ऐसे शख़्स के बारे में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम कितनी सख़्त बात फ़रमा रहे हैं, इसलिये जो चीज़ बेच रहे हो उसकी हकीक़त ख़रीदार को बता दो कि इसकी यह हक़ीक़त है, लेकिन ख़रीदार को धोखे और अंधेरे में रखना मुनाफ़कत है, मुसलमान और मोमिन का शेवा नहीं है।

इमाम अबू हनीफ़ा रह. की दियानतदारी

हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा रह. जिनके हम और आप सब तक़्लीद करने वाले हैं, बहुत बड़े ताजिर थे, कपड़े की तिजारत करते थे लेकिन बड़े से बड़े नफ़े को इस हदीस पर अ़मल करते हुए कुरबान कर दिया करते थे। चुनांचे एक मर्तबा उनके पास कपड़े का एक थान आया जिसमें कोई ऐब था, चुनांचे आपने अपने मुलाज़िमों को जो दुकान पर काम करते थे, कह दिया कि यह थान फ़रोख़्त करते हुए ग्राहक का बता दिया जाये कि इसके अन्दर यह ऐब है। चन्द दिन के बाद एक मुलाज़िम ने वह थान फ़रोख़्त कर दिया और ऐब बताना भूल गया। जब इमाम साहिब ने पूछा कि ऐबदार थान क्या हुआ? उस मुलाज़िम ने बताया कि हज़रत मैंने उसको फ़रोख़्त कर

दिया। अब अगर कोई और मालिक होता तो वह मुलाज़िम को शाबाश देता कि तुमने ऐबदार थान फ़रोख़्त कर दिया, मगर इमाम साहिब ने पूछा कि क्या तुमने उसको ऐब बता दिया था? मुलाज़िम ने जवाब दिया कि मैं ऐब बताना तो भूल गया, आपने पूरे शहर के अन्दर उस ग्राहक की तलाश शुरू कर दी जो वह ऐबदार थान ख़रीद कर ले गया था। काफ़ी तलाश के बाद वह ग्राहक मिल गया तो आपने उसको बताया कि जो थान आप मेरी दुकान से ख़रीद कर लाये हैं उसमें फ़लां ऐब है, इसलिये आप वह थान मुझे वापस कर दें और अगर उसी ऐब के साथ रखना चाहें तो आपकी ख़ुशी।

आज हमारा हाल

हम लोगों का यह हाल हो गया है कि न सिर्फ़ यह कि ऐब नहीं बताते, बल्कि जानते हैं कि यह ऐबदार सामान है, इसमें फ़लां ख़राबी है, इसके बावजूद क़स्में खा खाकर यह यक़ीन दिलाते हैं कि यह बहुत अच्छी चीज़ है, आला दर्जे की है, इसको ख़रीद लें।

हमारे ऊपर यह जो अल्लाह तआला का ग़ज़ब नाज़िल हो रहा है कि पूरा समाज अज़ाब में मुब्तला है। हर शख़्स बद अमनी और बे चैनी और परेशानी में है, किसी शख़्स की भी जान, माल, आबरू महफ़ूज़ नहीं है, यह अज़ाब हमारे इन्हीं गुनाहों का नतीजा और वबाल है कि हमने मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के बताये हुए तरीक़ों को छोड़ दिया। सामान फ़रोख़्त करते वक़्त उसकी हक़ीक़त लोगों के सामने वाज़ेह नहीं करते, मिलावट, धोखा, फ़रेब आम हो चुका है।

बीवी के हुक़ूक़ में कोताही गुनाह है

इसी तरह आज शौहर बीवी से तो सारे हुक़ूक़ हासिल करने को तैयार है। वह हर बात में मेरी इताअत भी करे, खाना भी पकाये, घर का इन्तिज़ाम भी करे, बच्चों की परवरिश भी करे, उनकी तर्बियत भी करे और मेरे माथे पर शिकन भी न आने दे और आंख के इशारे की

मुन्तज़िर रहे। ये सारे हुकूक़ वुसूल करने को शौहर तैयार है, लेकिन जब बीवी के हुकूक़ अदा करने का वक़्त आये उस वक़्त डन्डी मार जाये, और उनको अदा न करे, हालांकि कुरआने करीम में अल्लाह तआ़ला ने शौहरों को हुक्म फ़रमा दिया है कि:

"وعاشروهن بالمعروف" (سورة النساء:١٩)

"यानी बीवियों के साथ नेक बर्ताव करो"

और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

"خياركم خياركم لنساءهم" (ترمذی شریف)

"यानी तुम में से बेहतरीन शख़्स वह है जो अपनी औरतों के हक़ में बेहतर हो"।

एक दूसरी हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"استوصوا بالنساء خيرا" (بخاری شرف)

"यानी औरतों के हक़ में भलाई करने की नसीहत करने की नसीहत को कुबूल कर लो" यानी उनके साथ भलाई का मामला करो।

अल्लाह और अल्लाह के रसूल तो उनके हुकूक़ की अदाएगी की इतनी ताकीद फ़रमा रहे हैं, लेकिन हमारा यह हाल है कि हम अपनी औरतों के पूरे हुकूक़ अदा करने को तैयार नहीं, यह सब कम नापने और कम तौलने के अन्दर दाख़िल है और शरअ़न हराम है।

मेहर माफ़ कराना हक़ तल्फ़ी है

सारी ज़िन्दगी में बेचारी औरत का एक ही माली हक़ शौहर के ज़िम्मे वाजिब होता है, वह है मेहर, वह भी शौहर अदा नहीं करता। होता यह है कि सारी ज़िन्दगी तो मेहर अदा नहीं किया, जब मरने का वक़्त आया तो मौत के बिस्तर पर पड़े हैं, दुनिया से जाने वाले हैं, रुख़्सती का मन्ज़र है, उस वक़्त बीवी से कहते हैं कि मेहर माफ़

कर दो, अब इस मौके पर बीवी क्या करे? क्या रुख़्सत होने वाले शौहर से यह कह दे कि मैं माफ़ नहीं करती, चुनांचे उसको मेहर माफ़ करना पड़ता है। सारी उम्र उस से फ़ायदा उठाया, सारी उम्र तो उस से हुकूक़ तलब किये लेकिन उसका हक़ देने का वक़्त आया तो उसमें डन्डी मार गये।

ख़र्च में कमी हक़ तल्फ़ी है

यह तो मेहर की बात थी, ख़र्च के अन्दर शरीअत का यह हुक्म है कि उसको इतना ख़र्च दिया जाये कि वह आज़ादी और इत्मीनान के साथ गुज़ारा कर सके, अगर उसमें कमी करेगा तो यह भी कम नापने और कम तौलने के अन्दर दाख़िल है और हराम है। खुलासा यह कि जिस किसी का कोई हक़ दूसरे के ज़िम्मे वाजिब हो, वह उसको पूरा अदा करे, उसमें कमी न करे, वर्ना उस अज़ाब का हक़दार होगा जिस अज़ाब की वईद अल्लाह तआ़ला ने इन आयतों में बयान फ़रमाई है।

यह हमारे गुनाहों का वबाल है

हम लोगों का यह हाल है कि जब हम मज्लिस जमा कर बैठते हैं तो हालात पर तब्सरा करते हैं कि हालात बहुत ख़राब हो रहे हैं, बद अम्नी है, बे चैनी है, डाके पड़ रहे हैं, जान महफ़ूज़ नहीं, आर्थिक बदहाली के अन्दर मुब्तला हैं, ये सब तब्सरे होते हैं लेकिन कोई शख़्स इन तमाम परेशानियों का हल तलाश करके इसका इलाज करने को तैयार नहीं होता, मज्लिस के बाद दामन झाड़ कर उठ जाते हैं।

अरे, यह देखो कि जो कुछ हो रहा है, वह ख़ुद से नहीं हो रहा है, बल्कि कोई करने वाला कर रहा है। इस कायनात का कोई ज़र्रा और कोई पत्ता अल्लाह तआ़ला की मर्ज़ी के बग़ैर हर्कत नहीं कर सकता। इसलिये अगर बद अम्नी और बेचैनी आ रही है तो उसकी मर्ज़ी से आ रही है। अगर सियासी संकट पैदा हो रहा है तो वह भी

अल्लाह की मर्ज़ी से हो रहा है। अगर चोरियां और डकैतियां हो रही हैं तो उसी की मर्ज़ी से हो रही हैं। यह सब कुछ क्यों हो रहा है? यह हक़ीक़त में अल्लाह तआला की तरफ़ से अज़ाब है। कुरआने करीम का इरशाद है:

"وماأصابكم من مصيبة فبما كسبت ايديكم و يعفوا عن كثير"

(سورة الشورى:٣)

"यानी जो कुछ तुम्हें बुराई या मुसीबत पहुंच रही है, वह सब तुम्हारे हाथों के करतूत की वजह से है, और बहुत से गुनाह तो अल्लाह तआला माफ़ फ़रमा देते हैं" दूसरी जगह कुरआने करीम का इरशाद है:

"ولو يؤاخذالله الناس بما كسبوا ماترك على ظهرها من دآبة"

(سورة الفاطر:٤٥)

"यानी अगर अल्लाह तआला तुम्हारे हर गुनाह पर पकड़ करने पर आ जायें तो रूए ज़मीन पर कोई चलने वाला जानवर बाक़ी न रहे, सब हलाक व बर्बाद हो जायें, लेकिन अल्लाह तआला अपनी हिक्मत से और अपनी रहमत से बहुत से गुनाह माफ़ करते रहते हैं"। लेकिन जब तुम हद से बढ़ जाते हो, उस वक़्त इस दुनिया के अन्दर भी तुम पर अज़ाब नाज़िल किये जाते हैं, ताकि तुम संभल जाओ, अगर अब भी संभल गये तो तुम्हारी बाक़ी ज़िन्दगी भी दुरुस्त हो जायेगी और आख़िरत भी दुरुस्त हो जायेगी, लेकिन अगर अब भी न संभले तो याद रखो, दुनिया के अन्दर तो तुम पर अज़ाब आ ही रहा है, अल्लाह बचाये, आख़िरत का अज़ाब इस से भी ज़्यादा सख़्त है।

हराम पैसों का नतीजा

आज हर शख़्स इस फ़िक्र में है कि किसी तरह दो पैसे जल्दी से हाथ आ जायें, कल के बजाये आज ही मिल जायें, चाहे हलाल तरीक़े से मिलें या हराम तरीक़े से मिलें, धोखा देकर मिलें या फ़रेब

देकर मिलें या दूसरे की जेब काट कर मिलें, लेकिन मिल जायें। याद रखो, इस फ़िक्र के नतीजे में तुम्हें दो पैसे मिल जायेंगे, लेकिन यह दो पैसे न जाने कितनी बड़ी रक़म तुम्हारी जेब से निकाल कर ले जायेंगे, यह दो पैसे दुनिया में तुम्हें कभी अम्न व सुकून नहीं दे सकते, यह दो पैसे तुम्हें चैन की ज़िन्दगी नहीं दे सकते। इसलिये कि यह दो पैसे तुमने हराम तरीक़े से और दूसरे की जेब पर डाका डाल कर, दसूरे इन्सान की मजबूरी से फ़ायदा उठा कर हासिल किये हैं। इसलिये गिन्ती में तो यह पैसे शायद इज़ाफ़ा कर दें, लेकिन तुम्हें चैन लेने नहीं देंगे और कोई दूसरा शख़्स तुम्हारी जेब पर डाका डाल देगा और उस से ज़्यादा निकाल कर ले जायेगा। आज बाज़ारों में यही हो रहा है कि आपने मिलावट करके, धोखा देकर पैसे कमाये, दूसरी तरफ़ दो हथियार बंद अफ़राद आपकी दुकान में दाख़िल हुए और असलिहा के ज़ोर पर आपका सारा असासा लूट कर ले गये। अब बताइये, जो पैसे आपने हराम तरीक़ों से कमाये थे वे फ़ायदे मन्द साबित हुए या नुक़सान देह साबित हुए? लेकिन अगर तुम हराम तरीक़ा इख़्तियार न करते और अल्लाह तआ़ला के साथ मामला दुरुस्त रखते तो इस सूरत में यह पैसे अगरचे गिनती में कुछ कम होते, लेकिन तुम्हारे लिये आराम और सुकून और चैन का ज़रिया बनते।

अ़ज़ाब का सबब गुनाह हैं

बाज़ लोग यह कहते हैं कि हमने तो बहुत अमानत और दियानत के साथ पैसे कमाये थे, इसके बावजूद हमारी दुकान पर भी डाकू आ गये और लूट कर ले गये। बात यह है कि ज़रा ग़ौर करो कि अगरचे तुमने अमानत और दियानत से कमाये थे लेकिन यक़ीन करो कि कोई न कोई गुनाह ज़रूर हुआ होगा, इसलिये कि अल्लाह तआ़ला यही फ़रमा रहे हैं कि जो कुछ तुम्हें मुसीबत पहुंच रही है वह तुम्हारे हाथों के करतूत की वजह से पहुंच रही है, हो सकता है कि तुमने

कोई गुनाह किया हो लेकिन उसका ख़्याल और ध्यान नहीं किया, हो सकता है कि तुमने ज़कात पूरी न अदा की हो, या ज़कात का हिसाब सही न किया हो या और कोई गुनाह किया हो, उसके नतीजे में यह अज़ाब तुम पर आया हो।

यह अज़ाब सब को अपनी लपेट में ले लेगा

दूसरे यह कि जब कोई गुनाह समाज में फैल जाता है, और उस गुनाह से कोई रोकने वाला भी नहीं होता तो उस वक़्त जब अल्लाह तआला का कोई अज़ाब आता है तो अज़ाब यह नहीं देखता कि किस ने उस गुनाह को किया था और किस ने नहीं किया था, बल्कि वह अज़ाब आम होता है, तमाम लोग उसकी लपेट में आ जाते हैं, चुनांचे कुरआने करीम का इरशाद है:

"واتقوا فتنة لا تصيبن الذين ظلموا منكم خاصة" (سورة انفال:٢٥)

यानी उस अज़ाब से डरो जो सिर्फ़ ज़ालिमों ही को अपनी लपेट में नहीं लेगा, बल्कि जो लोग ज़ुल्म से अलग थे वे भी उस अज़ाब में पकड़े जायेंगे, इसलिये कि अगरचे ये लोग ख़ुद तो ज़ालिम नहीं थे लकिन कभी ज़ालिम का हाथ पकड़ने की कोशिश नहीं की, कभी ज़ुल्म को मिटाने की कोशिश नहीं की, उस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ उनकी पेशानी पर बल नहीं आया, इसलिये गोया कि वे भी उस ज़ुल्म में शामिल थे। इसलिये यह कहना कि हम तो बड़ी अमानत दारी और दियानत दारी के साथ तिजारत कर रहे थे इसके बावजूद हमारे यहां चोरी हो गयी और डाका पड़ गया, तो इतनी बात कह देना काफ़ी नहीं, इसलिये कि उस अमानत और दियानत को दूसरों तक पहुंचाने का काम तुमने अन्जाम नहीं दिया, उसको छोड़ दिया, इसलिये इस अज़ाब में तुम भी गिरफ़्तार हो गये।

ग़ैर मुस्लिमों की तरक़्क़ी का सबब

एक ज़माना वह था जब मुसलमान का यह शेवा और तरीक़ा था कि तिजारत बिल्कुल साफ़ सुथरी हो, उसमें दियानत और अमानत

हो, धोखा और फ़रेब न हो। आज मुसलमानों ने तो इन चीज़ों को छोड़ दिया और अंग्रेज़ों और अमेरिकियों और दूसरी पश्चिमी क़ौमों ने इन चीज़ों को अपनी तिजारत में इख़्तियार कर लिया, इसका नतीजा यह है कि उनकी तिजारत को तरक़्क़ी हो रही है, दुनिया पर छा गये हैं। मेरे वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. फ़रमाया करते थे कि याद रखो, बातिल के अन्दर कभी उभरने और तरक़्क़ी करने की ताक़त ही नहीं, इसलिये कि क़ुरआने करीम का साफ़ इरशाद है:

"ان الباطل كان زهوقًا"

यानी बातिल तो मिटने के लिये आया है, लेकिन अगर कभी तुम्हें यह नज़र आये कि कोई बातिल तरक़्क़ी कर रहा है, उभर रहा है, तो समझ लो कि कोई हक़ चीज़ उसके साथ लग गयी है और उस हक़ चीज़ ने उसको उभार दिया है। इसलिये यह बातिल लोग जो ख़ुदा पर ईमान नहीं रखते, आख़िरत पर ईमान नहीं रखते, मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम पर ईमान नहीं रखते, इसका तक़ाज़ा तो यह था कि उनको दुनिया के अन्दर भी ज़लील और रुस्वा कर दिया जाता, लकिन कुछ हक़ चीज़ें उनके साथ लग गयीं, वह अमानत और दियानत जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हमें सिखाई थी, वह उन्हों ने इख़्तियार कर ली, उसके नतीजे में अल्लाह तआला ने उनकी तिजारत को तरक़्क़ी अता फ़रमाई, आज वे पूरी दुनिया पर छा गये और हमने थोड़े से नफ़े की ख़ातिर अमानत और दियानत को छोड़ दिया और धोखे व फ़रेब को इख़्तियार कर लिया, और यह न सोचा कि यह धोखा और फ़रेब आगे चल कर हमारी अपनी तिजारत को तबाह व बर्बाद कर देंगे।

मुसलमानों की खुसूसियत

मुसलमान की एक ख़ुसूसियत यह है कि वह तिजारत में कभी धोखा और फ़रेब नहीं देता, नाप तौल में कभी कमी नहीं करता, कभी

मिलावट नहीं करता, अमानत और दियानत को कभी हाथ से जाने नहीं देता, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने दुनिया के सामने ऐसा ही मुआशरा पेश किया और सहाबा-ए-किराम की शक्ल में ऐसे लोग तैयार किये जिन्हों ने तिजारत में बड़े से बड़े नुक़्सान को गवारा कर लिया, लकिन धोखा और फ़रेब देने को गवारा नहीं किया। जिसका नतीजा यह हुआ कि अल्लाह तआ़ला ने उनकी तिजारत भी चमकाई और उनकी सियासत भी चमकाई, उनका बोल बाला किया और उन्हों ने दुनिया से अपनी ताक़त और कुव्वत का लोहा मनवाया। आज हमारा यह हाल है कि आम मुसलमान नहीं बल्कि वे मुसलमान जो पांच वक़्त की नमाज़ पाबन्दी से अदा करते हैं, लेकिन जब वे बाज़ार में जाते हैं तो सब अहकाम भूल जाते हैं। गोया कि अल्लाह तआ़ला के अहकाम सिर्फ़ मस्जिद तक के लिये हैं, बाज़ार के लिये नहीं। ख़ुदा के लिये इस फ़र्क़ को ख़त्म करें और ज़िन्दगी के तमाम शोबों में इस्लाम के तमाम अहकामों की तामील करें।

ख़ुलासा

ख़ुलासा यह कि "तत्फ़ीफ़" के अन्दर वे तमाम सूरतें दाख़िल हैं जिनमें एक शख़्स अपना हक़ पूरा पूरा वुसूल करने के लिये हर वक़्त तैयार रहे, लेकिन अपने ज़िम्मे जो दूसरों के हुक़ूक़ वाजिब हैं वह उनको अदा न करे। एक हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया:

"لا یؤمن احدکم حتی یحب لاخیه ما یحب لنفسه" (بخاری شریف)

"यानी तुम में से कोई शख़्स उस वक़्त तक मोमिन नहीं हो सकता जब तक वह अपने मुसलमान भाई के लिये भी वही चीज़ पसन्द न करे जो अपने लिये पसन्द करता है"।

यह न हो कि अपने लिये तो पैमाना कुछ और है और दूसरों के लिये पैमाना कुछ और है। जब तुम दूसरों के साथ कोई मामला करो

तो उस वक़्त यह सोचो कि अगर यही मामला कोई दूसरा शख़्स मेरे साथ करता तो मुझे नागवार होता, मैं इसको अपने ऊपर ज़ुल्म तसव्वुर करता। तो अगर मैं भी यह मामला जब दूसरों के साथ करूंगा तो वह भी आख़िर इन्सान है, उसको भी इस से नागवारी और परेशानी होगी, उस पर ज़ुल्म होगा, इसलिये मुझे यह काम नहीं करना चाहिये।

इसलिये हम सब अपने गरेबान में मुंह डाल कर देखें और सुबह से लेकर शाम तक की ज़िन्दगी का जायज़ा लें कि कहां कहां हम से हक़ तल्फ़ियां हो रही हैं, कम नापना, कम तौलना, धोखा देना, मिलावट करना, फ़रेब देना, ऐबदार चीज़ बेचना, ये तिजारत के अन्दर हराम हैं। जिसकी वजह से तिजारत पर अल्लाह तआला की तरफ़ से वबाल आ रहा है। यह सब हक़ तल्फ़ी और "तत्फ़ीफ़" के अन्दर दाख़िल है, अल्लाह तआला हम सब को इस हक़ीक़त की समझ और शऊर अ़ता फ़रमाये और हुक़ूक़ अदा करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये, और "तत्फ़ीफ़" के वबाल और अ़ज़ाब से हमें नजात अ़ता फ़रमाये, आमीन।

واٰخردعوانا ان الحمد لله رب العالمين

भाई भाई बन जाओ

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّااللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْماً كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

فَاَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنَ الشَّيْطٰنِ الرَّجِيْمِ، بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ۔

اِنَّمَا الْمُؤْمِنُوْنَ اِخْوَةٌ فَاَصْلِحُوْا بَيْنَ اَخَوَيْكُمْ وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ۔

اٰمَنْتُ بِاللّٰهِ صَدَقَ اللّٰهُ مَوْلَانَا الْعَظِيْمُ وَصَدَقَ رَسُوْلُهُ النَّبِيُّ الْكَرِيْمُ وَنَحْنُ عَلٰى ذَالِكَ مِنَ الشَّاهِدِيْنَ وَالشَّاكِرِيْنَ، وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعَالَمِيْنَ۔ (الحجرات:١٠)

आयत का मतलब

यह आयत जो अभी मैंने आप हज़रात के सामने तिलावत की है, इस आयत में अल्लाह तआला इरशाद फ़रमाते हैं कि तमाम मुसलमान आपस में भाई भाई हैं, इसलिये तुम्हारे दो भाईयों के दरमियान कोई रंजिश या लड़ाई हो गयी हो तो तुम्हें चाहिये कि उनके दर्मियान सुलह करवाओ, सुलह कराने में अल्लाह से डरो ताकि तुम अल्लाह तआला की रहमत के हक़दार हो जाओ।

झगड़े दीन को मूंडने वाले हैं

कुरआन व सुन्नत में ग़ौर करने से यह बात खुल कर सामने आ जाती है कि अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को मुसलमान के आपसी झगड़े किसी क़ीमत पर पसन्द नहीं, मुसलमानों के दरमियान लड़ाई हो या झगड़ा हो या एक दूसरे से खिंचाव और तनाव की सूरत पैदा हो या रंजिश हो यह अल्लाह तआला को पसन्दीदा नहीं, बल्कि हुक्म यह है कि जहां तक हो सके रंजिशों और झगड़ों को, आपसी नफ़रतों और दुश्मनियों को किसी तरह ख़त्म

करो। एक हदीस में हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने सहाबा–ए–किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम से ख़िताब करते हुए फ़रमाया कि क्या मैं तुमको वो चीज़े न बताऊं जो नमाज रोज़े और सदके से भी अफ़ज़ल है? इरशाद फ़रमाया:

إِصْلَاحُ ذَاتِ الْبَيْنِ، فساد ذات البين الحالقة " (ابوداؤد شريف)

यानी लोगों के दरमियान सुलह कराना, इसलिए कि झगड़े दीन को मूंडने वाले हैं, यानी मुसलमानों के दरमियान आपस में झगड़े खड़े हो जायें, फ़साद बरपा हो जाये, एक दूसरे का नाम लेने के रवादार न रहें, एक दूसरे से बात न करें बल्कि एक दूसरे से ज़बान और हाथ से लड़ाई करें ये चीज़ें इन्सान के दीन को मूंड देने वाली हैं। यानी इन्सान के अन्दर जो दीन का जज़्बा है अल्लाह और अल्लाह के रसूल की फ़रमांबर्दारी का जो जज़्बा है वो इसके ज़रिये ख़त्म हो जाता है, आख़िर कार इन्सान का दीन तबाह हो जाता है, इसलिए फ़रमाया कि आपस के झगड़े और फ़साद से बचो।

बातिन को तबाह करने वाली चीज़ें

बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि आपस में लड़ाई झगड़ा करना और एक दूसरे से बुग्ज़ और दुश्मनी रखना यह इन्सान के बातिन को इतना ज़्यादा तबाह करता है कि इससे ज़्यादा तबाह करने वाली चीज़ कोई और नहीं है, अब अगर इन्सान नमाज़ भी पढ़ रहा है, रोज़े भी रख रहा है, तसबीहें भी पढ़ रहा है, वज़ीफ़े और नवाफ़िल का भी पाबन्द है, इन तमाम बातों के साथ साथ अगर वह इन्सान लड़ाई झगड़े में लग जाता है तो यह लड़ाई झगड़ा उसके बातिन को तबाह व बरबाद कर देगा और उसको अन्दर से खोखला कर देगा। इसलिए कि इस लड़ाई के नतीजे में उसके दिल में दूसरे की तरफ़ से बुग्ज़ होगा और इस बुग्ज़ की ख़ासियत यह है कि यह इन्सान को कभी इन्साफ़ पर क़ायम नहीं रहने देता, इसलिये वह इन्सान दूसरे के साथ कभी हाथ से ज़्यादती करेगा, कभी ज़बान से ज़्यादती करेगा, कभी दूसरे

का माली हक़ छीनने की कोशिश करेगा।

अल्लाह की बारगाह में आमाल की पेशी

सही मुस्लिम की एक हदीस है कि नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया, हर पीर के दिन और जुमेरात के दिन तमाम इन्सानों के आमाल अल्लाह तआ़ला की बारगाह में पेश किये जाते हैं और जन्नत के दरवाज़े खोल दिये जाते हैं। यों तो हर वक़्त सारी मख़्लूक़ के आमाल अल्लाह तआ़ला के सामने हैं और अल्लाह तआ़ला हर शख़्स के अ़मल से वाक़िफ़ हैं, यहां तक कि दिलों के भेद को जानते हैं कि किस के दिल में किस वक़्त क्या ख़्याल आ रहा है, तो सवाल पैदा होता है कि फिर इस हदीस का क्या मतलब है कि अल्लाह तआ़ला की बारगाह में आमाल पेश किये जाते हैं? बात असल में यह है कि वैसे तो अल्लाह तआ़ला सब कुछ जानते हैं लेकिन अल्लाह तआ़ला ने अपनी बादशाहत का निज़ाम इस तरह बनाया है कि इन दो दिनों में मख़्लूक़ के आमाल पेश किये जाएं ताकि उनकि बुनियाद पर उनके जन्नती या जहन्नमी होने का फ़ैसला किया जाये।

वह शख़्स रोक लिया जाए

बहर हाल आमाल पेश होने के बाद जब किसी इन्सान के बारे में यह मालूम हो जाता है कि यह शख़्स इस हफ़्ते के अन्दर ईमान की हालत में रहा और इसने अल्लाह तआ़ला के साथ किसी को शरीक नहीं ठहराया तो अल्लाह तआ़ला फ़रमाते हैं कि मैं आज के दिन इस की मग़्फ़िरत का ऐलान करता हूं। यानी यह शख़्स हमेशा जहन्नम में नहीं रहेगा बल्कि किसी न किसी वक़्त जन्नत में ज़रूर दाख़िल हो जायेगा, इसलिये इसके लिए जन्नत के दरवाज़े खोल दिये जायें, लेकिन साथ ही अल्लाह तआ़ला यह ऐलान भी फ़रमाते हैं:

"الامن بينه وبين اخيه شحناء فيقال انظروا هذين حتى يصلحا"

(ابو داؤد شريف)

लेकिन जिन दो शख़्सों के दरमियान आपस में कीना और बुग़्ज़ हो उनको रोक लिया जाये। उनके जन्नती होने का फ़ैसला मैं अभी नहीं करता, यहां तक कि उन दोनों के दरमियान आपस में सुलह न हो जाये।

बुग़्ज़ से कुफ़्र का अन्देशा

सवाल यह है कि इस शख़्स के जन्नती होने का ऐलान क्यों रोक दिया गया? बात असल में यह है कि यों तो जो शख़्स भी कोई गुनाह करेगा, क़ायदे के एतिबार से उसको उस गुनाह का बदला मिलेगा, उसके बाद जन्नत में जायेगा, लेकिन और जितने गुनाह हैं उनके बारे में यह अन्देशा नहीं है कि वे गुनाह उसको कुफ़्र और शिर्क में मुब्तला कर देंगे, इसलिए अल्लाह तआला फ़रमाते हैं कि चूंकि मोमिन है इसलिए इसके जन्नती होने का ऐलान अभी कर दो। जहां तक इसके गुनाहों का ताल्लुक़ है तो अगर यह उन से तौबा कर लेगा तो माफ़ हो जायेंगे और अगर तौबा नहीं करेगा तो ज़्यादा से ज़्यादा यह होगा कि उन गुनाहों की सज़ा भुगत कर जन्नत में चला जायेगा। लेकिन बुग़्ज़ और दुश्मनी ऐसे गुनाह हैं कि इनके बारे में यह अन्देशा है कि कहीं ये इसको कुफ़्र और शिर्क में मुब्तला न कर दें और इसका ईमान ख़त्म न हो जाये, इसलिए इनके जन्नती होने का फ़ैसला उस वक़्त तक के लिए रोक दो जब तक ये दोनों आपस में सुलह न कर लें। इस से आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को मुसलमानों में आपस का बुग़्ज़ और नफ़रत कितना ना पसन्द है।

शबे बराअत में भी मग़्फ़िरत नहीं होगी

शबे बराअत के बारे में यह हदीस आप हज़रात ने सुनी होगी कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि इस रात में अल्लाह तआला की रहमत इन्सानों की तरफ़ होती है, और इस रात में अल्लाह तआला इतने लोगों की मग़्फ़िरत फ़रमाते हैं

जितने कबीला कल्ब की बकरियों के जिस्म पर बाल हैं, लेकिन दो आदमी ऐसे हैं कि उनकी मग्फ़िरत इस रात में भी नहीं होती, एक वह शख़्स जिसके दिल में दूसरे मुसलमान की तरफ़ से बुग़्ज़ हो, कीना हो और दुश्मनी हो। वो रात जिसमें अल्लाह तआला की रहमत के दरवाज़े खुले हुए हैं, रहमत की हवायें चल रही हैं, इस हालत में भी वो शख़्स अल्लाह तआला की मग्फ़िरत से महरूम रहता है। दूसरा वो शख़्स जिसने अपना पायजामा टख़्नों से नीचे लटकाया हुआ हो, उसकी भी मग्फ़िरत नहीं होगी।

बुग़्ज़ की हक़ीक़त

और "बुग़्ज़" की हक़ीक़त यह है कि दूसरे शख़्स की बद ख़्वाही (बुरा चाहना) की फ़िक्र करना कि उसको किसी तरह नुक़्सान पहुंच जाये या उसकी बदनामी हो, लोग उसको बुरा समझें, उस पर कोई बीमारी आ जाये, उसकी तिजारत बन्द हो जाये या उसको तक्लीफ़ पहुंच जाये, तो अगर दिल में दूसरे शख़्स की तरफ़ से बद ख़्वाही पैदा हो जाये इसको "बुग़्ज़" कहते हैं, लेकिन अगर एक शख़्स मज़्लूम है, किसी दूसरे शख़्स ने उस पर ज़ुल्म किया है तो ज़ाहिर है कि मज़्लूम के दिल में ज़ालिम के ख़िलाफ़ जज़्बात पैदा हो जाते हैं और उसका मक़सद अपने आप से उस ज़ुल्म को दफ़ा करना होता है, ताकि वह ज़ुल्म न करे, तो ऐसी सूरत में अल्लाह तआला ने इस ज़ालिम से ज़ुल्म का बदला लेने की और अपने से ज़ुल्म को रोकने की भी इजाज़त दी है। चुनांचे उस वक़्त मज़्लूम उस ज़ालिम के ज़ुल्म को तो अच्छा न समझे बल्कि उसको बुरा समझे लेकिन उस वक़्त भी ज़ालिम की ज़ात से कोई कीना न रखे, उसकी ज़ात से बुग़्ज़ न करे और न बद–ख़्वाही की फ़िक्र करे तो मज़्लूम का यह अमल बुग़्ज़ में दाख़िल न होगा।

हसद और कीने का बेहतरीन इलाज

यह बुग़्ज़ हसद से पैदा होता है, दिल में पहले दूसरे की तरफ़

से हसद पैदा होता है कि वह आगे बढ़ गया मैं पीछे रह गया, और अब उसके आगे बढ़ जाने की वजह से दिल में जलन और कुढ़न हो रही है, घुटन हो रही है और दिल में ख़्वाहिश हो रही है कि मैं उसको किसी तरह का नुक़्सान पहुंचाऊं और नुक़्सान पहुंचाना ताक़त और इख़्तियार में नहीं है, इसके नतीजे में जो घुटन पैदा हो रही है उस से इंसान के दिल में "बुग्ज़" पैदा हो जाता है, इसलिये बुग्ज़ से बचने का पहला रास्ता यह है कि अपने दिल से पहले हसद को ख़त्म करो और बुज़ुर्गों ने हसद दूर करने का तरीक़ा यह बयान फ़रमाया कि अगर किसी शख़्स के दिल में यह हसद पैदा हो जाये कि वह मुझ से आगे क्यों बढ़ गया, तो इस हसद का इलाज यह है कि वह उस शख़्स के हक़ में यह दुआ करे कि या अल्लाह उसको और तरक़्क़ी अता फ़रमा, जिस वक़्त उसके हक़ में यह दुआ करेगा उस वक़्त दिल पर आरे चल जायेंगे, उसके लिये दिल तो यह चाह रहा है कि उसकी तरक़्क़ी न हो बल्कि नुक़्सान हो जाये लेकिन ज़बान से वह यह दुआ कर रहा है कि या अल्लाह उसको और तरक़्क़ी अता फ़रमा, चाहे दिल पर आरे चल जायें लेकिन तकल्लुफ़ से और ज़बरदस्ती उसके हक़ में दुआ करे। हसद दूर करने का यह बेहतरीन इलाज है। और जब हसद दूर हो जायेगा तो इन्शा अल्लाह बुग्ज़ भी दूर हो जायेगा। इसलिये हर शख़्स अपने दिल को टटोल कर देख ले और जिसके बारे में भी यह ख़्याल हो कि उसकी तरफ़ से दिल में बुग्ज़ या कीना है तो उस शख़्स को अपनी पांचों वक़्त की नमाज़ों में शामिल कर ले, यह हसद और कीने का बेहतरीन इलाज है।

दुश्मनों पर रहम, नबी की सीरत

देखिये मक्के के मुश्रिक लोगों ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और सहाबा किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम पर ज़ुल्म करने और आपको तक्लीफ़ देने, ईज़ा पहुंचाने में कोई कसर नहीं

छोड़ी, यहां तक कि आपके ख़ून के प्यासे हो गये, ऐलान कर दिया कि जो शख़्स हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को पकड़ कर लायेगा उसको सौ ऊंट इनाम में मिलेंगे। गज़्वा-ए-उहद (उहद की लड़ाई) के मौक़े पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर तीरों की बारिश की, यहां तक कि आपका चेहरा-ए-अनवर ज़ख़्मी हो गया, दांत मुबारक शहीद हो गये, लेकिन इस मौक़े पर आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ज़बान पर यह दुआ थी कि:

اَللّٰهُمَّ اهْدِ قَوْمِیْ فَاِنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ

ऐ अल्लाह मेरी क़ौम को हिदायत अ़ता फ़रमाइए, इनको इल्म नहीं है, ये ना वाक़िफ़ और जाहिल हैं, मेरी बात नहीं समझ रहे हैं इसलिये मेरे ऊपर ज़ुल्म कर रहे हैं। अन्दाज़ा लगाइये कि वे लोग ज़ालिम थे और उनके ज़ुल्म में कोई शक नहीं था लेकिन इसके बावजूद आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के दिल में उनकी तरफ़ से बुग़्ज़ और कीने का ख़्याल भी नहीं पैदा हुआ, तो यह भी नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़ज़ीम सुन्नत और आपका नमूना है कि बद् ख़्वाही का बदला बद् ख़्वाही से न दें बल्कि उसके हक़ में दुआ़ करें और यही हसद और बुग़्ज़ को दूर करने का बेहतरीन इलाज है।

बहर हाल, मैं यह अ़र्ज़ कर रहा था कि यह आपस के झगड़े आख़िर कार दिल में बुग़्ज़ और हसद पैदा कर देते हैं, इसलिये कि जब झगड़ा लम्बा होता है तो दिल में बुग़्ज़ ज़रूर पैदा होगा, और जब बुग़्ज़ पैदा होगा तो दिल की दुनिया तबाह हो जायेगी और बातिन ख़राब होगा, और इसके नतीजे में इन्सान अल्लाह की रहमत से महरूम हो जायेगा। इसलिये हुक्म यह है कि आपस के झगड़े से बचो और उन से दूर रहो।

झगड़ा इल्म का नूर ख़त्म कर देता है

यहां तक कि इमाम मालिक रह. फ़रमाते हैं कि एक झगड़ा तो

जिस्मानी होता है जिसमें हाथा पाई होती है, और एक झगड़ा पढ़े लिखों का और उलमा का होता है, वह है मुजादला, मुनाज़रा और बहस व मुबाहसा, एक आलिम ने एक बात पेश की, दूसरे ने उसके ख़िलाफ़ बात पेश की, उसने एक दलील दी, दूसरे ने उसकी दलील का रद्द लिख दिया। सवाल व जवाब और बहस व तकरार, एक न ख़त्म होने वाला सिलसिला चल पड़ता है, इसको भी बुज़ुर्गों ने कभी पसंद नहीं फ़रमाया, इसलिये कि इसकी वजह से बातिन का नूर ख़त्म हो जाता है। चुनांचे यही हज़रत इमाम मालिक बिन अनस रह. फ़रमाते हैं:

اَلْمِرَاءُ يَذْهَبُ بِنُوْرِ الْعِلْمِ

यानी इल्मी झगड़े इल्म को ख़त्म कर देते हैं। देखिये एक तो होता है "मुज़ाकरा" जैसे एक आलिम ने एक मस्अला पेश किया, दूसरे आलिम ने कहा कि इस मस्अले में मुझे फ़लां इश्काल है, अब दोनों बैठ कर समझने समझाने के ज़रिये उस मस्अले को हल करने में लगे हुए हैं, यह है मुज़ाकरा, यह बड़ा अच्छा अमल है, लेकिन यह झगड़ा कि एक आलिम ने दूसरे के ख़िलाफ़ एक मस्अले के सिलसिले में इश्तिहार शाया कर दिया या कोई पोसटर, रिसाला या किताब छाप दी और फिर यह सिलसिला चलता रहा। या एक आलिम ने दूसरे के ख़िलाफ़ तक़रीर कर दी, दूसरे आलिम ने उसके ख़िलाफ़ तक़रीर कर दी और यों मुख़ालफ़त बराए मुख़ालफ़त का सिलसिला क़ायम हो गया, यह है मुजादला और झगड़ा जिसको हमारे बुज़ुर्गों ने, दीन के इमामों ने बिल्कुल पसन्द नहीं फ़रमाया।

हज़रत थानवी रह. की कुव्वते कलाम

हकीमुल-उम्मत हज़रत मौलाना अशरफ़ अली साहिब रह. को अल्लाह तआला ने कुव्वते कलाम में ऐसा कमाल अता फ़रमाया था कि अगर कोई शख़्स किसी भी मस्अले पर बहस व मुबाहसे के लिये आ जाता तो आप चन्द मिन्ट में उसको ला जवाब कर देते थे, बल्कि

हमारे हज़रत डा. अब्दुल हई साहिब रह. ने वाक़िआ सुनाया कि एक बार आप बीमार थे और बिस्तर पर लैटे हुए थे, उस वक़्त आपने इरशाद फ़रमाया कि "अल्हम्दु लिल्लाह, अल्लाह तआला की रहमत के भरोसे पर यह बात कहता हूं कि अगर सारी दुनिया के अक़ल मंद लोग जमा होकर आ जायें, और इस्लाम के किसी भी मामूली से मस्अले पर एतिराज़ करें तो इन्शा अल्लाह यह नाकारा दो मिन्ट में उनको ला जवाब कर सकता है।

फिर फ़रमाया कि मैं तो एक मामूली सा तालिब इल्म हूं उलमा की तो बड़ी शान है "चुनांचे वाक़िआ यह था कि हज़रत थानवी रह. के पास कोई आदमी किसी मस्अले पर बात चीत करता तो चन्द मिन्ट से ज़्यादा नहीं चल सकता था।

मुनाज़रे से आम तौर पर फ़ायदा नहीं होता

खुद हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं कि जब मैं दारुल उलूम देवबन्द से दरसे निज़ामी करके फ़ारिग़ हुआ तो उस वक़्त मुझे बातिल फ़िरक़ों से मुनाज़रा करने का बहुत शौक़ था, चुनांचे कभी शियों से मुनाज़रा हो रहा है, कभी ग़ैर मुक़ल्लिदीन से तो कभी बरेलवियों से, कभी हिन्दुओं से और कभी सिख्खों से मुनाज़रा हो रहा है। चूंकि नया नया फ़ारिग़ हुआ था इसलिये शौक़ और जोश में यह मुनाज़रे करता रहा–लेकिन बाद में मैंने मुनाज़रे से तौबा कर ली, इसलिये कि तजुर्बा यह हुआ इस से फ़ायदा नहीं होता बल्कि अपनी बातिनी कैफ़ियतों पर इसका असर पड़ता है, इसलिये मैंने इसको छोड़ दिया। बहर हाल, जब हमारे बुज़ुर्गों ने हक़ व बातिल के दरमियान भी मुनाज़रे को पसन्द नहीं फ़रमाया तो फिर अपनी नफ़सानी ख़्वाहिशात की बुनियाद पर, या दुनियावी मामलात पर मुनाज़रे करने और लड़ाई झगड़े करने को कैसे पसन्द फ़रमा सकते हैं। यह झगड़ा हमारे बातिन को ख़राब कर देता है।

जन्नत में घर की ज़मानत

एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

وَمَنْ تَرَكَ الْمِرَاءَ وَهُوَ مُحِقٌّ بُنِيَ لَهُ فِيْ وَسَطِ الْجَنَّةِ (ترمذی شریف)

यानी मैं उस शख़्स को जन्नत के बीचों बीच घर दिलवाने का ज़िम्मेदार हूं जो हक़ पर होने के बावजूद झगड़ा छोड़ दे। यानी जो शख़्स हक़ पर होने के बावजूद यह ख़्याल करता है कि अगर में हक़ का ज़्यादा मुतालबा करूंगा तो झगड़ा खड़ा हो जायेगा, चलो इस हक़ को छोड़ दो, ताकि झगड़ा ख़त्म हो जाये, उसके लिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि मैं उसको जन्नत के बीचों बीच घर दिलवाने का ज़िम्मेदार हूं। इस से अन्दाज़ा लगायें कि सरकारे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को झगड़ा ख़त्म करने की कितनी फ़िक्र थी, ताकि आपस के झगड़े ख़त्म हो जायें। हां अगर कहीं मामला बहुत आगे बढ़ जाये और बर्दाश्त के क़ाबिल न हो तो ऐसी सूरत में इसकी इजाज़त है कि मज़्लूम ज़ालिम का तोड़ भी करे और उस से बदला लेना भी जायज़ है, लेकिन जहां तक हो सके यह कोशिश हो कि झगड़ा ख़त्म हो जाये।

झगड़ों के नतीजे

आज हमारा मुआ़शरा (समाज) झगड़ो से भर गया है, इसकी बे–बर्कती और अंधेरी पुरे मुआ़शरे में इस क़द्र छायी हुई है कि इबादतों के नूर महसूस नहीं होते, छोटी छोटी बातों पर झगड़े हो रहे हैं, कहीं ख़ानदानों में झगड़े हैं तो कहीं मियां बीवी में झगड़े हैं, कहीं दोस्तों में झगड़े हैं, कहीं भाईयों के दरमियान झगड़े हैं, कहीं रिश्तेदारों में झगड़ा है। और तो और उलमा–ए–किराम के दरमियान आपस में झगड़े हो रहे हैं, दीनदारों में झगड़े हो रहे हैं, और इसके नतीजे में दीन का नूर ख़त्म हो चुका है।

झगड़े किस तरह ख़त्म हों?

अब सवाल यह है कि ये झगड़े किस तरह ख़त्म हों? हकीमुल उम्मत हज़रत मौलाना मौहम्मद अशरफ़ अली साहिब थानवी रह. का एक मल्फ़ूज़ आप हज़रात को सुनाता हूं जो बड़ा सुनेहरा उसूल है। अगर इन्सान इस उसूल पर अमल कर ले तो उम्मीद है कि पिछत्तर फ़ीसदी झगड़े तो वहीं ख़त्म हो जायें। चुनांचे फ़रमाया कि:

"एक काम यह कर लो कि दुनिया वालों से उम्मीद बांधना छोड़ दो, जब उम्मीद छोड़ दोगे तो इन्शा अल्लाह फिर दिल में कभी बुग़्ज़ और झगड़े का ख़्याल नहीं आएगा"।

दूसरे लोगों से जो शिकायतें पैदा होती हैं, जैसे यह कि फ़लां शख़्स को ऐसा करना चाहिये था, उसने नहीं किया, जैसी मेरी इज़्ज़त करनी चाहिये थी, उसने ऐसी इज़्ज़त नहीं की, जैसी मेरी ख़ातिर मुदारात करनी चाहिये थी, उसने वैसी नहीं की, या फलां शख़्स के साथ मैंने फ़लां एहसान किया था, उसने उसका बदला नहीं दिया, वग़ैरह वग़ैरह। ये शिकायतें इसलिए पैदा होती हैं कि दूसरों से उम्मीद बांध रखी है, और जब वो उम्मीद पूरी नहीं होती तो इसके नतीज़े में दिल में गिरह पड़ गयी कि उसने मेरे साथ अच्छा बरताव नहीं किया, और दिल में शिकायत पैदा हो गयी। ऐसे मौक़े पर अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया है कि अगर तुम्हें किसी से कोई शिकायत पैदा हो जाये तो उस से जाकर कह दो कि मुझे तुम से यह शिकायत है, तुम्हारी यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी, मुझे बुरी लगी, पसन्द नहीं आयी। यह कह कर अपना दिल साफ़ कर लो। लेकिन आज कल बात कह कर दिल साफ़ करने का दस्तुर ख़त्म हो गया, बल्कि अब यह होता है कि वाह उस बात को और शिकायत को दिल में लेकर बैठ जाता है, उसके बाद किसी और मौक़े पर कोई और बात पेश आ गयी, एक गिरह और पड़ गयी, चुनांचे आहिस्ता आहिस्ता दिल में गिरहें पड़ती चली जाती

हैं, वे फिर बुग्ज़ की शक्ल इख़्तियार कर लेती हैं, और बुग्ज़ के नतीजे में आपस में दुश्मनी पैदा हो जाती है।

उम्मीदें मत रखो

इसलिए हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं कि झगड़े की जड़ इस तरह काटो कि किसी से कोई उम्मीद ही मत रखो। क्या मख़्लूक़ से उम्मीदें बांधे बैठे हो, कि फ़लां यह देगा, फ़लां यह काम कर देगा, उम्मीद तो सिर्फ़ उस से वाबस्ता करो जो ख़ालिक़ और मालिक है, बल्कि दुनिया वालों से तो बुराई की उम्मीद रखो कि उन से तो हमेशा बुराई ही मिलेगी, और फिर बुराई की उम्मीद रखने के बाद अगर कभी अच्छाई मिल जाये तो उस वक़्त अल्लाह का शुक्र अदा करो कि या अल्लाह आपका शुक्र और एहसान है। और अगर बुराई मिले तो फिर ख़्याल कर लो कि मुझे तो पहले ही बुराई की उम्मीद थी। तो अब इसके नतीजे में दिल में शिकायत और बुग्ज़ पैदा नहीं होगा, और फिर दुश्मनी पैदा नहीं होगी, न झगड़ा होगा। इसलिये किसी से उम्मीद ही मत रखो।

बदला लेने की नियत मत रखो

इसी तरह हज़रत थानवी रह. ने एक और उसूल यह बयान फ़रमाया कि जब तुम किसी दूसरे के साथ कोई नेकी करो, या अच्छा सुलूक करो, तो सिर्फ़ अल्लाह को राज़ी करने के लिए करो। जैसे किसी की मदद करो या किसी शख़्स की सिफ़ारिश करो, तो यह सोच कर करो कि मैं अल्लाह को राज़ी करने के लिए यह बरताव कर रहा हूं, अपनी आख़िरत संवारने के लिये यह काम कर रहा हूं। जब इस नियत के साथ अच्छा बरताव करोगे तो इस सूरत में उस बरताव पर बदले का इन्तिज़ार नहीं करोगे। अब अगर मान लो कि आपने एक शख़्स के साथ अच्छा सुलूक किया, मगर उस शख़्स ने तुम्हारे अच्छे सुलूक का बदला अच्छाई के साथ नहीं दिया, और उसने तुम्हारे एहसान करने को कभी तसलीम ही नहीं किया, तो इस

सूरत मे ज़ाहिर है कि आपके दिल में ज़रूर यह ख़्याल पैदा होगा कि मैंने तो उसके साथ यह सुलूक किया था और उसने मेरे साथ उल्टा सुलूक किया। लेकिन अगर आपने उसके साथ अच्छा सुलूक सिर्फ़ अल्लाह को राज़ी करने के लिये किया था, तो इस सूरत मैं उसकी तरफ़ से बुरे सुलूक पर कभी शिकायत पैदा नहीं होगी, इसलिए कि आपका मक़्सद तो सिर्फ़ अल्लाह की रिज़ा थी, अगर इन दो उसूलों पर हम सब अ़मल कर लें तो फिर आपस के तमाम झगड़े ख़त्म हो जायें, और इस हदीस पर भी अ़मल हो जाये जो अभी मैंने आपके सामने बयान की, जिस में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि जो शख़्स हक़ पर होते हुए झगड़ा छोड़ दे तो मैं उस शख़्स को जन्नत के बीचों बीच घर दिलवाने का ज़िम्मेदार हूं।

हज़रत मुफ़्ती साहिब रह. की अ़ज़ीम कुरबानी

हमने अपने वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती महम्मद शफ़ी साहिब रह. की पूरी ज़िन्दगी में इस हदीस पर अ़मल करने का अपनी आखों से नज़ारा किया है, झगड़ा ख़त्म करने की ख़ातिर बड़े से बड़ा हक़ छोड़ कर अलग हो गये। उनका एक वाक़िआ़ सुनाता हूं जिस पर आज लोगों को यक़ीन करना मुश्किल मालूम होता है। यह दारुल उलूम जो इस वक़्त कोरंगी में क़ायम है, पहले नानक वाड़ा में एक छोटी सी इमारत में क़ायम था, जब काम ज़्यादा हुआ तो इसके लिये वह जगह तंग पड़ गयी, ज़्यादा और खुली हुई जगह की ज़रूरत थी, चुनांचे अल्लाह तआ़ला की ऐसी मदद हुई कि बिल्कुल शहर के दरमियान में हुकूमत की तरफ़ से एक बहुत बड़ी और कुशादा जगह मिल गई, जहाँ आज कल इस्लामिया कालिज क़ायम है, जहाँ हज़रत अ़ल्लामा शब्बीर अहमद उस्मानी रह. का मज़ार भी है। यह कुशादा जगह दारुल उलूम कराची के नाम अलाट हो गई, इस ज़मीन के काग़ज़ात मिल गये, कब्ज़ा मिल गया और एक कमरा भी बना दिया गया, टेलीफोन भी लग गया, उसके बाद दारुल उलूम की बुनियाद

रखते वक्त एक जलसा हुआ जिसमें पूरे पाकिस्तान के बड़े बड़े उलमा हज़रात तशरीफ़ लाये, उस जलसे के मौक़े पर कुछ हज़रात ने झगड़ा खड़ा कर दिया कि यह जगह दारुल उलूम को नहीं मिलनी चाहिये थी बल्कि फ़लां को मिलनी चाहिये थी, इत्तिफ़ाक़ से झगड़े में उन लोगों ने ऐसी कुछ बुज़ुर्ग हस्तियों को भी शामिल कर लिया जो हज़रत वालिद साहिब के लिये एहतिराम का दरजा रखती थीं, वालिद साहिब ने पहले तो यह कोशिश की कि यह झगड़ा किसी तरह ख़त्म हो जाए, लेकिन वह ख़त्म नहीं हुआ, वालिद साहिब ने यह सोचा कि जिस मदरसे की शुरूआत ही झगड़े से हो रही है तो उस मदरसे में क्या बर्कत होगी? चुनांचे वालिद साहिब ने यह फ़ैसला सुना दिया कि मैं इस ज़मीन को छोड़ता हूं।

मुझे इस में बर्कत नज़र नहीं आती

दारुल उलूम की मज्लिसे इन्तिज़ामी ने यह फ़ैसला सुना तो उन्हों ने हज़रत वालिद साहिब से कहा कि! यह आप क्या फ़ैसला कर रहे हैं? इतनी बड़ी ज़मीन वह भी शहर के दरमियान में ऐसी ज़मीन मिलना भी मुशकिल है, अब जब कि यह ज़मीन आपको मिल चुकी है, आपका इस पर क़ब्ज़ा है, आप ऐसी ज़मीन को छोड़ कर अलग हो रहे हैं? वालिद साहिब ने जवाब में फ़रमाया कि मैं मजलिसे इन्तिज़ामी को इस ज़मीन को छोड़ने पर मजबूर नहीं करता, इसलिये कि मजलिसे इन्तिज़ामी दर हक़ीक़त इस ज़मीन की मालिक हो चुकी है, आप हज़रात अगर चाहें तो मदरसा बना लें, मैं उसमें शमूलियत इख़्तियार नहीं करूंगा। इसलिये कि जिस मदरसे की बुनियाद झगड़े पर रखी जा रही हो, उस मदरसे में मुझे बर्कत नज़र नहीं आती। फिर हदीस सुनाई कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जो शख़्स हक़ पर होते हुए झगड़ा छोड़ दे मैं उसे जन्नत के बीचों बीच घर दिलवाने का ज़िम्मेदार हूँ। आप हज़रात यह कह रहे हैं कि शहर के बीचों बीच ऐसी ज़मीन कहां

मिलेगी, लेकिन सरकारे दो आलम हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया है कि मैं उसको जन्नत के बीचों बीच घर दिलवाऊंगा। यह कह कर उस ज़मीन को छोड़ दिया। आजके दौर में इसकी मिसाल मिलनी मुशकिल है कि कोई शख़्स इस तरह झगड़े की वजह से इतनी बड़ी ज़मीन छोड़ दे, लेकिन जिस शख़्स का नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के इरशाद पर कामिल यक़ीन है, वही यह काम कर सकता है। उसके बाद अल्लाह तआला का ऐसा फ़ज़्ल हुआ कि चंद ही महीनों के बाद उस ज़मीन से कई गुना बड़ी ज़मीन अता फ़रमा दी, जहां आज दारुल उलूम क़ायम है। यह तो मैंने आप हज़रात के सामने एक मिसाल बयान की, वर्ना हज़रत वालिद साहिब को हमने सारी ज़िन्दगी जहां तक हो सका इस हदीस पर अमल करते हुए देखा। हां मगर जिस जगह दूसरा शख़्स झगड़े के अन्दर फांस ही ले और मुक़ाबले और तोड़ के सिवा कोई चारा न रहे तो वो अलग बात है। हम लोग छोटी छोटी बातों को लेकर बैठ जाते हैं कि फ़लां मौक़े पर फ़लां शख़्स ने यह बात कही थी, फ़लां ने ऐसा किया था, अब हमेशा के लिये उसको दिल में बैठा लिया, और झगड़ा खड़ा हो गया। आज हमारे पूरे मुआशरे (समाज) को इस चीज़ ने तबाह कर दिया है। यह झगड़ा इन्सान के दीन को मूंड देता है, और इन्सान के बातिन को तबाह कर देता है। इसलिये ख़ुदा के लिये आपस में झगड़ों को ख़त्म कर दो और अगर दो मुसलमान भाईयों में झगड़ा देखो तो उनके दर्मियान सुलह कराने की पूरी कोशिश करो।

सुलह कराना सद्क़ा है

عن ابی هريرة رضی الله عنه قال: قال رسول الله صلی الله عليه وسلم: كل سلامی من الناس عليه صدقة كل يوم تطلع فيه الشمس،يعدل بين الاثنين صدقة، و يعين الرجل فی دابته فيحمله عليها او يرفع له عليها متا عه صدقة، والكلمةالطيبة صدقة، وبكل خطوة يمشيها الی الصلاة صدقة، ويميط الاذی عن الطريق صدقة۔ (مسند احمد جلد ٢ ص ٣١٦)

हज़रत अबू हुरैरह रज़ि. फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि इन्सान के जिस्म में जितने जोड़ हैं, हर जोड़ की तरफ़ से इन्सान के ज़िम्मे रोज़ाना एक सदक़ा करना वाजिब है। इसलिये कि हर जोड़ एक मुस्तक़िल नेमत है और हर नेमत पर शुक्र करना वाजिब है, और एक इन्सान के जिस्म में ३६० जोड़ होते हैं, इसलिये हर इन्सान के ज़िम्मे ३६० सदक़े वाजिब हैं। लेकिन अल्लाह तआला ने इस सदक़े को इतना आसान फ़रमाया कि इन्सान के छोटे छोटे अमल को सदक़े के अन्दर शुमार फ़रमा दिया है, ताकि किसी तरह ३६० की गिन्ती पूरी हो जाये। चुनांचे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम इरशाद फ़रमाते हैं, कि दो आदमियों के दरमियान झगड़ा और रंजिश थी, तुमने उन दोनों के दरमियान सुलह सफ़ाई करा दी, यह सुलह सफ़ाई कराना एक सदक़ा है। इसी तरह एक शख़्स अपने घोड़े पर या सवारी पर सवार होना चाह रहा था, लेकिन किसी वजह से उस से सवार नहीं हुआ जा रहा था, अब तुमने सवार होने में उसकी मदद कर दी, और उसको सहारा दे दिया, यह सहारा दे देना और सवार करा देना एक सदक़ा है। या एक शख़्स अपनी सवारी पर सामान लादना चाहता था, लेकिन उस बेचारे से लादा नहीं जा रहा था, अब तुमने उसकी मदद करते हुए वह सामान लदवा दिया, उसकी सवारी पर रख दिया यह भी एक सदक़ा है। इसी तरह किसी शख़्स से कोई अच्छा कलिमा (बात) कह दिया, जैसे कोई ग़मज़दा आदमी था, तुमने उसको कोई तसल्ली की बात कह दी और उसकी तसल्ली कर दी, या किसी से कोई बात ऐसी कह दी जिस से उस मुसलमान का दिल ख़ुश हो गया यह भी एक सदक़ा है। इसी तरह जब तुम नमाज़ के लिये मस्जिद की तरफ़ जा रहे हो तो हर क़दम जो मस्जिद की तरफ़ उठ रहा है, वह एक सदक़ा शुमार हो रहा है। इसी तरह रास्ते में कोई तक्लीफ़ देने वाली चीज़ पड़ी है, जिस से लोगों को तक्लीफ़ पहुंचने

का ख़तरा है, आपने उसको रास्ते से हटा दिया यह भी एक सदक़ा है। बहर हाल इस हदीस में सब से पहली चीज़ जिसको सदक़ा शुमार कराया है, वो है दो मुसलमानों के दरमियान सुलह कराना, इस से मालूम हुआ कि सुलह कराना अज्र व सवाब का बाजिब करने वाला है।

इस्लाम का करिश्मा

وعن ام كلثوم بنت عقبة بن ابى معيط رضى الله عنها، قالت: سمعت رسول الله صلى الله عليه وسلم يقول: ليس الكذاب الذى يصلح بين الناس فينمى خيرا اويقول خيرا (صحيح بخارى)

यह हज़रत उम्मे कुल्सूम रज़ियल्लाहु अन्हा एक सहाबिया हैं, और उक़्बा बिन अबी मुईत की बेटी हैं, और उक़्बा बिन अबी मुअ़ीत हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का जानी दुश्मन था। इन्तिहाई दरजे का मुश्रिक, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को तक्लीफ़ पहुंचाने वाले, जैसे अबू जहल और उमय्या बिन ख़लफ़ थे, जो कट्टर क़िस्म के मुश्रिक थे, यह भी उन्हीं में से था। और यह वह शख़्स था जिसके लिए हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बद् दुआ फ़रमायी। चुनांचे बद् दुआ करते हुए फ़रमायाः

اللهم سلط عليه كلبا من كلابك (فتح البارى جلد ؛)

ऐ अल्लाह, दरिन्दों में से किसी दरिन्दे को इस पर मुसल्लत फ़रमा दे। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की यह बद् दुआ क़ुबूल हुई, आख़िर कार एक शेर के ज़रिये इसका इन्तिक़ाल हुआ। तो एक तरफ़ बाप तो ऐसा इस्लाम का दुश्मन था, दूसरी तरफ़ उसकी बेटी हज़रत उम्मे कुल्सूम रज़ियल्लाहु अ़न्हा हैं, जिनको अल्लाह तआ़ला ने ईमान की दौलत अ़ता फ़रमायी और सहाबिया बन गयीं।

ऐसा शख़्स झूठा नहीं

बहर हाल हज़रत उम्मे कुल्सूम रज़ि. फ़रमाती हैं कि मैंने हुज़ूरे

अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को यह फ़रमाते हुए सुना कि जो शख़्स लोगों के दरमियान सुलह की ख़ातिर कोई अच्छी बात इधर से उधर पहुंचा देता है, या एक की बात दूसरे को इस अन्दाज़ से नक़ल करता है, कि उसके दिल में दूसरे की क़द्र पैदा हो, और नफ़रत दूर हो जाये, ऐसा शख़्स कज़्ज़ाब और झूठा नहीं है। मतलब यह है कि वह शख़्स ऐसी बात कह रहा है जो बज़ाहिर सच नहीं है, लेकिन वह बात इसलिए कह रहा है ताकि उसके दिल से दूसरे मुसलमान की बुराई निकल जाये, आपस के दिल का ग़ुबार दूर हो जाये और नफ़रतें ख़त्म हो जायें, इस मक़सद से अगर वह ऐसी बात कह रहा है तो ऐसा शख़्स झूठों में शुमार नहीं होगा।

खुला झूठ जायज़ नहीं

उलमा–ए–किराम ने फ़रमाया कि खुला झूठ बोलना तो जायज़ नहीं, अलबत्ता ऐसी गोल मोल बात करना जिसका ज़ाहिरी मतलब तो वाक़िए के ख़िलाफ़ है लेकिन दिल में ऐसे मायने मुराद ले लिये जो वाक़िए के मुताबिक़ थे, जैसे दो आदमियों के दरमियान नफ़रत और लड़ाई है, यह उसका नाम सुनने का रवादार नहीं वह इसका नाम सुनने का रवादार नहीं, अब एक शख़्स उनमें से एक के पास गया तो उसने दूसरे की शिकायत करनी शुरू कर दी कि वह तो मेरा ऐसा दुश्मन है, तो उस शख़्स ने कहा कि तुम तो उसकी बुराइयां बयान कर रहे हो हालांकि वह तुम्हारा बड़ा ख़ैर–ख़्वाह है, इसलिये कि मैंने ख़ुद सुना है कि तुम्हारे हक़ में दुआ कर रहा था। अब देखिये कि उसने यह दुआ करते हुए नहीं सुना था, मगर उसने दिल में यही मुराद लिया कि उसने यह दुआ करते हुए सुना था कि:

اللهم اغفر للمؤمنين

यानी ऐ अल्लाह तमाम मोमिनीन की मग़्फ़िरत फ़रमा। चूंकि यह भी मुसलमान था इसलिये यह भी उस दुआ में दाख़िल हो गया था। अब सामने वाला यह समझेगा कि ख़ास तौर पर मेरा नाम लेकर

दुआ कर रहा होगा, ऐसी बात कह देना झूठ में दाख़िल नहीं बल्कि इंशा अल्लाह इस पर भी अज्र व सवाब मिलेगा ।

ज़बान से अच्छी बात निकालो

और जब अल्लाह तआला का कोई बन्दा अल्लाह की रिज़ा की ख़ातिर दो मुसलमान भाइयों के दरमियान सुलह कराने के इरादे से निकलता है तो अल्लाह तआला उसके दिल में ऐसी बात डाल देते हैं कि उस से ऐसी बात कहो जिस से उसके दिल से दूसरे कि नफ़रत दूर हो जाये, ऐसी बात न कहो कि उनके दरमियान नफ़रत की आग तो पहले से लगी हुई है और अब आपने जाकर ऐसी बात सुना दी जिस ने आग पर तेल का काम किया' और जिसके नतीजे में नफ़रत दूर हो जाने के बजाए नफ़रत की आग और भड़क गई। यह इन्तिहाई दरजे की रज़ालत का काम है और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इन्तिहाई ना पसन्द है।

सुलह कराने की अहमियत

हज़रत शेख़ सादी रह. की मशहूर कहावत आपने सुनी होगी कि:

''दरोग़े मस्लिहत आमेज़ बेहतर अज़ रास्ती-ए-फ़ित्ना अंगेज़''

यानी ऐसा झूठ जिसके ज़रिये दो मुसलमानों के दरमियान मुसालहत मक़्सूद हो उस सच से बेहतर है जिस से फ़ितना पैदा हो। लेकिन उस झूठ से मुराद यह नहीं कि सरीह (खुला) झूठ बोल दिया जाए, बल्कि ऐसी बात कह दे जो दो मायने रखती हो। जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस क़िस्म के झूठ की इजाज़त दे दी तो आप इसी से अन्दाज़ा लगइये कि दो मुसलमानों के दरमियान झगड़ा ख़त्म कराने की किस क़द्र अहमियत है।

एक सहाबी का वाक़िआ़

عن عائشة رضی الله عنها قالت: سمع رسول الله صلى الله عليه وسلم صوت خصوم بالباب عالية اصواتهما، واذا احدهما يستوضع الاخر ويستر فقه فى شئى وهو يقول: والله لا افعل، فخرج عليهما رسول الله صلى الله

عليه وسلم فقال: اين المتالي على الله لايفعل المعروف ؟ فقال انا يا رسول الله ، فله اى ذلك احب۔ (صحيح بخارى)

हज़रत आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा फ़रमाती हैं कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम घर में तश्रीफ़ फ़रमा थे, इतने में बाहर से दो आदमियों के झगड़ने की आवाज़ सुनी, और झगड़ा इस बात पर था कि उनमें से एक ने दूसरे से क़र्ज़ लिया था, क़र्ज़ मांगने वाला दूसरे से क़र्ज़ का मुतालबा कर रहा था कि मेरा क़र्ज़ा वापस करो, जिस पर क़र्ज़ था वह यह कह रहा था कि इस वक़्त मेरे अन्दर सारा क़र्ज़ा अदा करने की गुन्जाइश नहीं है, तुम कुछ क़र्ज़ा ले लो, कुछ छोड़ दो, इस झगड़ने के अन्दर उन दोनों की आवाज़ें भी बुलन्द हो रही थीं और झगड़ने के दौरान उस क़र्ज़ ख़्वाह ने यह क़सम खा ली कि:

والله لا افعل

खुदा की क़सम मैं क़र्ज़ा कम नहीं करूंगा। इस दौरान हुज़ूरे पाक सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम भी घर से बाहर तश्रीफ़ ले आये और आकर आपने पूछा वह शख़्स कहां है जो अल्लाह की क़सम खा कर यह कह रहा है कि मैं नेक काम नहीं करूंगा? उस वक़्त वह शख़्स आगे बढ़ा और कहा कि मैं हूं ऐ अल्लाह के रसूल, और फिर फ़ौरन दूसरा जुमला यह कहा कि यह शख़्स जितना चाहे इस क़र्ज़ में से कम दे दे, मैं छोड़ने के लिये तैयार हूं।

सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम की हालत

ये थे सहाबा—ए—किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम कहां तो जज़्बात का यह आलम था कि आवाज़ें बुलन्द हो रही हैं, वह कम कराना चाहते थे तो यह कम करने के लिये तैयार नहीं थे, और कम न करने पर क़सम भी खा ली कि मैं कम नहीं करूंगा, उसके बाद न तो हुज़ूर सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उन सहाबी को क़र्ज़ा छोड़ने का हुक्म फ़रमाया, और न ही छोड़ने का मश्विरा दिया, बल्कि सिर्फ़

इतना फ़रमा दिया कि कहां है वह शख़्स जो यह क़सम खा रहा है कि मैं नेक काम नहीं करूंगा। बस इतनी बात सुनने के बाद वहीं ढीले पड़ गये और सारा जोश ठंडा पड़ गया, और झगड़ा ख़त्म हो गया। वजह यह थी कि हज़रात सहाबा–ए–किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के आगे इस क़द्र फरमांबर्दार थे कि जब आपकी ज़बान से यह जुमला सुन लिया तो उसके बाद मजाल नहीं थी कि आगे बढ़ जायें। अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से इस जज़्बे का कुछ हिस्सा हमें अ़ता फ़रमा दे, और तमाम मुसलमानों के दरमियान आपस के इख़्तिलाफ़ात और झगड़े ख़त्म फ़रमा दे, और तमाम मुसलमानों को एक दूसरे के हुक़ूक़ अदा करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमा दे, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد للّٰہ رب العالمین

बीमार की इयादत के आदाब

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

عَنِ الْبَرَآءِ بْنِ عَازِبٍ رَّضِيَ اللّٰهُ عَنْهُمَا قَالَ: اَمَرَنَا رَسُوْلُ اللّٰهِ ﷺ بِسَبْعٍ: بِعِيَادَةِ الْمَرِيْضِ وَاِتِّبَاعِ الْجَنَائِزِ وَتَشْمِيْتِ الْعَاطِسِ، وَنَصْرِ الضَّعِيْفِ، وَعَوْنِ الْمَظْلُوْمِ، وَاِفْشَاءِ السَّلَامِ، وَاِبْرَارِ الْمُقْسِمِ۔ (بخاری شریف)

सात बातें

हज़रत बरा बिन आज़िब रज़ि. फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हमें सात बातों का हुक्म दिया, नम्बर एक मरीज़ की इयादत करना (यानी बीमारी का हाल चाल पूछना) दूसरे जनाज़े के पीछे चलना, तीसरे छींकने वाले के "अल्हम्दु लिल्लाह" कहने के जवाब में "यर्हमुकल्लाह" कहना, चौथे कमज़ोर आदमी की मदद करना, पांचवें मज़्लूम की इमदाद करना, छठे सलाम को रिवाज देना, सातवे क़सम खाने वाले की क़सम को पूरा करने में मदद करना।

ये सातों चीज़ें जिनका हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इस हदीस में हुक्म फ़रमाया है बड़ी एहमियत रखती हैं, इसलिये एक मुसलमान की ज़िन्दगी के आदाब में से है कि वह इन बातों का एहतिमाम करे। इसलिये इन सातों चीज़ों को तफ़सील से बयान करता हूँ, अल्लाह तआ़ला हम सब को इन बातों पर सुन्नत के मुताबिक़ अमल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाये। आमीन

बीमार पुरसी एक इबादत

सब से पहली चीज़ जिसका हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हुक्म दिया है, वह है मरीज़ की इयादत करना, और बीमार की बीमार पुरसी करना। मरीज़ की इयादत करना यह मुसलमान के हुकूक़ में से भी है और यह ऐसा अ़मल है जिसको हम सब करते हैं। शायद ही दुनिया में कोई ऐसा शख़्स होगा जिसने कभी बीमार पुरसी न की हो, लेकिन एक बीमार पुरसी तो रस्म पूरी करने के लिये की जाती है कि अगर हम उस बीमार की इयादत के लिये न गये तो लोगों को शिकायत होगी, ऐसी सूरत में इन्सान दिल पर जब्र करके इयादत करने के लिये जाता है। इसलिये कि दिल में इख़्लास नहीं है, एक इयादत तो यह है, लेकिन हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम जिस इयादत का ज़िक्र फ़रमा रहे हैं वह इयादत वह है जिसका मक़्सद अल्लाह तआ़ला को राज़ी करने के अ़लावा कुछ और न हो, इख़्लास के साथ और अज्र व सवाब हासिल करने की नियत से इन्सान इयादत करे, हदीसों में जो इयादत के फ़ज़ाइल बयान किये गये हैं वे इसी इयादत पर मुरत्तब होते हैं।

सुन्नत की नियत से बीमार पुरसी करें

जैसे आप एक शख़्स की इयादत करने जा रहे हैं और दिल में यह ख़्याल है कि जब हम बीमार पड़ेंगे तो यह भी हमारी इयादत के लिये आयेगा। लेकिन अगर यह हमारी इयादत के लिये न आया तो फिर आइन्दा हम भी इसकी इयादत के लिये नहीं जायेंगे, हमें इस की इयादत की क्या ज़रूरत है, इसका मतलब यह है कि यह इयादत "बदले" के लिये हो रही है, रस्म पूरी करने के लिये हो रही है, ऐसी इयादत पर कोई सवाब नहीं मिलेगा, लेकिन जब इयादत करने से अल्लाह तआ़ला की रिज़ा मक़्सूद हो तो इस सूरत में आदमी यह नहीं देखता कि जब मैं बीमार हुआ था उस वक़्त यह मेरी इयादत के लिये आया था या नहीं? बल्कि वह यह सोचता है कि अगर यह नहीं

भी आया था तब भी मैं उसकी इयादत के लिये उसके पास जाऊंगा, क्योंकि हुज़ूर नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इयादत का हुक्म दिया है, इस से मालूम हो जायेगा कि यह इयादत सिर्फ़ अल्लाह के लिये की जा रही है, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत पूरी करने के लिये की जा रही है।

शैतानी हर्बे

यह शैतान हमारा बड़ा दुश्मन है इसने हमारी अच्छी ख़ासी इबादतों का मलियामेट कर रखा है, अगर हम उन इबादतों को सही नियत और सही इरादे से करें तो उन पर हमें अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से बड़ा अज्र व सवाब मिलेगा, और आख़िरत का बड़ा ज़ख़ीरा जमा हो जायेगा, लेकिन शैतान यह नहीं चाहता कि हमारे लिये आख़िरत में अज्र व सवाब का बड़ा ज़ख़ीरा जमा हो जाये, इसलिये वह हमारी बहुत सी इबादतों में हमारी नियतों को ख़राब करता रहता है, जैसे अ़ज़ीज़ों और रिश्तेदारों या दोस्त अह्बाब से मेल मुलाक़ात करना, उनके साथ अच्छा सुलूक करना, उनको हदिया या तोहफ़ा देना, ये सब बड़े अज्र व सवाब के काम हैं, और सब दीन का हिस्सा हैं और अल्लाह तआ़ला को बहुत महबूब हैं, और इन कामों पर अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से बड़े अज्र व सवाब के वादे हैं, लेकिन शैतान नियत को ख़राब कर देता है जिसके नतीजे में वह शख़्स यह सोचता है कि जो शख़्स मेरे साथ जैसा सुलूक करेगा मैं भी उसके साथ वैसा ही सुलूक करूंगा। जैसे फ़लां शख़्स के घर से मेरे घर कोई हदिया नहीं आया, मैं उसके घर क्यों हदिया भेजूं? जब मेरे यहां शादी हुई थी तो उसने कुछ नहीं दिया था मैं क्यों हदिया दूं? और फ़लां शख़्स ने क्योंकि हमारे यहां शादी के मौक़े पर तोहफ़ा दिया था इसलिये मैं भी उसकी शादी में ज़रूर तोहफ़ा दूंगा, जिसका नतीजा यह हुआ कि एक मुसलमान भाई को हदिया और तोहफ़ा देने का अ़मल जिसकी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बड़ी

फ़ज़ीलत बयान फ़रमायी थी, शैतान ने उसके अज्र व सवाब को ख़ाक में मिला दिया, और अब आपस में हदिये और तोहफ़े का लेन देन जो हो रहा है वह बतौर रस्म के हो रहा है, और बतौर "न्यौता" हो रहा है, यह सिला रहमी नहीं है।

सिला रहमी की हक़ीक़त

सिला रहमी वह है जो इस बात को देखे बग़ैर की जाये कि दूसरे ने मेरे साथ क्या सुलूक किया था, नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीमात पर क़ुर्बान जायें, आपने फ़रमाया कि:–

ليس الواصل بالمكافى لكن الواصل من اذاقطعت رحمه وصلها (بخارى شريف)

यानी" वह शख़्स सिला रहमी करने वाला नहीं है जो मुकाफ़ात करे और बदला दे और हर वक़्त इस नाप तौल में लगा रहे कि उसने मेरे साथ क्या सुलूक किया था और मैं उसके साथ क्या सुलूक करूं, बल्कि सिला रहमी करने वाला दर हक़ीक़त वह शख़्स है कि दूसरे शख़्स के रिश्ता तोड़ने के बावजूद यह उसके साथ सिला रहमी कर रहा है, या जैसे दूसरा शख़्स तो उसके लिये कभी कोई तोहफ़ा नहीं लाया, लेकिन यह उसके लिये तोहफ़ा लेकर जा रहा है, और इस नियत से लेजा रहा है कि तोहफ़ा देने का मतलब तो अल्लाह तआ़ला को राज़ी करना है, और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत पर अ़मल करना है, इसलिये दूसरा शख़्स हदिया दे या न दे मैं तो हदिया दूंगा, इसलिये कि मैं बदले का क़ायल नहीं हूं, मैं इसको दुरुस्त नहीं समझता, हक़ीक़त में ऐसा शख़्स सिला रहमी करने वाला है, इसलिये हर मामले में तराज़ू लेकर मत बैठ जाया करो कि उसने मेरे साथ क्या सुलूक किया था, जैसा उसने किया था मैं भी वैसा ही करूंगा, यह ग़लत है, बल्कि सिला रहमी को इबादत समझ कर अन्जाम देना चाहिये। जब आप नमाज़ पढ़ते हैं तो क्या उस वक़्त आपको यह ख़्याल आता है कि मेरा दोस्त तो नमाज़

नहीं पढ़ता इसलिये मैं भी नहीं पढ़ता, या मेरा दोस्त जैसी नमाज़ पढ़ता है मैं भी वैसी ही नमाज़ पढूं, नमाज़ के वक़्त यह ख़्याल नहीं आता इसलिये कि उसकी नमाज़ उसके साथ तुम्हारा अमल तुम्हारे साथ, बिल्कुल इसी तरह सिला रहमी भी एक इबादत है, अगर वह सिला रहमी की इबादत अन्जाम नहीं दे रहा है तो तुम तो इस इबादत को अन्जाम दो, और अल्लाह तआ़ला के हुक्म की इताअ़त करो। इसी तरह अगर वह तुम्हारी इयादत के लिये नहीं आ रहा है तो तुम तो उसकी इयादत के लिये जाओ, इसलिये कि इयादत करना भी एक इबादत है।

बीमार पुरसी की फ़ज़ीलत

यह इबादत भी ऐसी अ़ज़ीमुश्शान है कि एक हदीस में नबी करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमायाः—

"اِنَّ الْمُسْلِمَ اِذَا عَادَ اَخَاهُ الْمُسْلِمَ لَمْ يَزَلْ فِىْ خِرْفَةِ الْجَنَّةِ حَتّٰى يَرْجِعَ"

(مسلم شريف)

यानी जब एक मुसलमान दूसरे मुसलमान भाई की इयादत करता है, जितनी देर वह इयादत करता है वह मुसल्सल जन्नत के बाग़ में रहता है, जब तक वह वापस न आ जाये। एक दूसरी हदीस में हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमयाः—

"مَامِنْ مُسْلِمٍ يَعُوْدُ مُسْلِمًا غُدْوَةً اِلَّا صَلّٰى عَلَيْهِ سَبْعُوْنَ اَلْفَ مَلَكٍ حَتّٰى يُمْسِىَ وَاِنْ عَادَهٗ عَشِيَّةً اِلَّا صَلّٰى عَلَيْهِ سَبْعُوْنَ اَلْفَ مَلَكٍ حَتّٰى يُصْبِحَ وَكَانَ لَهٗ خَرِيْفٌ فِى الْجَنَّةِ" (ترمذی شریف)

यानी जब कोई मुसलमान बन्दा अपने मुसलमान भाई की इयादत करता है तो सुबह से लेकर शाम तक सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसकी मग़फ़िरत की दुआ़ करते रहते हैं, और अगर शाम को इयादत करता है तो शाम से लेकर सुबह तक सत्तर हज़ार फ़रिश्ते उसके हक़ में मग़फ़िरत की दुआ़ करते रहते हैं, और अल्लाह तआ़ला जन्नत में उसके लिये एक बाग़ मुताय्यन फ़रमा देते हैं।

सत्तर हज़ार फ़रिश्तों की दुआ हासिल करें

यह कोई मामूली अज्र व सवाब है? फ़र्ज़ करें कि घर के क़रीब एक पड़ौसी बीमार है, तुम उसकी इयादत के लिये चले गये और पांच मिन्ट के अन्दर इतने अ़ज़ीमुश्शान अज्र के दावेदार बन गये। क्या फिर भी यह देखोगे कि वह मेरी इयादत के लिये आया था या नहीं? अगर उसने यह सवाब हासिल नहीं किया, अगर उसने सत्तर हज़ार फ़रिश्तों की दुआएं नहीं लीं, अगर उसने जन्नत का बाग़ हासिल नहीं किया तो क्या तुम भी यह कहोगे कि मैं भी जन्नत का बाग़ हासिल नहीं करना चाहता, और मुझे भी सत्तर हज़ार फ़रिश्तों की दुआओं की ज़रूरत नहीं, इसलिये कि उसे ज़रूरत नहीं। देखियेः इस अज्र व सवाब को अल्लाह तआ़ला ने कितना आसान बना दिया है, लूट का मामला है। इसलिये इयादत के लिये जाओ, चाहे दूसरा शख़्स तुम्हारी इयादत के लिये आये या न आये।

अगर बीमार से नाराज़गी हो तो

बल्कि अगर वह बीमार ऐसा शख़्स है जिसकी तरफ़ से तुम्हारे दिल में कराहियत है, उसकी तरफ़ से दिल खुला हुआ नहीं है, तबीयत को उस से मुनासबत नहीं है, फिर भी इयादत के लिये जाओगे तो इन्शा अल्लाह दोहरा सवाब मिलेगा, एक इयादत करने का सवाब और दूसरे एक ऐसा मुसलमान जिसकी तरफ़ से दिल में ना गवारी थी उस ना गवारी के होते हुए तुमने उसके साथ हमदर्दी का मामला किया, इस पर अलग सवाब मिलेगा, इसलिये मरीज़ की इयादत मामूली चीज़ नहीं है, ख़ुदा के लिये रस्म बना कर इसके सवाब को ज़ाया मत करो, सिर्फ़ इस नियत से इयादत करो कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का हुक्म है, आपकी सुन्नत है, और इस पर अल्लाह तआ़ला अज्र अ़ता फ़रमाते हैं।

मुख़्तसर इयादत करें

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इयादत के भी

कुछ आदाब बयान फ़रमाये हैं, ज़िन्दगी का कोई शोबा ऐसा नहीं है जिसकी तफ़सील आपने बयान न फ़रमायी हो, ऐसे ऐसे आदाब आप बता कर तशरीफ़ ले गये जिनको आज हमने भुला दिया और उन आदाब को ज़िन्दगी से ख़ारिज कर दियां, जिसका नतीजा यह है कि यह ज़िन्दगी अज़ाब बनी हुई है, अगर हम इन आदाब और तालीमात पर अमल करना शुरू कर दें तो ज़िन्दगी जन्नत बन जाये, चुनांचे इयादत के आदाब बयान करते हुए आपने फ़रमायाः–

"مَنْ عَادَ مِنْكُمْ فَلْيُخَفِّفْ"

यानी जब तुम किसी की इयादत करने जाओ तो हल्की फुल्की इयादत करो, यानी ऐसा न हो कि हमदर्दी की ख़ातिर इयादत करने जाओ और जाकर उस मरीज़ को तक्लीफ़ पहुंचाओ, बल्कि वक़्त देख लो कि यह वक़्त इयादत के लिये मुनासिब है या नहीं? यह वक़्त उसके आराम करने का तो नहीं है? या इस वक़्त वह घर वालों के पास तो नहीं होगा? इस वक़्त में उसको पर्दा वग़ैरह का इन्तिज़ाम कराने में तक्लीफ़ तो नहीं होगी? इसलिये मुनासिब वक़्त देख कर इयादत के लिये जाओ।

यह तरीक़ा सुन्नत के ख़िलाफ़ है

और जब इयादत के लिये जाओ तो मरीज़ के पास थोड़ा बैठो, इतना ज़्यादा मत बैठो कि उसको गरानी होने लगे, हुज़ूरे अक़्दस सल्ल० से ज़्यादा कौन इन्सानियत से वाक़िफ़ हो सकता है, देखिये बीमार की तब्अी ख़्वाहिश यह होती है कि वह ज़रा बे तकल्लुफ़ रहे, हर काम बिला तकल्लुफ़ अन्जाम दे, लेकिन जब कोई मेहमान आ जाता है तो उसकी वजह से तबीयत में तकल्लुफ़ आ जाता है, जैसे वह पांव फैला कर लेटना चाहता है, मेहमान के एहतिराम की वजह से नहीं लेट सकता, या अपने घर वालों से कोई बात करना चाहता है मगर उसकी वजह से नहीं कर सकता, अब हुआ यह कि तुम तो इयादत की नियत से सवाब कमाने के लिये गये लेकिन तुम्हारी वजह

से वह बीमार मशक़्क़त में पड़ गया, इसलिये हुज़ूरे अक़्दस सल्ल० ने फ़रमाया है कि इयादत में ऐसा तरीक़ा इख़्तियार मत करो की जिसकी वजह से उस मरीज़ पर परेशानी हो, बल्कि हल्की फुल्की इयादत करो, मरीज़ के पास जाओ, मस्नून तरीक़े से उसका हाल पूछो और जल्दी से रुख़्सत हो जाओ ताकि उस पर गरानी न हो, यह न हो कि उसके पास जाकर जम कर बैठ गये, और हिलने का नाम ही नहीं लेते। अब वह बेचारा न तो बे तकल्लुफ़ी से कोई काम अन्जाम दे सकता है, न घर वालों को अपने पास बुला सकता है, मगर आप उसकी हमदर्दी में घंटों उसके पास बैठे हुए हैं। यह तरीक़ा सुन्नत के ख़िलाफ़ है, ऐसी इयादत से सवाब के बजाए उल्टा गुनाह होने का अन्देशा है।

हज़रत अ़बदुल्लाह बिन मुबारक रह. का एक वाक़िआ

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. जो बहु ऊंचे दरजे के सूफ़िया में से हैं, मुहद्दिस भी हैं, फ़क़ीह भी हैं, अल्लाह तआ़ला ने उनको बहुत से कमालात अ़ता फ़रमाये थे। एक मर्तबा बीमार हो गये, अब चूंकि अल्लाह तआ़ला ने बहुत ऊंचा मक़ाम अ़ता फ़रमाया था इसलिये आप से मुहब्बत करने वाले लोग भी बहुत थे, इसलिये बीमारी के दौरान इयादत करने वालों का तांता बंधा हुआ था, लोग आ रहे हैं और ख़ैरियत पूछ कर वापस जा रहे हैं, लेकिन एक साहिब ऐसे आये जो वहीं जम कर बैठ गये और वापस जाने का नाम ही नहीं लेते थे, हज़रत अ़बदुल्लाह बिन मुबारक रह. की ख़्वाहिश यह थी कि यह साहिब वापस जायें तो मैं अपने ज़रूरी काम बिला तकल्लुफ़ अन्जाम दूं और घर वालों को अपने पास बुलाऊं, मगर वह साहिब तो इधर उधर की बातें करने में लगे रहे, जब बहुत देर गुज़र गई और वह शख़्स जाने का नाम ही नहीं ले रहा था तो आख़िर हज़रत अ़बदुल्लाह बिन मुबारक रह. ने उस शख़्स से फ़रमाया कि भाई यह बीमारी तो अपनी जगह थी मगर इयादत करने वालों ने

अलग परेशान कर रखा है, कि न मुनासिब वक़्त देखते हैं और न आराम का ख़्याल करते हैं और इयादत के लिये आ जाते हैं, उस शख़्स ने जवाब में कहा कि हज़रत यक़ीनन इयादत करने वालों की वजह से आपको तक्लीफ़ हो रही है, अगर आप इजाज़त दें तो मैं दरवाज़े को बन्द कर दूं ताकि कोई आईन्दा इयादत करने को न आये। वह अल्लाह का बन्दा फिर भी नहीं समझा कि मेरी वजह से हज़रते वाला को तक्लीफ़ हो रही है, आख़िर कार हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. ने फ़रमाया कि हाँ दर्वाज़ा तो बन्द कर दो मगर बाहर जाकर बन्द कर दो। बाज़ लोग ऐसे होते हैं कि उनको यह एहसास ही नहीं होता कि हम तक्लीफ़ पहुंचा रहे हैं, बल्कि यह समझते हैं कि हम तो इनकी ख़िद्मत कर रहे हैं।

इयादत के लिये मुनासिब वक़्त का चयन करो

इसलिये अपना शौक़ पूरा करने का नाम इयादत नहीं और न इयादत का यह मक़्सद है कि उसके ज़रिये बर्कत हासिल हो, यह नहीं कि बड़ी मुहब्बत से इयादत को गये और जाकर शैख़ को तक्लीफ़ पहुंचा दी। मुहब्बत के लिये अ़क़्ल ज़रूरी है यह नहीं कि इज़्हार तो मुहब्बत का कर रहे हैं और हक़ीक़त में तक्लीफ़ पहुंचायी जा रही है, ऐसी मुहब्बत मुहब्बत नहीं बल्कि वह दुश्मनी है, वह नादान दोस्त की मुहब्बत है, इसलिये इयादत में इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि जिस शख़्स की इयादत के लिये गये हो उसको तक्लीफ़ न हो, या जैसे आप रात को बारह बजे इयादत के लिये पहुंच गये जो उसके सोने का वक़्त है, या दोपहर को आराम के वक़्त पहुंच गये और उसको परेशान कर दिया। इसलिये अ़क़्ल से काम लो और सोच समझ कर जाओ कि तुम्हारे जाने से उसको तक्लीफ़ न पहुंचे, तब तो इयादत सुन्नत है वर्ना फिर वह रस्म है। बहर हाल हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इयादत का पहला अदब यह बयान फ़रमाया कि हल्की फुल्की इयादत करो।

बे तकल्लुफ़ दोस्त ज़्यादा देर बैठ सकता है

अलबत्ता बाज़ लोग ऐसे बे तकल्लुफ़ होते हैं कि उनके ज़्यादा देर बैठने से बीमार को तक्लीफ़ के बजाए तसल्ली होती है और राहत हासिल होती है, तो ऐसी सूरत में ज़्यादा देर बैठने में कोई हरज नहीं।

मेरे वालिद माजिद रह. के एक बे तकल्लुफ़ और मुहब्बत करने वाले उसताद हज़रत मियां असग़र हुसैन साहिब रह. एक मर्तबा बीमार हो गये, तो हज़रत वालिद साहिब उनकी इयादत के लिये तशरीफ़ ले गये, सुन्नत तरीक़े से इयादत की, जाकर सलाम किया ख़ैरियत मालूम की और दुआ की और दो चार मिन्ट बाद जाने की इजाज़त मांगी तो मियां असग़र हुसैन साहिब रह. ने फ़रमाया कि मियां यह जो तुमने उसूल पढ़ा है कि:

"مَنْ عَادَ مِنْكُمْ فَلْيُخَفِّفْ"

(यानी जो शख़्स इयादत करे वह हल्की फुल्की इयादत करे) क्या यह मेरे लिये ही पढ़ा था? यह क़ायदा मेरे ऊपर आज़मा रहे हो? यह उसूल उस वक़्त नहीं है कि बैठने वाले के बैठने से मरीज़ को आराम और राहत मिले, तसल्ली हो, इसलिये जल्द वापस जाने की कोई ज़रूरत नहीं, आराम से बैठ जाओ। चुनांचे हज़रत वालिद साहिब बैठ गये। बहर हाल हर जगह के लिये एक ही नुस्ख़ा नहीं होता, बल्कि जैसा मौक़ा हो और जैसे हालात हों वैसे ही अमल करना चाहिये, इसलिये अगर आराम व राहत पहुंचाने के लिये ज़्यादा बैठेगा तो इन्शा अल्लाह ज़्यादा सवाब हासिल होगा, इसलिये कि असल मक़सद तो उसको राहत पहुंचाना और तक्लीफ़ से बचाना है।

मरीज़ के हक़ में दुआ करो

इयादत करने का दूसरा अदब यह है कि जब आदमी किसी की इयादत के लिये जाये तो पहले मुख़्तसर तौर पर उसका हाल पूछे कि कैसी तबीयत है? जब वह मरीज़ तक्लीफ़ बयान करे तो उसके

हक़ में दुआ करे, क्या दुआ करे? यह भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हमें सिखा गये, चुनांचे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इन अल्फ़ाज़ से दुआ दिया करते थेः–

"لَابَأسَ طَهُوْرٌاِنْ شَآءَ اللّٰهُ" (صحیح بخاری)

यानी इस तक्लीफ़ से आपका कोई नुक़सान नहीं, आपके लिये यह तक्लीफ़ इन्शा अल्लाह गुनाहों से पाक होने का ज़रिया बनेगी''। इस दुआ में एक तरफ़ तो मरीज़ को तसल्ली दे दी कि तक्लीफ़ तो आपको ज़रूर है लेकिन यह तक्लीफ़ गुनाहों से पाकी और आख़िरत के सवाब का ज़रिया बनेगी। दूसरी तरफ़ यह दुआ भी है कि ऐ अल्लाह इस तक्लीफ़ को इसके हक़ में अज्र व सवाब का सबब बना दीजिये और गुनाहों की मग़्फ़िरत का ज़रिया बना दीजिये।

''बीमारी'' गुनाहों से पाकी का ज़रिया है

यह हदीस तो आपने सुनी होगी कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि किसी मुसलमान को जो कोई तक्लीफ़ पहुंचती है यहां तक कि अगर उसके पांव में कांटा भी चुभता है तो अल्लाह तआ़ला उस तक्लीफ़ के बदले में कोई न कोई गुनाह माफ़ फ़रमाते हैं और उसका दर्जा बुलन्द फ़रमाते हैं। एक और हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः

"الحمی من فیح جهنم" (بخاری شریف)

यानी यह बुख़ार जहन्नम की गरमी का एक हिस्सा है।

उलमा–ए–किराम ने इस हदीस की बहुत सी तशरीहात की हैं, कुछ उलमा ने इसका जो मतलब बयान फ़रमाया है उसकी बाज़ हदीसों से ताईद भी होती है, वो यह कि बुख़ार की गरमी इन्सान के लिये जहन्नम की गरमी का बदला हो गयी है, यानी गुनाहों की वजह से आख़िरत में जहन्नम की जो गरमी बर्दाशत करनी पड़ती उसके बदले में अल्लाह तआ़ला ने यह गरमी दे दी ताकि जहन्नम के अन्दर

उन गुनाहों की गरमी बर्दाश्त न करनी पड़े, बल्कि इस बुख़ार की वजह से वे गुनाह दुनिया ही में धुल जायें और माफ़ हो जायें। इसकी ताईद उस दुआ से होती है जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम इयादत के वक़्त किया करते थे कि:–

"لَا بَأْسَ طَهُوْرٌ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ"

यानी कोई ग़म न करो यह बुख़ार तुम्हारे गुनाहों से पाकी का ज़रिया और सबब बन जायेगा।

शिफ़ा हासिल करने का एक अ़मल

इयादत करने का तीसरा अदब यह है कि अगर मौक़ा मुनासिब हो और अगर इस अ़मल के ज़रिये मरीज़ को तक्लीफ़ न हो तो यह अ़मल कर ले कि मरीज़ की पैशानी पर हाथ रख कर यह दुआ पढ़े:–

"اَللّٰهُمَّ رَبَّ النَّاسِ مُذْهِبَ الْبَاسِ اِشْفِ اَنْتَ الشَّافِیْ لَاشَافِیَ اِلَّا اَنْتَ شِفَآءً لَّا يُغَادِرُ سُقْمًا" (ترمذی شریف)

यानी "अल्लाह जो तमाम इन्सानों के रब हैं तक्लीफ़ को दूर करने वाले हैं, इस बीमार को शिफ़ा अ़ता फ़रमाइए, आप शिफ़ा देने वाले हैं आपके अ़लावा कोई शिफ़ा देने वाला नहीं। और ऐसी शिफ़ा अ़ता फ़रमायें जो किसी बीमारी को न छोड़े"।

यह दुआ जिसको याद न हो उसको चाहिये कि इसको याद कर ले और फिर यह आ़दत बना ले कि जिस बीमार के पास जाये मौक़ा देख कर यह दुआ ज़रूर पढ़ ले।

हर बीमारी से शिफ़ा

एक और दुआ भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से मनकूल है जो इस से भी ज़्यादा आसान और मुख़्तसर है, इसको याद करना भी आसान है, और इसका फ़ायदा भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने बड़ा अ़ज़ीम बयान फ़रमाया है, वो दुआ यह है:–

"اَسْئَلُ اللّٰهَ الْعَظِيْمَ رَبَّ الْعَرْشِ الْعَظِيْمِ اَنْ يَّشْفِيَكَ" (ابوداؤد شریف)

यानी "मैं अज़्मत वाले अल्लाह और अज़ीम अर्श के मालिक से दुआ करता हूं कि वह तुमको शिफ़ा अता फ़रमा दे"।

हदीस में है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इर्शाद फ़रमाया कि जो मुसलमान बन्दा दूसरे मुसलमान भाई की इयादत के वक़्त सात मर्तबा यह दुआ करे तो अगर उस बीमार की मौत का वक़्त नहीं आया होगा तो फिर इस दुआ की बर्कत से अल्लाह तआला उसको सेहत अता फ़रमा देंगे, हां अगर किसी की मौत का ही वक़्त आ गया तो उसको कोई नहीं टला सकता।

इयादत के वक़्त नुक़्ता-ए-नज़र बदल लो

और इन दुआओं के पढ़ने में तीन तरह से सवाब हासिल होता है, एक सवाब तो इस बात का मिलेगा कि आपने मरीज़ की इयादत के दौरान हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत पर अमल किया और वे अल्फ़ाज़ कहे जो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम कहा करते थे, दूसरे एक मुसलमान भाई के साथ हमदर्दी करने का सवाब हासिल होगा, तीसरे उसके हक़ में दुआ करने का सवाब हासिल होगा, इसलिये कि दूसरे मुसलमान भाई के लिये दुआ करना अज्र व सवाब का सबब है, गोया कि इस छोटे से अमल के अन्दर तीन सवाब जमा हैं, इसलिये मरीज़ की इयादत तो हम सब करते ही हैं लेकिन इयादत के वक़्त ज़रा नुक़्ता–ए–नज़र बदल लो और इत्तिबा–ए–सुन्नत की नियत कर लो, और अल्लाह तआला को राज़ी करने की नियत कर लो, और इयादत के जो आदाब हैं उन पर अमल कर लो, यानी मुख़्तसर वक़्त के लिये इयादत करो, और इयादत के वक़्त हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बताई हुई दुआयें पढ़ो तो इन्शा अल्लाह इयादत का यह मामूली सा अमल अज़ीम इबादत बन जायेगा। अल्लाह तआला हम सब को इस पर अमल करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

दीन किस चीज़ का नाम है

हमारे हज़रत डाक्टर अब्दुल हई साहिब रह. एक बड़े काम की बात बयान फ़रमाते थे, दिल पर नक़्श करने के क़ाबिल है, फ़रमाते थे कि दीन सिर्फ़ नुक़्ता-ए-नज़र की तब्दीली का नाम है, सिर्फ़ ज़रा सा नुक़्ता-ए-नज़र बदल लो तो यही दुनिया दीन बन जायेगी, यही सब काम जो तुम अब तक अन्जाम दे रहे थे वे सब इबादत बन जायेंगे, और अल्लाह तआ़ला की रिज़ा के काम बन जायेंगे शर्त यह है कि दो काम कर लो, एक नियत दुरुस्त कर लो, दूसरे उसको तरीक़ा-ए-सुन्नत के मुताबिक़ अन्जाम दे दो, बस इतना करने से वही काम दीन बन जायेगा। और बुज़ुर्गों के पास जाने से यही फ़ायदा हासिल होता है कि वे इन्सान के नुक़्ता-ए-नज़र को बदल देते हैं, सोच का अन्दाज़ बदल देते हैं और उसके बदले में इन्सान के आमाल और कामों का रुख़ सही हो जाता है, पहले वह दुनिया का काम था और अब वह दीन का काम बन जाता है और इबादत बन जाता है।

इयादत के वक़्त हदिया ले जाना

मरीज़ की इयादत के मौक़े पर एक और रस्म हमारे यहां जारी है, वह यह कि बाज़ लोग समझते हैं कि जब इयादत के लिये जायें तो कोई हदिया तोहफ़ा ज़रूर लेकर जाना चाहिये, जैसे फल फ्रूट या बिस्कुट वग़ैरह, और इसको इतना ज़रूरी समझ लिया गया है कि बाज़ लोग जब तक कोई हदिया लेकर जाने की गुंजाईश नहीं होती इयादत के लिये नहीं जाते, और दिल में यह ख़्याल होता है कि अगर ख़ाली हाथ चले गये तो वह मरीज़ या मरीज़ के घर वाले क्या सोचेंगे कि ख़ाली हाथ इयादत के लिये आ गये। यह ऐसी रस्म है कि जिसकी वजह से शैतान ने हमें इयादत के अज़ीम सवाब से महरूम कर दिया है, हालांकि इयादत के वक़्त कोई हदिया या तोहफ़ा लेकर जाना न सुन्नत है न फ़र्ज़ न वाजिब, फिर क्यों हमने

इसको अपने ऊपर लाज़िम कर लिया। खुदा के लिये इस रस्म को छोड़ दो और इसकी वजह से इयादत के फ़ज़ाइल और उस पर मिलने वाले अज्र व सवाब से महरूम मत हो जाओ, अल्लाह तआला हम सब को दीन की सही समझ अता फ़रमाये और हर काम सुन्नत के मुताबिक़ करने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये, आमीन।

बहर हाल इस हदीस में जिन सात चीज़ों का ज़िक्र किया गया है उनमें से यह पहली चीज़ का बयान था, बाक़ी चीज़ों का बयान इन्शा अल्लाह आइन्दा जुमा में अर्ज़ करूंगा।

واٰخردعوانا ان الحمد للّٰہ رب العالمين

सलाम करने के आदाब

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْماً كَثِيْرًا كَثِيْرًا اَمَّا بَعْدُ:

"عن براء بن عازب رضی اللّٰه تعالی عنه قال: امرنا رسول اللّٰه صلی اللّٰه علیه وسلم بسبع: بعیادة المریض، واتباع الجنائز، وتشیمت العاطس، ونصر الضعیف، وعون المظلوم، وافشاء السلام، وابرار المقسم" (بخاری شریف)

सात बातों का हुक्म

हज़रत बरा बिन आज़िब रज़ि. फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हमें सात बातों का हुक्म दिया है। नम्बर एक: मरीज़ की इयादत करना, नम्बर दो: जनाज़ों के पीछे चलना, नम्बर तीन: छींकने वाले के अल्हम्दु लिल्लाह कहने के जवाब में यर्हमुकल्लाह कहना, नम्बर चार: कमज़ोर आदमी की मदद करना, नम्बर पांच: मज़्लूम की इम्दाद करना, नम्बर छह: सलाम को रिवाज देना, नम्बर सात: क़सम खाने वाले की क़सम को पूरा करने में सहयोग करना।

इन सात में से अल्हम्दु लिल्लाह पांच चीज़ों का बयान हो चुका, छठी चीज़ है सलाम को रिवाज देना, और आपस में एक दूसरे से मुलाक़ात के वक़्त सलाम करना। सलाम करने का तरीक़ा अल्लाह तआला ने हमारे लिये ऐसा मुक़र्रर फ़रमाया है जो सारी दूसरी क़ौमों से बिल्कुल जुदा और अलग है। हर क़ौम का यह दस्तूर है कि जब वे आपस में मुलाक़ात करते हैं तो कोई न कोई लफ़्ज़ ज़रूर इस्तेमाल करते हैं। कोई "हैलो" कहता है, कोई "गुड मार्निंग" कहता

है, कोई "गुड इवनिंग" कहता है, कोई नमस्ते कहता है, कोई "नमस्कार" कहता है। गोया कि हर क़ौम वाले कोई न कोई लफ़्ज़ इस्तेमाल करते हैं। लेकिन अल्लाह जल्ल जलालुहू और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हमारे लिए जो लफ़्ज़ तजवीज़ फ़रमाया है वह तमाम अल्फ़ाज़ से नुमायां और अलग है, वह है "अस्सलामु अलैकुम व रह्मतुल्लाहि व ब-रकातुहू"

सलाम करने का फ़ायदा

देखिए, अगर आपने किसी से मुलाक़ात के वक़्त "हैलो" कह दिया तो आपके इस लफ़्ज़ से उसको क्या फ़ायदा हुआ? दुनिया का कोई फ़ायदा हुआ या आख़िरत का कोई फ़ायदा हुआ? ज़ाहिर है कि कोई फ़ायदा नहीं हुआ। लेकिन अगर आपने मुलाक़ात के वक़्त यह अल्फ़ाज़ "अस्सलामु अलैकुम व रह्मतुल्लाहि व ब-रकातुहू" जिसका तर्जुमा यह है कि "तुम पर सलामती हो और अल्लाह की रहमतें और बर्कतें हों" तो इन अल्फ़ाज़ से यह फ़ायदा हुआ कि आपने मुलाक़ात करने वाले को तीन दुआयें दे दीं। और अगर आपने किसी को "गुड मार्निंग" या "गुड इवनिंग" कहा यानी सुबह बख़ैर, या शाम बख़ैर तो अगर इसको दुआ के मायने पर महमूल कर लें तो इस सूरत में आपने जो उसको दुआ दी वह सिर्फ़ सुबह और शाम की हद तक महदूद है, कि तुम्हारी सुबह अच्छी हो जाए, या तुम्हारी शाम अच्छी हो जाए। लेकिन इस्लाम ने हमें जो कलिमा सिखाया, वह ऐसा जामे कलिमा है कि अगर एक मर्तबा भी किसी मुख़्लिस मुसलमान का सलाम और दुआ हमारे हक़ में अल्लाह की बारगाह में क़ुबूल हो जाए तो इन्शा अल्लाह सारी गन्दगी हम से दूर हो जायेगी, और दुनिया व आख़िरत की कामयाबी हासिल हो जायेगी। यह नेमत आपको दुनिया की दूसरी क़ौमों में नहीं मिलेगी।

सलाम अल्लाह का अतीया है

हदीस शरीफ़ में आता है कि जब अल्लाह तआला ने हज़रत

आदम अलै० को पैदा फ़रमाया तो अल्लाह तआला ने उनसे फ़रमाया कि जाओ और वह फ़रिश्तों की जो जमाअत बैठी है उसको सलाम करो और वे फ़रिश्ते जो जवाब दें उसको सुनना, इसलिये कि वह तुम्हारा और तुम्हारी औलाद का सलाम होगा। चुनांचे हज़रत आदम अलै० ने जाकर सलाम किया "अस्सलामु अलैकुम" तो फ़रिश्तों ने जवाब में कहा "व अलैकुमुस्सलाम व रह्मतुल्लाहि" चुनांचे फ़रिश्तों ने लफ़्ज़ "रहमतुल्लाहि" बढ़ा कर जवाब दिया। यह नेमत अल्लाह तआला ने हमें इस तरह अता फ़रमाई। अगर ज़रा ग़ौर करें तो यह इतनी बड़ी नेमत है कि इसका हद व हिसाब नहीं। अब इस से ज़्यादा हमारी बद नसीबी क्या होगी कि इस आला तरीन कलिमे को छोड़ कर हम अपने बच्चों को "गुड मार्निंग" और गुड इवनिंग" सिखाएं और दूसरी कौमों की नक़्क़ाली करें। इस से ज़्यादा ना क़दरी और ना शुक्री और महरूमी और क्या होगी। (बुख़ारी शरीफ़)

सलाम करने का अज्र व सवाब

अफ़्ज़ल तरीक़ा यह है कि मुलाक़ात के वक़्त पूरा सलाम किया जाए। यानी "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू" सिर्फ़ "अस्सालमु अलैकुम" कह दिया तो तब भी सलाम हो जायेगा लेकिन तीन जुम्ले बोलने में ज़्यादा अज्र व सवाब है। हदीस शरीफ़ में आता है कि एक मर्तबा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मज्लिस में तशरीफ़ फ़रमा थे, एक सहाबी तशरीफ़ लाए और कहाः "अस्सलामु अलैकुम" आपने उनके सलाम का जवाब दिया, और फ़रमायाः "दस" उसके बाद दूसरे सहाबी आए और आकर सलाम किया, "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह" आपने उनके सलाम का जवाब दिया और फ़रमायाः "बीस" उसके बाद तीसरे सहबी आए और आकर सलाम किया, "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू" आपने उनके सलाम का जवाब दिया और फ़रमायाः "तीस"। आपका मतलब यह था कि "अस्सलामु अलैकुम" कहने में इन्सान को दस नेकियों

का सवाब मिलता है, और "अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाह" कहने में बीस नेकियों का सवाब मिलता है, और "अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाहि व ब–रकातुहू" कहने में तीस नेकियों का सवाब मिलता है। अगरचे सलाम की सुन्नत सिर्फ़ "अस्सलामु अ़लैकुम" कहने से अदा हो जाती है। देखिए इन अल्फ़ाज़ में दुआ भी है और अज्र व सवाब अलग है। (अबू दाऊद शरीफ़)

और जब सलाम किया जाए तो साफ़ अल्फ़ाज़ से सलाम करना चाहिए, अल्फ़ाज़ बिगाड़ करके सलाम नहीं करना चाहिए। बाज़ लोग इस तरह सलाम करते हैं कि जिसकी वजह से पूरी तरह समझ में नहीं आता कि क्या अल्फ़ाज़ कहे? इसलिये पूरी तरह वाज़ेह करके "अस्सलामु अ़लैकुम" कहना चाहिए।

सलाम के वक़्त यह नियत कर लें

एक बात में और ग़ौर कीजिए कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हमें जो कलिमा तल्क़ीन फ़रमाया वह है "अस्सलामु अ़लैकुम" जो जमा का सीग़ा है। "अस्सलामु अ़लै–क" नहीं फ़रमाया, इसलिये कि "अस्सलामु अ़लै–क" के मायने हैं: तुझ पर सलामती हो, और अस्सलामु अ़लैकुम" के मायने हैं कि तुम पर सलामती हो। इसकी एक वजह तो यह है कि जिस तरह हम लोग अपनी गुफ़्तगू में "तू" के बजाए "तुम" या "आप" के लफ़्ज़ से ख़िताब से करते हैं, जिस के ज़रिये मुख़ातब की ताज़ीम मक़्सूद होती है, इसी तरह "अस्सलामु अ़लैकुम" में जमा का लफ़्ज़ मुख़ातब की ताज़ीम के लिए लाया गया है।

लेकिन बाज़ उलमा ने इसकी वजह यह बयान फ़रमाई है कि इस लफ़्ज़ से एक तो मुख़ातब की ताज़ीम मक़्सूद होती है, दूसरे यह कि जब तुम किसी को सलाम करो तो सलाम करते वक़्त यह नियत करो कि मैं तीन अफ़राद पर सलाम करता हूं। एक इस शख़्स को और दो उन फ़रिश्तों को सलाम करता हूं जो इसके साथ हर वक़्त

रहते हैं, जिनको "किरामन् कातिबीन" कहा गया है। एक फ़रिश्ता इन्सान की नेकियां लिखता है, दूसरा फ़रिश्ता उसकी बुराइयां लिखता है, इसलिये सलाम करते वक़्त उनकी नियत भी कर लो, ताकि तुम्हारा सलाम तीन अफ़राद को हो जाए। और अब इन्शा अल्लाह तीन अफ़राद को सलाम करने का सवाब मिल जाएगा। और जब तुम फ़रिश्तों को सलाम करोगे तो वे तुम्हारे सलाम का ज़रूर जवाब देंगे और इस तरह उन फ़रिश्तों की दुआएं तुम्हें हासिल हो जायेंगी जो अल्लाह तआला की मासूम मख़्लूक़ हैं।

नमाज़ में सलाम फेरते वक़्त की नियत

इसी वजह से बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि नमाज़ के अन्दर जब आदमी सलाम फेरे तो दाहिनी तरफ़ सलाम फेरते वक़्त यह नियत कर ले कि मेरे दायें जितने मुसलमान और जितने फ़रिश्ते हैं उन सब पर सलामती भेज रहा हूं। और जब बायीं जानिब सलाम फेरे तो उस वक़्त यह नियत कर ले कि मेरी बायीं जानिब जितने मुसलामन और जितने फ़रिश्ते हैं, उन सब पर सलामती भेज रहा हूं। और फिर यह मुम्किन नहीं है कि तुम फ़रिश्तों को सलाम करो और वे जवाब न दें, वे ज़रूर जवाब देंगे, और इस तरह उनकी दुआयें तुम्हें हासिल हो जायेंगी। लेकिन हम लोग बे ख़्याली में सलाम फेर देते हैं और नियत नहीं करते, जिसकी वजह से इस अज़ीम फ़ायदे और सवाब से महरूम रह जाते हैं।

जवाब सलाम से बढ़ कर होना चाहिए

सलाम की शुरूआत करना अज्र व सवाब का सबब और सुन्नत है। और सलाम का जवाब देना वाजिब है, कुरआने करीम का इरशाद है:

"وَاِذَا حُيِّيْتُمْ بِتَحِيَّةٍ فَحَيُّوْا بِاَحْسَنَ مِنْهَا اَوْرُدُّوْهَا"

फ़रमाया कि जब तुम्हें सलाम किया जाए तो तुम उसके सलाम से बढ़ कर जवाब दो, या कम से कम वैसा जवाब दो जैसा उसने

सलाम किया। जैसे किसी ने "अस्सलामु अलैकुम" कहा तो तुम "व अलैकुमुस्सलाम व रहमतुल्लाहि ब–रकातुहू" कहो ताकि जवाब सलाम से बढ़ कर हो जाए, वर्ना कम से कम "व अलैकुमुस्सलाम" ही कह दो ताकि जवाब बराबर हो जाए।

मज्लिस में एक बार सलाम करना

अगर मज्लिस में बहुत से लोग बैठे हैं और एक शख़्स उस मज्लिस में आए, तो वह आने वाला शख़्स एक बार सब को सलाम कर ले तो यह काफ़ी है। और मज्लिस में से एक शख़्स उसके सलाम का जवाब दे दे तो सब की तरफ़ से वाजिब अदा हो जाता है। हर एक को अलग जवाब देने की ज़रूरत नहीं।

इन मौक़ों पर सलाम करना जायज़ नहीं

सलाम करना बहुत सी जगहों पर ना जायज़ भी हो जाता है। जैसे जब कोई शख़्स दूसरे लोगों से कोई दीन की बात कर रहा हो और दूसरे लोग सुन रहे हों तो उस वक़्त आने वाले को सलाम करना जायज़ नहीं बल्कि सलाम किए बग़ैर मज्लिस में बैठ जाना चाहिए। इसी तरह अगर एक शख़्स तिलावत कर रहा है, उसको भी सलाम करना जायज़ नहीं। इसी तरह ज़िक्र करने वाले को सलाम करना जायज़ नहीं। खुलासा यह है कि जब कोई आदमी किसी काम में मश्गूल हो और इस बात का अन्देशा हो कि तुम्हारे सलाम का जवाब देने से उसके काम में हर्ज होगा, ऐसी सूरत में सलाम करने को पसन्द नहीं किया गया। इसलिये ऐसे मौक़े पर सलाम नहीं करना चाहिए।

दूसरे के ज़रिये सलाम भेजना

कभी कभी ऐसा होता है कि एक शख़्स दूसरे शख़्स का सलाम पहुंचाता है, कि फ़लां शख़्स ने आपको सलाम कहा है, और दूसरे शख़्स के ज़रिये सलाम का भेजना भी सुन्नत है और यह भी सलाम के क़ायम मक़ाम है, और इसके ज़रिये भी सलाम की फ़ज़ीलत

हासिल हो जाती है। इसलिये जब किसी को दूसरे का सलाम पहुंचाया जाए तो उसके जवाब का मसनून तरीक़ा यह है "अ़लैहिम व अ़लैकुमुस्सलाम" इसका मतलब यह है कि उन पर सलामती हो जिन्हों ने सलाम भेजा है, और तुम पर भी सलामती हो। इसमें दो सलाम और दो दुआएं जमा हो गयीं और दो आदमियों को दुआ देने का सवाब मिल गया।

बाज़ लोग इस मौक़े पर सिर्फ़ "व अ़लैकुमुस्सलाम" से जवाब देते हैं। इस से जवाब तो अदा हो जायेगा, लेकिन सही जवाब नहीं होगा, इसलिये कि इस सूरत में आपने उस शख़्स को तो सलामती की दुआ दे दी जो सलाम लाने वाला है, और वह शख़्स जो असल सलाम भेजने वाला था उसको दुआ नहीं दी। इसलिये जवाब देने का सही तरीक़ा यह है कि "अ़लैहिम "व अ़लैकुमुस्सलाम" कह कर जवाब दिया जाए।

लिखित सलाम का जवाब वाजिब है

अगर किसी के पास किसी शख़्स का ख़त आए और उस ख़त में "अस्सलामु अ़लैकुम व रहमतुल्लाह" लिखा हो तो इसके बारे में बाज़ उमला ने फ़रमाया कि इस सलाम का लिखित जवाब देना चूंकि वाजिब है इसलिये ख़त का जवाब देना भी वाजिब है। अगर ख़त क़े ज़रिये उसके सलाम का जवाब और उसके ख़त का जवाब नहीं देंगे तो ऐसा होगा कि जैसे कोई शख़्स आपको सलाम करे और आप जवाब न दें। लेकिन बाज़ दूसरे उलमा ने फ़रमाया कि उस ख़त का जवाब देना वाजिब नहीं है। इसलिये कि ख़त का जवाब देने में पैसे ख़र्च होते हैं। और किसी इन्सान के हालात कभी कभी इसके बर्दाश्त करने वाले नहीं होते कि वह पैसे ख़र्च करे, इसलिये ख़त का जवाब देना वाजिब तो नहीं है लेकिन पसन्दीदा ज़रूर है। लेकिन जिस वक़्त ख़त के अन्दर सलाम के अल्फ़ाज़ पढ़े, उस वक़्त ज़बान से उस सलाम का जवाब देना वाजिब है, और अगर ख़त पढ़ते वक़्त भी

ज़ाबन से सलाम का जवाब न दिया और न ख़त का जवाब दिया तो इस सूरत में वाजिब के छोड़ने का गुनाह होगा। इसमें हम से कितनी कोताही होती है कि ख़त आते हैं और पढ़ कर वैसे ही डाल देते हैं, न ज़बानी जवाब देते हैं, न लिखित में जवाब देंते हैं। और मुफ़्त में वाजिब के छोड़ने का गुनाह अपने नामा-ए-आमाल में लिखवा लेते हैं। ये सब ना जानकारी की वजह से कर लेते हैं। इसलिये जब भी ख़त आए तो फ़ौरन सलाम का जवाब देना चाहिए।

ग़ैर मुस्लिमों को सलाम करने का तरीक़ा

फ़ुक़हा-ए-किराम ने लिखा है कि ग़ैर मुस्लिमों को सलाम करना जायज़ नहीं। अगर किसी ग़ैर मुस्लिम से मुलाक़ात हो और उसे सलाम करने की ज़रूरत पेश आए तो सलाम के लिये वह लफ़्ज़ इस्तेमाल करे जो लफ़्ज़ वह ख़ुद इस्तेमाल करते हैं। लेकिन अगर ग़ैर मुस्लिम किसी मुसलमान से मुलाक़ात के वक़्त "अस्सलामु अ़लैकुम" कहे तो उनके जवाब में सिर्फ़ "व अ़लैकुम" कहे और पूरा जवाब न दे। और यह लफ़्ज़ कहते वक़्त यह नियत कर ले कि अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से तुमको हिदायत और मुसलमान बनने की तौफ़ीक़ हो। इसकी वजह यह है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ज़माने में मदीना मुनव्वरा और उसके आस पास बड़ी तायदाद में यहूदी आबाद थे, यह क़ौम हमेशा से शरीर क़ौम है, चुनांचे जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम या सहाबा-ए-किराम रज़ि. सामने आते तो ये लोग ख़बासत से काम लेते हुए उनको सलाम करते हुए कहतेः "अस्सामु अ़लैकुम" "लाम" दरमियान से निकाल देते थे, अब सुनने वाला जल्दी में यही समझता कि इसने "अस्सलामु अ़लैकुम" कहा है। "साम" के मायने अ़र्बी ज़बान में मौत और हलाकत के हैं। "अस्सामु अ़लैकुम" के मायने हुए कि तुम्हें मौत आ जाए और तुम हलाक और तबाह हो जाओ। ज़ाहिर में तो सलाम करते और हक़ीक़त में बद्-दुआ़ देते थे। कुछ दिन

तक यह मामला चल गया लेकिन चन्द दिनों के बाद सहाबा ने समझ लिया कि ये लोग जान बूझ कर दरमियान से "लाम" ख़त्म कर के "अस्सामु अ़लैकुम" कहते हैं।

(बुख़ारी शरीफ़)

एक यहूदी का सलाम करने का वाकिआ

एक बार यहूदियों की एक जमाअ़त ने आकर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम को इस तरह सलाम कियाः "अस्सामु अ़लैकुम" हज़रत आ़यशा रज़ि. ने जब यह अल्फ़ाज़ सुने तो उनको गुस्सा आ गया और जवाब में हज़रत आ़यशा रज़ि. ने फ़रमायाः "अ़लैकुमुस्साम वल्लअ़नत्" यानी तुम पर हलाकत हो और लानत हो, दो लफ़्ज़ बोल दीं, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सुन लिया कि हज़रत आ़यशा रज़ि. ने तुरकी बतुरकी जवाब दिया है, तो आपने हज़रत आ़यशा रज़ि. से फ़रमायाः ऐ आ़यशा रुक जाओ और नर्मी से काम लो, फिर फ़रमायाः

"ان الله يحب الرفق فى الأمر كله"

यानी अल्लाह तआ़ला हर मामले में नर्मी को पसन्द फ़रमाते हैं, हज़रत आ़यशा रज़ि. ने अ़र्ज़ किया कि या रसूलल्लाह! ये कैसे गुस्ताख़ हैं कि आप से ख़िताब करते हुए "अस्सामु अ़लैकुम" कह रहे हैं और हलाकत की बद्–दुआ़ दे रहे हैं। आपने फ़रमायाः ऐ आ़यशा! क्या तुमने नहीं सुना कि मैंने उनके जवाब में क्या कहा? जब उन्हों ने "अस्सामु अ़लैकुम" कहा तो मैंने जवाब में कहा "व अ़लैकुम" मतलब यह है कि जो बद्–दुआ़ तुम हमारे लिए कर रहे हो, अल्लाह वह तुम्हारे हक़ में क़ुबूल कर ले। इसलिये ग़ैर मुस्लिम के जवाब में सिर्फ़ "व अ़लैकुम" कहना चाहिए, फिर आपने फ़रमायाः

"يا عائشة:ما كان الرفق فى شئ الا زانه ولا نزع عن شئ الا شانه"

ऐ आ़यशा नर्मी जिस चीज़ में भी होगी उसको ज़ीनत बख़्शेगी, और जिस चीज़ से निकाल दी जायेगी उसको ऐबदार कर देगी।

इसलिये मामला जहां तक हो सके नर्मी से करना चाहिए, चाहे मुकाबले पर कुफ़्फ़ार ही हों। (बुख़ारी शरीफ़)

जहां तक हो सके नर्मी करना चाहिए

आप देखिए कि यहूदी ने हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के साथ गुस्ताख़ी की, और हज़रत आयशा रज़ि. ने जो अल्फ़ाज़ जवाब में फ़रमाये बज़ाहिर वे इन्साफ़ के ख़िलाफ़ नहीं थे लेकिन नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह सिखा दिया कि मेरी सुन्नत यह है कि नर्मी का मामला करो और उतनी बात ज़बान से अदा करो जितनी ज़रूरत है, बिला वजह अपनी तरफ़ से बात आगे बढ़ा कर सख़्ती का बर्ताव करना अच्छी बात नहीं है।

सलाम एक दुआ

बहर हाल यह "सलाम" मामूली चीज़ नहीं, यह ज़बरदस्त दुआ है और इसको दुआ की नियत से कहना और सुनना चाहिए। सच्ची बात तो यह है कि अगर एक आदमी की भी दुआ हमारे हक़ में कुबूल हो जाए तो हमारा बेड़ा पार हो जाए। इसलिये कि दुनिया व आख़िरत की सारी नेमतें इस सलाम के अन्दर जमा हैं। यानी तुम पर सलामती हो, अल्लाह की रहमत हो और अल्लाह की बर्कत हो। इसलिये यह दुआ लोगों से लेनी चाहिए और इस शौक़ व ज़ौक़ में लेनी चाहिए कि शायद अल्लाह तआ़ला इसकी ज़बान मेरे हक़ में मुबारक कर दे।

हज़रत मारूफ़ करख़ी रह. की हालत

हज़रत मारूफ़ करख़ी रह. बड़े दर्जे के अल्लाह के वलियों में से हैं और हज़रत जुनैद बग़दादी रह. के दादा पीर हैं। हज़रत जुनैद बग़दादी रह. हज़रत सिर्री सक़ती रह. के ख़लीफ़ा हैं और सिर्री सक़ती रह. हज़रत मारूफ़ करख़ी रह. के ख़लीफ़ा हैं। हर वक़्त अल्लाह के ज़िक्र में मुस्रूफ़ रहते थे, कोई वक़्त अल्लाह के ज़िक्र से ख़ाली नहीं था। यहां तक कि एक बार हज्जाम से हजामत बनवा रहे

थे, जब मूंछें बनाने का वक़्त आया तो हज्जाम ने देखा कि ज़बान हर्कत कर रही है और होंट हिल रहे हैं। हज्जाम ने कहा हज़रत! थोड़ी देर के लिए मुंह बन्द कर लीजिए, ताकि मैं आपकी मूंछें बना लूं, हज़रत ने जवाब दिया कि तुम तो अपना काम कर रहे हो, मैं अपना काम न करूं? आपका यह हाल था, हर वक़्त ज़बान पर ज़िक्र जारी था।

हज़रत मारूफ़ करख़ी रह. का एक वाक़िआ

उनका वाक़िआ लिखा है कि एक बार सड़क पर से गुज़र रहे थे, रास्ते में देखा कि एक सक़्क़ा लोगों को पानी पिला रहा है और यह आवाज़ लगा रहा है कि "अल्लाह उस बन्दे पर रहम करे जो मुझ से पानी पिए" हज़रत मारूफ़ करख़ी उस सक़्क़े के पास गये और उस से कहा कि एक गिलास पानी मुझे भी पिला दो, चुनांचे उसने दे दिया, आपने पानी लेकर पी लिया, एक साथी जो उनके साथ थे उन्हों ने कहा कि हज़रत आप तो रोज़े से थे और आपने पानी पीकर रोज़ा तोड़ दिया। आपने फ़रमाया कि यह अल्लाह का बन्दा दुआ कर रहा था कि अल्लाह उस बन्दे पर रहम करे जो मुझ से पानी पीले, मुझे ख़्याल आया कि क्या मालूम अल्लाह तआला इसकी दुआ मेरे हक़ में क़ुबूल फ़रमा ले, नफ़्ल रोज़ा जो तोड़ दिया इसकी क़ज़ा तो बाद में कर लूंगा लेकिन बाद में इस बन्दे की दुआ मुझे मिल सकेगी या नहीं, इसलिये मैंने इस बन्दे की दुआ के लिये पानी पी लिया।

अब आप अन्दाज़ा लगाइये कि इतने बड़े अल्लाह के वली, इतने बड़े बुज़ुर्ग, इतने बड़े सूफ़ी, लेकिन एक मामूली सक़्क़े की दुआ लेने के लिए रोज़ा तोड़ दिया। क्यों रोज़ा तोड़ दिया? इसलिये कि ये हज़रात अल्लाह के बन्दों की दुआयें लेने के बहुत ज़्यादा तालिब होते हैं, कि पता नहीं किस की दुआ हमारे हक़ में क़ुबूल हो जाए।

"शुक्रिया" के बजाए "जज़ाकुमुल्लाह" कहना चाहिए

इसी वजह से हमारे दीन में हर हर मौके लिए दुआयें तल्क़ीन की गयी हैं। जैसे छींकने वाले के जवाब में कहो: "यर्हमुकल्लाह" अल्लाह तुम पर रहम करे। मुलाक़ात के वक़्त "अस्सलामु अलैकुम" कहो, तुम पर सलामती हो। कोई तुम्हारे साथ भलाई करे तो कहो "जज़ाकुमुल्लाह" अल्लाह तआला तुम्हें बदला दे। आज कल यह रिवाज हो गया है कि जब कोई शख़्स दूसरे के साथ कोई भलाई करता है तो उसके जवाब में कहता है कि "आपका बहुत बहुत शुक्रिया" यह लफ़्ज़ कहना या शुक्रिया अदा करना कोई गुनाह की बात नहीं, अच्छी बात है। हदीस शरीफ़ में है कि:

"من لم يشكر الناس لم يشكر الله"

यानी जो शख़्स इन्सानों का शुक्रिया अदा नहीं करता वह अल्लाह का शुक्रिया भी अदा नहीं करता। लेकिन शुक्रिया अदा करने का बेहतरीन तरीक़ा यह है कि जिसका शुक्र अदा कर रहे हो उसको कुछ दुआ दे दो, ताकि उस दुआ के नतीजे में उसका कुछ फ़ायदा हो जाए। क्योंकि अगर आपने कहा कि "बहुत बहुत शुक्रिया" तो इन अल्फ़ाज़ के कहने से उसको क्या मिला? क्या दुनिया व आख़िरत की कोई नेमत मिल गयी, या उसको कोई फ़ायदा पहुंचा? कुछ नहीं मिला, लेकिन जब तुमने "जज़ाकुमुल्लाह" कहा तो उसको एक दुआ मिल गयी। बहर हाल! इस्लाम में यह तरीक़ा सिखाया गया कि क़दम क़दम पर दूसरों को दुआयें दो और दुआयें लो। इसलिये इनको अपने मामूलात में और दिन रात की गुफ़्तगू में शामिल कर लेना चाहिए। खुद भी इनकी आदत डालें और बच्चों को भी बचपन ही से इन कलिमात को अदा करना सिखायें।

सलाम का जवाब बुलन्द आवाज़ से देना चाहिए

एक साहिब ने पूछा है कि सलाम का जवाब बुलन्द आवाज़ से देना ज़रूरी है या आहिस्ता आवाज़ से भी जवाब दे सकते हैं? इसका

जवाब यह है कि वैसे तो सलाम का जवाब देना वाजिब है, लेकिन इतनी आवाज़ से जवाब देना कि सलाम करने वाला वह जवाब सुन ले यह मुस्तहब और सुन्नत है, लेकिन अगर इतनी आहिस्ता आवाज़ से जवाब दिया कि मुख़ातब ने वह जवाब नहीं सुना तो वाजिब तो अदा हो जायेगा लेकिन मुस्तहब अदा नहीं होगा। इसलिये बुलन्द आवाज़ से जवाब देने का एहतिमाम करना चाहिए। अल्लाह तआ़ला हमें इन बातों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

وآخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

मुसाफ़ा करने के आदाब

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَا وَسَنَدَنَا وَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَاَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْمًا كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

"عن انس بن مالك رضى الله عنه قال: كان النبى صلى الله عليه وسلم اذا استقبله الرجل فصافحه، لا ينزع يده عن يده حتى يكون الرجل هو الذى ينزع۔ ولا يصرف وجهه حتى يكون الرجل هو الذى يصرفه، ولم يدمقدما ركبتيه بين يدى جليس له. (ترمذى شريف)

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़ादिमे ख़ास हज़रत अनस रज़ि.

यह हदीस हज़रत अनस बिन मालिक रज़ि. से रिवायत की गयी है, यह वह सहाबी हैं जिनको अल्लाह तआ़ला ने यह ख़ुसूसियत अ़ता फ़रमाई थी कि दस साल तक हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के ख़ादिम रहे, यह दिन रात हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहते थे, इनकी वालिदा हज़रत उम्मे सलीम रज़ि. इनको बचबन ही में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में छोड़ कर गयी थीं।

चुनांचे हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत में रहते हुए ही उन्हों ने होश संभाला, वह ख़ुद क़सम खाकर फ़रमाते हैं कि मैंने पूरे दस साल तक हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की ख़िदमत की, लेकिन इस पूरे दस साल के अ़र्से (मुद्दत) में सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने न कभी मुझे डांटा, न कभी मारा, और न कभी मुझ पर ग़ुस्सा फ़रमाया और न

कभी मेरे किए हुए काम के बारे में यह पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया, और न कभी न किए हुए काम के बारे में यह पूछा कि तुमने यह काम क्यों नहीं किया? इस शफ़क़त के साथ हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनकी परवरिश फ़रमाई। (तिर्मिज़ी शरीफ़)

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की शफ़्क़त

हज़रत अनस रज़ि. फ़रमाते हैं कि एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझे किसी काम के लिए भेजा, मैं घर से काम करने के लिए निकला, रास्ते में देखा कि बच्चे खेल रहे हैं, (यह ख़ुद भी बच्चे ही थे) मैं उन बच्चों के साथ खेल में लग गया, और यह भूल गया कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने तो मुझे किसी काम के लिए भेजा था, जब काफ़ी देर गुज़र गयी तो मुझे याद आया, अब मुझे फ़िक्र हुई कि मैंने वह काम तो किया नहीं और खेल में लग गया, चुनांचे मैं घर वापस आया तो मैंने देखा कि वह काम ख़ुद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने अपने मुबारक हाथ से अन्जाम दे दिया है, मगर आपने मुझ से यह पूछा तक भी नहीं कि मैंने तुमको फ़लां काम के लिए भेजा था, तुम ने वह काम क्यों नहीं किया? (मुस्लिम शरीफ़)

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दुआ़ओं का हासिल करना

ख़िदमत के दौरान हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से दुआयें भी लीं, इसलिये कि जब भी कोई ख़िदमत अन्जाम देते, उस पर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम उनको दुआयें देते, चुनांचे एक बार हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनके सर पर हाथ रख कर यह दुआ फ़रमाई कि ऐ अल्लाह! इनकी उम्र और औलाद में बर्कत अ़ता फ़रमा, यह दुआ ऐसी क़बूल हुई कि तक़रीबन तमाम सहाबा में सब से आख़िर में आपकी वफ़ात हुई और

आप ही ने बेशुमार इन्सानों को ताबिई होने का शर्फ़ बख़्शा, आपको देख कर, आपकी ज़ियारत करके बहुत से लोग ताबिई बन गये, अगर आप न होते तो उनको ताबिई होने का शर्फ़ हासिल न होता। हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा रह. ने हज़रत अनस रज़ि. की यक़ीनी तौर पर ज़ियारत की है, जिसके ज़रिये वह ताबिई बन गये, इतनी लम्बी उम्र अल्लाह तआला ने अता फ़रमाई। और औलाद में बर्कत का यह हाल था कि इतनी औलाद हुई कि वे खुद फ़रमाते हैं कि आज मेरी औलाद और औलाद की औलाद की तादाद सौ से ज़्यादा हो चुकी है। (मुस्लिम शरीफ़)

हदीस का तर्जुमा

बहर हाल हज़रत अनस रज़ि. इस हदीस में फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम का मामूल यह था कि जब कोई आपके पास आकर आप से मुसाफ़ा करता, तो आप अपना हाथ उसके हाथ से उस वक़्त तक नहीं खींचते थे जब तक वह खुद अपना हाथ न खींच ले, और आप अपना चेहरा और अपना रुख़ उस मुलाक़ात करने वाले की तरफ़ से नहीं फेरते थे जब तक वह खुद अपना चेहरा न फेर ले। और न कभी यह देखा गया कि जब आप मज्लिस में लोगों के साथ बैठे हों तो आपने अपना घुटना उनमें से किसी शख़्स से आगे किया हो।

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम और तवाज़ो

इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तीन सिफ़तें बयान की गयी हैं, पहली सिफ़त यह बयान की गयी कि नबी-ए-करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की तबीयत में इस क़द्र तवाज़ो थी कि इतने बुलन्द मक़ाम पर होने के बावजूद जब कोई अल्लाह का बन्दा आप से मुलाक़ात करता, तो आप अपना हाथ उस वक़्त तक नहीं खींचते थे जब तक वह खुद अपना हाथ न खींच ले, और दूसरी सिफ़त यह बयान की गयी कि आप अपना चेहरा नहीं

फेरते थे जब तक वह खुद अपना चेहरा न फेर ले, और तीसरी सिफ़त यह बयान की गयी कि आप अपना घुटना किसी से आगे नहीं करते थे।

बाज़ दूसरी रिवायतों में आता है कि जब कोई शख़्स आप से बात करना शुरू करता तो आप उसकी बात नहीं काटते थे, और उस वक़्त तक उसकी तरफ़ मुतवज्जह रहते थे जब तक वह ख़ुद ही उठ कर न चला जाए। और अगर कोई बुढ़िया भी किसी काम के लिए आपको अपनी तरफ़ मुतवज्जह करती तो आप उसके साथ उसका काम करने के लिए तशरीफ़ ले जाते थे।

हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के मुसाफ़ा करने का अन्दाज़

हकीकत में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की जितनी सुन्नतें हैं वे सब हमारे लिए हैं। अल्लाह तआ़ला उन पर हम सब को अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन। लेकिन बाज़ सुन्नतों पर अ़मल करना आसान है और बाज़ सुन्नतों पर अ़मल करना मुश्किल है, इस हदीस में जो सुन्नत बयान की गयी है कि आदमी मुसाफ़ा करने के बाद उस वक़्त तक अपना हाथ न खींचे जब तक दूसरा अपना हाथ न खींच ले, और जब दूसरा बात शुरू करे तो उसकी बात न काटे, जब तक वह ख़ुद ही बात ख़त्म न करे, एक मश्गूल इन्सान के लिए सारी ज़िन्दगी इस पर अ़मल करना बज़ाहिर दुश्वार मालूम होता है। इसलिये कि बाज़ लोग तो ऐसे होते हैं जो इस बात का ख़्याल करते हैं कि दूसरे शख़्स का ज़्यादा वक़्त न लिया जाए, लेकिन बाज़ लीचड़ क़िस्म के लोग होते हैं, जब बातें करने बैठेंगे तो अब ख़त्म करने का नाम ही नहीं लेंगे, इस क़िस्म के लोगों से मुलाक़ात के वक़्त उनकी बात सुनते रहना और उनकी बात न काटना जब तक वे ख़ुद अपनी बात ख़त्म न करें, यह बड़ा मुश्किल काम है, ख़ास तौर पर उस ज़ात के लिए जिस पर दोनों

जहां की ज़िम्मेदारियां हैं, जिहाद जारी है, तालीम व तब्लीग़ का सिल्सिला जारी है, मदीने की रियासत का इन्तिज़ाम जिसके सर पर है, हक़ीक़त में तो यह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मोजिज़ा ही था।

इस से यह बात मालूम हुई कि उस अ़ज़ीम मक़ाम और मर्तबे के बावजूद जो अल्लाह तआ़ला ने आपको अ़ता फ़रमाया था, आपकी तवाज़ो और इन्किसारी का यह आ़लम था कि अल्लाह के हर बन्दे के साथ तवाज़ो और आ़जज़ी के साथ पेश आते थे।

दोनों हाथों से मुसाफ़ा करना सुन्नत है

इस हदीस के पहले जुम्ले से दो मस्अले मालूम हुए। पहला मस्अला यह मालूम हुआ कि मुलाक़ात के वक़्त मुसाफ़ा करना सुन्नत है, हदीसों में अगरचे मुसाफ़े के बारे में ज़्यादा तफ़्सील तो नहीं आई लेकिन बुज़ुर्गों ने फ़रमाया कि मुसाफ़े का वह तरीक़ा जो सुन्नत से ज़्यादा क़रीब है, वह यह है कि दोनों हाथों से मुसाफ़ा किया जाए। चुनांचे बुख़ारी शरीफ़ में इमाम बुख़ारी रह. ने मुसाफ़े के बयान पर जो बाब क़ायम किया उसमें हज़रत हम्माद बिन ज़ैद रह. का हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. से दोनों हाथों से मुसाफ़ा करना बयान किया है। (बुख़ारी शरीफ़)

और ग़ालिबन हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. का यह क़ौल नक़ल किया है कि आपने फ़रमाया कि जब आदमी मुसाफ़ा करे तो दोनों हाथों से करे।

एक हाथ से मुसाफ़ा करना सुन्नत के ख़िलाफ़ है

आजके दौर में एक तरफ़ तो अंग्रेज़ों की तरफ़ से फ़ैशन चला कि एक हाथ से मुसाफ़ा करना चाहिए, दूसरी तरफ़ बाज़ हल्क़ों की तरफ़ से, ख़ास तौर पर सऊदी अ़रब के हज़रात इस बारे में तशद्दुद इख़्तियार करते हुए यह कहते हैं कि मुसाफ़ा तो एक ही हाथ से करना सुन्नत है, दोनों हाथों से करना सुन्नत नहीं। ख़ूब समझ

लीजिए यह ख़्याल ग़लत है। इसलिये कि हदीस में मुफ़रद यानी एक लफ़्ज़ भी इस्तेमाल हुआ है और तस्निया यानी दो का लफ़्ज़ भी आया है, और बुज़ुर्गों ने इसका जो मतलब समझा वह यह है कि दोनों हाथों से मुसाफ़ा करना सुन्नत है। चुनांचे किसी हदीस में यह नहीं आया है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने एक हाथ से मुसाफ़ा किया, जब्कि रिवायतों में दोनों हाथों से मुसाफ़ा करने का ज़िक्र मौजूद है। चुनांचे बुज़ुर्गाने दीन में भी यही तरीक़ा चला आ रहा है, इसी तरीक़े को उलाम–ए–उम्मत ने सुन्नत के क़रीब समझा है कि दोनों हाथों से मुसाफ़ा किया जाए।

हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद रज़ि. फ़रमाते हैं कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मुझे "अत्तहिय्यात" इस तरह याद कराई कि मेरे हाथ हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की दोनों हथेलियों के दरमियान थे। इस से मालूम हुआ कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के मुबारक ज़माने में भी मुसाफ़ा करने का तरीक़ा यही था, इसलिये दोनों हाथों से मुसाफ़ा करना सुन्नत से ज़्यादा क़रीब है।

अब अगर कोई शख़्स एक हाथ से मुसाफ़ा कर ले तो उसको मैं यह नहीं कहता कि उसने ना जायज़ काम किया, या इस से मुसाफ़े की सुन्नत अदा न होगी, लेकिन वह तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए जो सुन्नत से ज़्यादा क़रीब हो। और जिस तरीक़े को उलमा, फ़ुक़हा और बुज़ुर्गाने दीन ने सुन्नत से क़रीब समझ कर इख़्तियार किया हो। उसको ही इख़्तियार करना ज़्यादा बेहतर है।

मौक़ा देख कर मुसाफ़ा किया जाए

दूसरा मस्अला यह मालूम हुआ कि मुसाफ़ा करना अगरचे सुन्नत ज़रूर है, लेकिन हर सुन्नत का कोई महल और मौक़ा भी होता है। अगर वह सुन्नत उसके मौक़े पर अन्जाम दी जाए तो सुन्नत होगी और उस पर अमल करने से इन्शा अल्लाह सवाब

हासिल होगा, लेकिन अगर उस सुन्नत को बे मौक़ा और बे जगह इस्तेमाल कर लिया तो सवाब के बजाए उल्टा गुनाह का अन्देशा होता है। जैसे अगर मुसाफ़ा करने से सामने वाले शख़्स को तक्लीफ़ पहुंचने का अन्देशा हो तो इस सूरत में मुसाफ़ा करना दुरुस्त नहीं, और अगर ज़्यादा तक्लीफ़ पहुंचने का अन्देशा हो तो इस सूरत में मसुफ़ा करना ना जायज़ है। ऐसे वक़्त में सिर्फ़ ज़बान से सलाम करने पर बस करे और "अस्सलामु अ़लैकुम" कह दे और सामने वाला जवाब दे दे।

यह मुसाफ़े का मौक़ा नहीं

जैसे एक शख़्स के दोनों हाथ मस्रूफ़ हैं दोनों हाथों में सामान है और आपने मुलाक़ात के वक़्त मुसाफ़े के लिए हाथ बढ़ा दिए, ऐसे वक़्त वह बेचारा परेशान होगा, अब आप से मुसाफ़ा करने की ख़ातिर अपना सामान पहले ज़मीन पर रखे और फिर आप से मुसाफ़ा करे, इसलिये ऐसी हालत में मुसाफ़ा करना सुन्नत नहीं बल्कि ख़िलाफ़े सुन्नत है। बल्कि अगर मुसाफ़े की वजह से दूसरे को तक्लीफ़ पहुंचेगी तो गुनाह का भी अन्देशा है। आज कल लोग इस मामले में बड़ी बे एहतियाती करते हैं।

मुसाफ़े का मक़सद "मुहब्बत का इज़्हार करना"

देखिए यह "मुसाफ़ा" मुहब्बत का इज़्हार है, और मुहब्बत के इज़्हार के लिए वह तरीक़ा इख़्तियार करना चाहिए जिस से महबूब को राहत मिले, न यह कि उसके ज़रिये उसको तक्लीफ़ पहुंचाई जाए। कभी कभी यह होता है कि जब कोई बुज़ुर्ग अल्लाह वाले किसी जगह पहुंचे तो आप लोगों ने यह सोचा कि चूंकि यह बुज़ुर्ग हैं इन से मुसाफ़ा करना ज़रूरी है, चुनांचे मुसाफ़ा करने के लिए पूरा मजमा उन बेचारे ज़ओ़फ़ और छूई मूई बुज़ुर्ग पर टूट पड़ा, अब अन्देशा इसका है कि वह बुज़ुर्ग गिर पड़ेंगे, उनको तक्लीफ़ होगी, लेकिन मुसाफ़ा नहीं छोड़ेंगे, ज़ेहन में यह है कि मुसाफ़ा करके बर्कत

हासिल करनी है। और जब तक यह बर्कत हासिल नहीं होगी, हम यहां से नहीं जायेंगे।

उस वक़्त मुसाफ़ा करना गुनाह है

ख़ास तौर पर यह बंगाल और बर्मा का जो इलाक़ा है, उसमें यह रिवाज है कि अगर किसी बुज़ुर्ग का बयान और तक़रीर सुनेंगे तो बयान के बाद उन बुज़ुर्ग से मुसाफ़ा करना लाज़मी और ज़रूरी समझते हैं, चुनांचे बयान के बाद उन बुज़ुर्ग पर टूट पड़ेंगे, इसका ख़्याल नहीं होगा कि जिन से मुसाफ़ा कर रहे हैं वे कहीं दब न जाएं, उनको तक्लीफ़ न पहुंच जाए, लेकिन मुसाफ़ा करना ज़रूरी है।

पहली बार जब अपने वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. के साथ बंगाल जाना हुआ तो पहली बार यह मन्ज़र देखने में आया कि जलसे में हज़ारों अफ़राद का मजमा था। हज़रत वालिद साहिब ने बयान फ़रमाया, लेकिन जब जलसे से फ़ारिग़ हुए तो सारा मजमा मुसाफ़ा करने के लिए वालिद साहिब पर टूट पड़ा, और वालिद साहिब को वहां से बचा कर निकालना मुश्किल हो गया।

यह तो दुश्मनी है

हज़रत थानवी रह. का एक वअ़्ज़ है जो आपने रंगून (बर्मा) की सूरती मस्जिद में किया था, उस वअ़्ज़ में यह लिखा है कि जब हज़रत थानवी रह. बयान से फ़ारिग़ हुए तो मुसाफ़ा करने के लिए मजमा का इतना ज़ोर पड़ा कि हज़रते वाला गिरते गिरते बचे। यह हक़ीक़ी मुहब्बत नहीं है, यह मुहब्बत की सिर्फ़ सूरत है। इसलिये कि मुहब्बत को भी अ़क्ल चाहिए कि जिस से मुहब्बत की जा रही है उसके साथ हमदर्दी का मामला किया जाए, और उसको दुख और तक्लीफ़ से बचाया जाए, यह है हक़ीक़ी मुहब्बत।

अ़क़ीदत की इन्तिहा का वाक़िआ

हज़रत थानवी रह. के मवाइज़ (तक़रीरों) में एक क़िस्सा लिखा है कि एक बुज़ुर्ग किसी इलाक़े में चले गये, वहां के लोगों को उन

बुजुर्ग से इतनी अक़ीदत हुई कि उन्हों ने यह फ़ैसला किया कि उन बुजुर्ग को अब बाहर नहीं जाने देंगे, उनको यहीं रखेंगे, ताकि उनकी बर्कत हासिल हो, और उसकी सूरत यह समझ में आई कि उन बुजुर्ग को क़त्ल करके यहां दफ़्न कर दिया जाए ताकि उनकी यह बर्कत इस इलाक़े से बाहर न निकल जाए।

मुहब्बत के जोश में बे अक़्ली का जो अन्दाज़ है उसका दीन से कोई ताल्लुक़ नहीं, मुहब्बत वह है जिस से महबूब को राहत और आराम मिले। इसी तरह मुसाफ़े के वक़्त यह देख कर मुसाफ़ा करना चाहिए कि उस वक़्त मुसाफ़ा करना मुनासिब है या नहीं? इसका लिहाज़ रखना चाहिए। अगर दोनों हाथ मश्गूल हों तो ऐसी सूरत में राहत और आराम की नियत से मुसाफ़ा न करने में ज़्यादा सवाब हासिल होगा, इन्शा अल्लाह।

मुसाफ़ा करने से गुनाह झड़ते हैं

एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि जब एक मुसलमान दूसरे मुसलमान से मुहब्बत के साथ मुसाफ़ा करता है तो अल्लाह तआला दोनों के हाथों के गुनाह झाड़ देते हैं। इसलिये मुसाफ़ा करते वक़्त यह नियत कर लेनी चाहिए कि इस मुसाफ़े के ज़रिये अल्लाह तआला मेरे गुनाहों की भी मग़फ़िरत फ़रमायेंगे और इनके भी गुनाहों की मग़फ़िरत फ़रमायेंगे। और साथ में यह नियत भी कर ले कि यह अल्लाह का नेक बन्दा जो मुझ से मुसाफ़ा करने के लिए आया है अल्लाह तआला इसके हाथ की बर्कत मेरी तरफ़ मुन्तक़िल फ़रमा देंगे। ख़ास तौर पर हम लोगों के साथ ऐसे मौक़े बहुत पेश आते हैं कि जब किसी जगह पर तक़रीर या बयान किया तो बयान के बाद लोग मुसाफ़े के लिए आ गये।

ऐसे मौक़े के लिए हमारे हज़रत डाक्टर अब्दुल हई साहिब रह. फ़रमाया करते थे कि भाई! जब बहुत सारे लोग मुझ से मुसाफ़ा करने के लिए आते हैं तो मैं बहुत खुश होता हूं, इसलिये खुश होता

हूं कि ये सब अल्लाह के नेक बन्दे हैं, कुछ पता नहीं कि कौनसा बन्दा अल्लाह तआला के नज़दीक मक़्बूल बन्दा है, जब उस मक़्बूल बन्दे का हाथ मेरे हाथ से छू जायेगा तो शायद उसकी बर्कत से अल्लाह तआला मुझ पर भी नवाज़िश फ़रमा दें। यही बातें बुज़ुर्गों से सीखने की हैं। इसलिये जब बहुत से लोग किसी से मुसाफ़े के लिए आयें तो उस वक़्त आदमी का दिमाग़ ख़राब होने का अन्देशा होता है, और यह ख़्याल होता है कि जब इतनी सारी मख़्लूक़ मुझ से मुसाफ़ा कर रही है और मोतक़िद हो रही है, हक़ीक़त में अब मैं बुज़ुर्ग बन गया हूं। लेकिन जब मुसाफ़ा करते वक़्त यह नियत कर ली कि शायद इनकी बर्कत से अल्लाह तआला मुझे नवाज़ दें, मेरी बख़्शिश फ़रमा दें, तो अब सारा नुक़्ता-ए-नज़र तब्दील हो गया। और अब मुसाफ़ा करने के नतीजे में तकब्बुर और अपनी बड़ाई पैदा होने के बजाये तवाज़ो और आजज़ी और शिकस्तगी व इन्किसारी पैदा होगी। इसलिये मुसाफ़ा करते वक़्त यह नियत कर लिया करो।

मुसाफ़ा करने का एक अदब

हदीस के अगले जुम्ले में यह बयान फ़रमाया कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम किसी शख़्स से मुसाफ़े के वक़्त अपना हाथ उस वक़्त तक नहीं खींचते थे जब तक सामने वाला शख़्स अपना हाथ न खींच ले। इस से मुसाफ़ा करने का एक और अदब मालूम हुआ, कि आदमी मुसाफ़ा करते वक़्त अपना हाथ ख़ुद से न खींचे, यानी सामने वाले को इस बात का एहसास न हो कि तुम उसकी मुलाक़ात से उक्ता रहे हो, या तुम उसको कम दर्जा और ज़लील समझ रहे हो, बल्कि शगुफ़्तगी के साथ मुसाफ़ा करे, जल्दी बाज़ी न करे। लेकिन अगर कोई शख़्स ऐसा हो जो चिमट ही जाए और आपका हाथ छोड़े ही नहीं, उस वक़्त बहर हाल गुन्जायश है कि आप अपना हाथ खींच लें।

मुलाक़ात का एक अदब

इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का दूसरा वस्फ़ यह बयान फ़रमाया कि आप मुलाक़ात के वक़्त अपना चेहरा उस वक़्त तक नहीं फेरते थे जब तक कि सामने वाला अपना चेहरा न फेर ले। यह भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत है, इस सुन्नत पर अ़मल करने में बड़ा मुजाहदा है, लेकिन इन्सान की अपनी तरफ़ से यही कोशिश होनी चाहिए कि जब तक मुलाक़ात करने वाला ख़ुद मुलाक़ात करके रुख़्सत न हो जाए उस वक़्त तक अपना चेहरा उस से न फेरे, लेकिन अगर कहीं मजबूरी हो जाए तो बात दूसरी है।

इयादत करने का अ़जीब वाक़िआ़

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. का वाक़िआ़ लिखा है कि जब आप वफ़ात के वक़्त बीमारी में थे, लोग आपकी इयादत करने के लिए आने लगे, इयादत के बारे में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की तालीम यह है कि:

"من عادمنكم فليخفف"

यानी जो शख़्स तुम में से किसी बीमार की इयादत करने जाए उसको चाहिए कि वह हल्की फुल्की इयादत करे, बीमार के पास ज़्यादा देर न बैठे, कभी कभी मरीज़ को तन्हाई की ज़रूरत होती है और लोगों की मौजूदगी में वह अपना काम बे तकल्लुफ़ी से अन्जाम नहीं दे सकता, इसलिये मुख़्तसर इयादत करके चले आओ, उसको राहत पहुंचाओ, तक्लीफ़ मत पहुंचाओ। बहर हाल, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. बिस्तर पर लेटे हुए थे, एक साहिब इयादत के लिए आकर बैठ गये, और ऐसे जम कर बैठ गये कि उठने का नाम ही नहीं लेते, और बहुत से लोग इयादत के लिए आते रहे और मुख़्तसर मुलाक़ात करके जाते रहे मगर वह साहिब बैठे रहे, न उठे। अब हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक इस इन्तिज़ार में थे कि यह साहिब

चले जाएं तो मैं तन्हाई में बे तकल्लुफ़ी से अपनी ज़रूरियात के कुछ काम कर लूं, मगर ख़ुद से उसको चले जाने के लिए कहना भी मुनासिब नहीं समझते थे। जब काफ़ी देर गुज़र गई और वह अल्लाह का बन्दा उठने का नाम ही नहीं ले रहा था तो हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. ने उन साहिब से फ़रमाया कि: यह बीमारी की तक्लीफ़ तो अपनी जगह पर है ही, लेकिन इयादत करने वालों ने अलग परेशान कर रखा है कि इयादत के लिए आते हैं और परेशान करते हैं। आपका मक़्सद यह था कि शायद यह मेरी बात समझ कर चला जाए, मगर वह अल्लाह का बन्दा फिर भी नहीं समझा और हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक से कहा कि हज़रत! अगर आप इजाज़त दें तो कमरे का दर्वाज़ा बन्द कर दूं? ताकि कोई दूसरा शख़्स इयादत के लिए न आए, हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन मुबारक रह. ने जवाब दिया कि: हां भाई बन्द कर दो, मगर अन्दर से बन्द करने के बजाए बाहर से जाकर बन्द कर दो। बहर हाल, बाज़ लोग ऐसे होते हैं जिनके साथ ऐसा मामला भी करना पड़ता है, इसके बग़ैर काम नहीं चलता, लेकिन आ़म हालत में जहां तक हो सके यह कोशिश की जाए कि दूसरा यह महसूस न करे कि मुझ से किनारा किया जा रहा है। अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से हम सब को इन सुन्नतों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

واخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين

छः क़ीमती नसीहतें

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُهٗ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنُؤْمِنُ بِهٖ وَنَتَوَكَّلُ عَلَيْهِ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِهِ اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْهُ فَلَا هَادِيَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّااللّٰهُ وَحْدَهٗ لَا شَرِيْكَ لَهٗ وَنَشْهَدُ اَنَّ سَيِّدَنَاوَسَنَدَنَاوَمَوْلَانَا مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ صَلَّى اللّٰهُ تَعَالٰى عَلَيْهِ وَعَلٰٓى اٰلِهٖ وَ اَصْحَابِهٖ وَبَارَكَ وَسَلَّمَ تَسْلِيْماً كَثِيْرًا كَثِيْرًا۔ اَمَّا بَعْدُ:

"عن ابي جرى جابر بن سليم رضى الله عنه قال: رأيت رجلًا يصدر الناس عن رأيه، لا يقول شيئًا الا صدروا عنه قلت: من هذا؟ قالوا: رسو ل الله صلى الله عليه وسلم ، قلت: عليك السلام يا رسول الله مرتين، قال لا تقل "عليك السلام" فان عليك السلام تحية الميت، قل: السلام عليك۔ قال، قلت: انت رسول الله؟ قال:انا رسول الله الذى اذا اصابك ضرٌ فدعوته كشفه عنك، واذا اصابك عام سنة فدعوته انبتها لك، واذا كنت بارض قفر او فلاة فضلت راحلتك فدعوته ردها عليك، قال قلت: اعهدالى، قال: لا تسبن احدًا، قال فما سببت بعده حرًا ولاعبدًا ولا بعيرًا ولا شاة، ولا تحقرن شيئاً من المعروف، وان تكلم اخاك وانت منبسط اليه وجهك ان ذالك من المعروف، وارفع ازارك الىٰ نصف الساق، فان ابيت فالى الكعبين، واياك واسبال الازار، فانها من المخيلة، وان الله لا يحب المخيلة وان امرأ شمك اوعيّرك بما يعلم فيك فلا تعيّره بما تعلم فيه، فانما وبال ذالك عليه" (ابوداؤد شريف)

यह एक लम्बी हदीस है, और यह पूरी हदीस मैंने आपके सामने इसलिए पढ़ी कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुबारक हदीसों के मायने में तो नूर है ही, हदीस के अल्फ़ाज़ में भी नूर है। इसलिये हदीसों का पढ़ना और सुनना भी ख़ैर व बर्कत का सबब है, अल्लाह तआ़ला इसको समझने और अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. से पहली मुलाक़ात

हज़रत जाबिर रज़ियल्लाहु अ़न्हु इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस

सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पहली मुलाक़ात का वाक़िआ़ बयान कर रहे हैं, जब कि वह हुज़ूरे अक़्दस सल्ल. को पहचानते भी नहीं थे, फ़रमाते हैं कि:

"मैंने एक साहिब को देखा कि लोग हर मामले में उनकी तरफ़ रुजू करते हैं और अपने मामलात में उन्हीं से मश्विरा लेते हैं। और वह साहिब जो बात फ़रमा देते हैं, लोगों को उनकी बात पर इत्मीनान हो जाता है। मैंने लोगों से पूछा कि यह कौन साहिब हैं? लोगों ने बताया कि यह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं। जब मुझे पता चला कि आप ही मुहम्मद सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हैं तो मैंने आपके क़रीब जाकर इन अल्फ़ाज़ से सलाम किया, "अ़लैकस्सलाम या रसूलल्लाह" ये अल्फ़ाज़ मैंने दो बार कहे तो आपने फ़रमाया कि "अ़लैकस्सलाम" न कहो, बल्कि "अस्सलामु अ़लै–क" कहो। इसलिये कि "अ़लैकस्सलाम" मुर्दों का सलाम है। यानी जब मुर्दों को सलामती भेजी जाए तो उसमें लफ़्ज़ "सलाम" बाद में होता है, और "अ़लै–क" पहले होता है"।

सलाम का जवाब देने का तरीक़ा

इस हदीस का मतलब यह है कि सलाम की पहल करनी हो तो "अस्सलामु अ़लैकुम" कहना चाहिए। लेकिन जब सलाम का जवाब देना हो तो इसका तरीक़ा हदीस शरीफ़ में यह बताया गया है कि "व अ़लैकुमुस्सलाम व रह्मतुल्लाह" कहा जाए। गोया कि जवाब में "अ़लैकुम" का लफ़्ज़ पहले लाया जायेगा। अगर कोई शख़्स "अस्सलामु अ़लैकुम" के जवाब में "अस्सलामु अ़लैकुम" कह दे तो वाजिब तो अदा हो जायेगा लेकिन सुन्नत यह है कि जवाब में "व अ़लैकुमुस्सलाम" कहे। आज कल यह रीत पड़ गयी है कि "अस्सलामु अ़लैकुम" के जवाब में भी "अस्सलामु अ़लैकुम" कह दिया जाता है, यह सुन्नत के ख़िलाफ़ है।

दोनों पर जवाब देना वाजिब है

अगर दो आदमी एक दूसरे से मिलें और हर एक दूसरे को सलाम में पहल करना चाहे, जिसके नतीजे में दोनों एक साथ एक ही वक़्त में "अस्सलामु अ़लैकुम" कहें तो इस सूरत में दोनों पर एक दूसरे के सलाम का जवाब देना वाजिब हो जायेगा। इसलिये दोनों "व अ़लैकुमुस्सलाम" भी कहें। क्योंकि उनमें से हर एक ने दूसरे को सलाम करने की पहल की है। इसलिये हर शख़्स पर जवाब देना वाजिब हो गया।

शरीअ़त में अल्फ़ाज़ भी मक़्सूद हैं

इस हदीस से एक और बुनियादी बात मालूम हुई जिस से आज कल लोग बड़ी ग़फ़्लत बरतते हैं, वह यह कि हदीसों के मायने, मफ़्हूम और रूह तो मक़्सूद है ही, लेकिन शरीअ़त में अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बताये हुए अल्फ़ाज़ भी मक़्सूद हैं। देखिए "अस्सलामु अ़लैकुम" और "व अ़लैकुमुस्सलाम" दोनों के मायने तो एक ही हैं, यानी तुम पर सलामती हो, लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत जाबिर बिन सुलैम रज़ियल्लाहु अ़न्हु को पहली मुलाक़ात ही में इस पर तंबीह फ़रमाई कि सलाम करने का सुन्नत तरीक़ा और सही तरीक़ा यह है कि "अस्सलामु अ़लैकुम" कहो। ऐसा क्यों किया? इसलिये कि इसके ज़रिये आपने उम्मत को यह सबक़ दे दिया कि "शरीअ़त" अपनी मर्ज़ी से रास्ता बना कर चलने का नाम नहीं है बल्कि "शरीअ़त" अल्लाह और अल्लाह के रसूल सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की इत्तिबा का नाम है।

आज कल लोगों की ज़बानों पर अक्सर यह रहता है कि शरीअ़त की रूह देखनी चाहिए। ज़ाहिर और अल्फ़ाज़ के पीछे नहीं पड़ना चाहिए। मालूम नहीं कि वे लोग रूह को किस तरह देखते हैं, उनके पास कौन सी ऐसी दूरबीन है जिसमें उनको रूह नज़र आ जाती है।

हालांकि शरीअत में रूह के साथ ज़ाहिर भी मतलूब और मक़्सूद है। सलाम ही को ले लें कि आप मुलाक़ात के वक़्त "अस्सलामु अ़लैकुम" के बजाए उर्दू में यह कह दें "सलामती हो तुम पर" देखिए मायने और मफ़्हूम तो इसके वही हैं जो "अस्सलामु अ़लैकुम" के हैं लेकिन वह बर्कत, वह नूर और सुन्नत की इत्तिबा का अज्र व सवाब इसमें हासिल नहीं होगा जो "अस्सलामु अ़लैकुम" में हासिल होता है।

सलाम करना मुसलमानों का शिआ़र है

यह सलाम मुसलामनों का शिआ़र है। इसके ज़रिये इन्सान पहचाना जाता है कि यह मुसलमान है। एक बार मेरा चीन जाना हुआ और चीन में मुसलमानों की बहुत बड़ी तायदाद आबाद है। लेकिन उनकी ज़बान ऐसी है जो हमारी समझ में नहीं आती थी, हमारी ज़बान उनकी समझ में नहीं आती थी। इसलिये उनसे बात चीत करने और जज़्बात के इज़्हार का कोई ज़रिया नहीं था। लेकिन एक चीज़ हमारे दरमियान मुश्तरक थी, वह यह कि जब किसी मुसलमान से मुलाक़ात होती तो वह कहता "अस्सलामु अ़लैकुम व रह्मतुल्लाहि व ब–रकातुहू" और इसके ज़रिये वह जज़्बात का इज़्हार करता। यह हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत की इत्तिबा की बर्कत थी। इस सुन्नत ने तमाम मुसलमानों को एक दूसरे के साथ बांधा हुआ है, और राबते का ज़रिया है। और इन अल्फ़ाज़ में जो नूर और बर्कत है वह किसी और लफ़्ज़ से हासिल नहीं हो सकती। आज कल फ़ैशन की इत्तिबा में सलाम के बजाए कोई "आदाब अ़र्ज़" कहता है, कोई "तसलीमात" कहता है, किसी ने "सलाम मस्नून" कह दिया। याद रखिए इन अल्फ़ाज़ से सुन्नत के सवाब का नूर हासिल नहीं हो सकता। इस हदीस में आपने देखा कि हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक ज़रा सा लफ़्ज़ बदलने को भी गवारा नहीं फ़रमाया।

एक सहाबी का वाक़िआ

एक सहाबी को हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने एक दुआ़ सिखाई और फ़रमाया कि जब रात को सोने का इरादा करो तो सोने से पहले यह दुआ़ पढ़ लिया करो, उस दुआ़ के अन्दर ये अल्फ़ाज़ थे:

"آمَنْتُ بِكِتَابِكَ الَّذِیْ اَنْزَلْتَ وَبِنَبِیِّكَ الَّذِیْ اَرْسَلْتَ"

"यानी मैं उस किताब पर ईमान लाया जो आपने नाज़िल फ़रमाई, और उस नबी पर ईमान लाया जिनको आपने भेजा"।

चन्द दिनों के बाद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उन सहाबी से फ़रमाया कि जो दुआ़ मैंने तुमको सिखाई थी वह दुआ़ मुझे सुनाओ, क्या पढ़ते हो? उन सहाबी ने दुआ़ सुनाते वक़्त एक लफ़्ज़ थोड़ा सा बदल दिया, और इस तरह सुनाई कि:

"آمَنْتُ بِكِتَابِكَ الَّذِیْ اَنْزَلْتَ وَبِرَسُوْلِكَ الَّذِیْ اَرْسَلْتَ"

उस दुआ में लफ़्ज़ "नबी" की जगह "रसूल" का लफ़्ज़ पढ़ लिया। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि वही लफ़्ज़ कहो जो मैंने सिखाया था। हालांकि नबी और रसूल के लफ़्ज़ में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं है, इस्तिलाही फ़र्क़ के एतिबार से भी रसूल का दर्जा नबी के मुक़ाबले में बुलन्द है, लेकिन इसके बावजूद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जो अल्फ़ाज़ मैंने सिखाए हैं वही अल्फ़ाज़ कहो।

इत्तिबा-ए-सुन्नत पर अज्र व सवाब

हमारे हज़रत डाक्टर अ़ब्दुल हई रह. अल्लाह तआ़ला उनके दरजात बुलन्द फ़रमाए, आमीन। फ़रमाते थे कि:

"अगर एक काम तुम अपनी तरफ़ से और अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ कर लो, और वही काम तुम इत्तिबा–ए–सुन्नत की नियत से हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के बताए हुए तरीक़े के मुताबिक़ अन्जाम दे दो, दोनों में ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ महसूस

करोगे। जो काम तुम अपनी तरफ़ से और अपनी मर्ज़ी से करोगे, वह तुम्हारा अपना काम होगा, उस पर कोई अज्र व सवाब नहीं। और जो काम तुम इत्तिबा-ए-सुन्नत की नियत से करोगे तो उसमें सुन्नत की इत्तिबा का अज्र व सवाब और सुन्नत की बर्कत और नूर शामिल हो जाता है"।

हज़रत अबू बक्र और हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा के तहज्जुद का वाक़िआ

हदीस शरीफ़ में है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम रात के वक़्त गश्त करके सहाबा-ए-किराम के हालात की ख़बर-गीरी किया करते थे। एक बार जब आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम हज़रत सिद्दीक़े अक्बर रज़ियल्लाहु अन्हु के पास से गुज़रे तो आपने देखा कि वे तहज्जुद की नमाज़ पढ़ रहे हैं। और आहिस्ता आहिस्ता आवाज़ से कुरआने करीम की तिलावत फ़रमा रहे हैं। और उसके बाद हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु के पास से गुज़रे तो आप सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने देखा कि वे बहुत बुलन्द आवाज़ से तिलावत कर रहे हैं। सुबह को आपने दोनों हज़रात को बुलाया और हज़रत अबू बक्र रज़ियल्लाहु अन्हु से पूछा कि रात को तहज्जुद में आप बहुत पस्त आवाज़ में क्यों तिलावत कर रहे थे? हज़रत सिद्दीक़े अक्बर ने जवाब दिया:

"أَسْمَعْتُ مَنْ نَاجَيْتُ"

यानी मैं जिस ज़ात से मुनाजात कर रहा था, उस ज़ात को मैंने सुना दिया, उस ज़ात के लिए बलुन्द आवाज़ करने की ज़रूरत नहीं, वह तो हल्की आवाज़ को भी सुनता है। इसलिये मैं आहिस्ता आवाज़ में तिलावत कर रहा था। उसके बाद हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अन्हु से पूछा कि तुम ज़ोर से क्यों पढ़ रहे थे? उन्हों ने जवाब दिया कि:

"أُوقِظُ الْوَسْنَانَ وَأَطْرُدُ الشَّيْطَانَ"

यानी मैं सोते को जगा रहा था और शैतान को भगा रहा था, इसलिये ज़ोर से पढ़ रहा था। लेकिन हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत सिद्दीक़े अक्बर से फ़रमाया कि:

"ارفع قليلاً"

यानी तुम अपनी आवाज़ को ज़रा बुलन्द करो। और हज़रत फ़ारूक़े आज़म रज़ियल्लाहु अ़न्हु से फ़रमया कि:

"اخفض قليلاً"

यानी तुम अपनी आवाज़ थोड़ी पस्त कर दो।

हमारे बताए हुए तरीक़े के मुताबिक़ अ़मल करो

इस हदीस के तहत हदीस की शरह करने वाले उलमा ने लिखा है कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का मक़्सूद इन दोनों हज़रात को क़ुरआने करीम की इस आयत पर अ़मल कराना था:

"وَلَا تَجْهَرْ بِصَلَاتِكَ وَلَا تُخَافِتْ بِهَا وَابْتَغِ بَيْنَ ذٰلِكَ سَبِيلًا"

''यानी नमाज़ में न तो आवाज़ बुलन्द कीजिए और न बहुत ज़्यादा पस्त कीजिए और दोनों के दरमियान एक (बीच का) तरीक़ा इख़्तियार कीजिए''।

लेकिन हज़रत हकीमुल उम्मत रह. ने फ़रमाया कि:

''यह हिक्मत तो अपनी जगह दुरुस्त है लेकिन इसमें एक बहुत बड़ी हिक्मत यह थी कि उन हज़रात को यह तालीम देनी थी कि ऐ सिद्दीक़े अक्बर और ऐ फ़ारूक़े आज़म! अब तक तुम दोनों अपनी राये से अपनी मर्ज़ी से एक तरीक़ा मुतअ़य्यन करके पढ़ रहे थे, और आइन्दा जो तिलावत करोगे वह मेरे बताए हुए तरीक़े की इत्तिबा में मेरे कहने के मुताबिक़ करोगे, और अब जो रास्ता तुम इख़्तियार करोगे वह इत्तिबा–ए–सुन्नत का रास्ता होगा और फिर इसकी वजह से तुम्हें इत्तिबा–ए–सुन्नत का नूर और उसकी बरकतें हासिल होंगी, और इस पर अज्र व सवाब भी मिलेगा''।

इसलिये इस हदीस से यह उसूल मालूम हुआ कि हर काम करते वक़्त सिर्फ़ यह नियत न हो कि बस यह काम किसी तरह भी पूरा हो जाए, बल्कि उसके अन्दर तरीक़ा भी वो इख़्तियार किया जाए जो मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सिखाया है। और अल्फ़ाज़ भी जहां तक हो सके वही इख़्तियार किये जाएं जो मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने सिखाए हैं। इसलिये कि उन अल्फ़ाज़ में नूर और बर्कत है।

मैं सच्चे खुदा का रसूल हूं

हज़रत जाबिर बिन सुलैम रज़ियल्लाहु अ़न्हु फ़रमाते हैं कि जब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने मुझे सलाम करने का तरीक़ा सिखला दिया तो मैंने सवाल किया कि क्या आप अल्लाह के रसूल हैं? हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

"मैं उस अल्लाह का रसूल हूं कि अगर तुम्हें कोई तक्लीफ़ पहुंच जाए या कोई मुसीबत पहुंचे और उस मुसीबत के दूर करने के लिए उस अल्लाह को पुकारो तो अल्लाह तआ़ला उस मुसीबत और तक्लीफ़ को दूर कर देते हैं। मैं उस अल्लाह का रसूल हूं"।

ज़माना-ए-जाहिलिय्यत में लोग बुतों की पूजा करते थे। उनको खुदा बनाया हुआ था। लेकिन उनमें एक सिफ़त यह थी कि जब किसी मुसीबत में फंस जाते तो उस वक़्त सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही को पुकारते थे। क़ुरआने करीम का इरशाद है:

"وَاِذَا رَكِبُوْا فِى الْفُلْكِ دَعَوُا اللّٰهَ مُخْلِصِيْنَ لَهُ الدِّيْنَ"

"यानी जब वे लोग कश्ती में सफ़र करते हैं, और समुन्दर में तूफ़ान आ जाता है, और बचने का कोई रास्ता नहीं होता तो उस वक़्त उनको लात, उज़्ज़ा, मनात वग़ैरह कोई बुत याद नहीं आता, उस वक़्त सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही को पुकारते हैं कि या अल्लाह! हमें इस मुसीबत से नजात दे दीजिए"।

इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया कि मैं इन झूठे खुदाओं का रसूल नहीं हूं बल्कि

सच्चे ख़ुदा का रसूल हूं।

फिर आपने फ़रमाया कि:

मैं उस अल्लाह का रसूल हूं कि जब तुम्हें क़हत (काल) पड़ जाए और उस क़हत के दूर करने के लिए उस अल्लाह को पुकारो तो अल्लाह तआला उस क़हत को दूर फ़रमा देते हैं। और मैं उस अल्लाह का रसूल हूं कि जब तुम किसी चटियल मैदान और बयाबान में सफ़र कर रहे हो और वहां तुम्हारी ऊंटनी गुम हो जाए और तुम अल्लाह को पुकारो कि या अल्लाह! मेरी ऊंटनी गुम हो गई है, वह मुझे वापस मिल जाए, तो अल्लाह तआला उस ऊंटनी को तुम्हारे पास लौटा देते हैं"।

बड़ों से नसीहत तलब करनी चाहिए

फिर हज़रत जाबिर बिन सुलैम रज़ियल्लाहु अन्हु ने फ़रमाया कि या रसूलल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम मुझे कोई नसीहत फ़रमाइये! इसी से बुज़ुर्गों ने यह उसूल बताया है कि जब कोई शख़्स किसी बड़े के पास जाए, और ख़ास तौर पर ऐसे बड़े के पास जो दीन में भी कोई मक़ाम रखता हो, तो उस से नसीहत तलब करे, इसलिये कि कभी कभी नसीहत का कलिमा इस अन्दाज़ से अदा होता है कि वह इन्सान के दिल पर असर कर जाता है, और उस से इन्सान के दिल की दुनिया बदल जाती है, और काया पलट जाती है। उसकी वजह यह है कि जब आदमी सच्चे दिल से सच्ची तलब के साथ किसी बड़े से नसीहत तलब करता है तो अल्लाह तआला उस बड़े के दिल में ऐसी ही नसीहत डालते हैं जो उस वक़्त उस शख़्स के लिए मुनासिब होती है। याद रखो, किसी बुज़ुर्ग के पास उसकी ज़ात में कुछ नहीं रखा, देने वाले तो अल्लाह तआला हैं। लेकिन अगर कोई सच्ची तलब लेकर किसी के पास जाता है तो अल्लाह तआला मतलूब की ज़बान पर वह बात जारी फ़रमा देते हैं जो उसके हक़ में फ़ायदे मन्द होती है, और उसकी ज़िन्दगी बदल

जाती है। इसलिये फ़रमाया कि जब किसी के पास जाओ तो उस से नसीहत तलब किया करो।

पहली नसीहत

बहर हाल, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने उनको नसीहत फ़रमाते हुए फ़रमाया:

"لا تسبنّ احدا"

"यानी किसी को गाली न देना, किसी की बदगोई न करना"

गोया कि हर वह बात जो गाली या बदगोई की तारीफ़ में आती हो, ऐसी बात किसी के लिए इस्तेमाल न करना। देखिए हज़रत जाबिर बिन सुलैम रज़ियल्लाहु अ़न्हु की हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से पहली मुलाक़ात है, उसमें पहली नसीहत यह फ़रमाई कि दूसरों को बुरा न कहो। इस से अन्दाज़ा लगाइये कि हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के नज़्दीक दूसरे शख़्स के दिल दुखाने से बचने की कितनी अहमियत है। और यह कि एक मुसलमान की ज़बान से कोई भद्दा और बुरा कलिमा किसी के लिए न निकले।

हज़रत सिद्दीक़े अक्बर रज़ि. का एक वाक़िआ

हज़रत सिद्दीक़े अक्बर रज़ियल्लाहु अ़न्हु को एक बार अपने ग़ुलाम पर ग़ुस्सा आ गया, और ग़ुस्से में उस ग़ुलाम के लिए कोई लानत का कलिमा ज़बान से निकाल दिया। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने जब कलिमा सुना, फ़रमाया कि:

"لَعَّانِيْنَ وَصِدِّيْقِيْنَ كَلَّا وَرَبِّ الْكَعْبَةِ"

"यानी आदमी लानत भी करे और सिद्दीक़ भी हो, काबे के रब की क़सम ऐसा नहीं हो सकता। इसलिये कि जो सिद्दीक़ होता है वह लानत नहीं किया करता"।

देखिए: हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने हज़रत

अबू बक्र सिद्दीक रज़ियल्लाहु अन्हु को इतने सख़्त अल्फ़ाज़ के साथ तंबीह फ़रमाई। और हज़रत सिद्दीके अक्बर रज़ियल्लाहु अन्हु ने उसकी इस तरह तलाफ़ी की कि उस ग़ुलाम ही को कफ़्फ़ारे के तौर पर आज़ाद कर दिया।

इस नसीहत पर ज़िन्दगी भर अमल किया

इसलिये किसी को बुरा कहना और उसके लिए ग़लत अल्फ़ाज़ बोलना ठीक नहीं। आज हमारी ज़बानों पर इस किस्म के बुरे अल्फ़ाज़ चढ़ गये हैं, जैसे ख़बीस, अहमक़, कम्बख़्त वग़ैरह, ये अल्फ़ाज़ किसी मुसलमान के लिए इसतेमाल करना हराम है ही, बल्कि किसी जानवर और काफ़िर के लिए भी इन अल्फ़ाज़ को इस्तेमाल करना अच्छा नहीं है। चुनांचे हज़रत जाबिर बिन सुलैम रज़ियल्लाहु अन्हु फ़रमाते हैं कि:

"इस नसीहत को सुनने के बाद मैंने फिर कभी न तो किसी ग़ुलाम को, न किसी आज़ाद को, न ऊंट को और न बकरी को कोई बुरा कलिमा नहीं कहा"।

ये थे सहाबा–ए–किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम कि जो नसीहत सुन ली उसको दिल पर नक़्श कर दिया और सारी ज़िन्दगी का अमल का दस्तूर बना लिया।

अमल को बुरा कहो, ज़ात को बुरा न कहो

लेकिन इस नसीहत के एक मायने यह भी हैं कि किसी को बुरा न कहो, यानी कोई शख़्स चाहे कितना ही बुरा काम रहा हो, गुनाह कर रहा हो, ना–फ़रमानी कर रहा हो, तो उसके फ़ेल को बुरा समझो और बुरा कहो, लेकिन उसकी ज़ात को बुरा न कहो, उसकी ज़ात को हक़ीर और ज़लील न समझो। इसलिये ज़ात को बुरा कहना दुरुस्त नहीं। इसलिये कि तुम्हें क्या मालूम कि उसका अन्जाम कैसा होने वाला है। बेशक आज वह शख़्स बुरे काम कर रहा है और उसकी वजह से तुम उसको बुरा समझ रहे हो, लेकिन क्या मालूम कि

अल्लाह तआला उसकी इस्लाह फ़रमा दे और मरने से पहले उसको तौबा की और अच्छे आमाल की तौफ़ीक़ दे दे, और जब अल्लाह तआला के पास पहुंचे तो बिल्कुल पाक साफ़ होकर पहुंचे। इसलिये किसी शख़्स की ज़ात को यहां तक कि काफ़िर की ज़ात को भी बुरा न समझो, इसलिये कि क्या मालूम कि अल्लाह तआला उसको ईमान की तौफ़ीक़ दे दे और फिर वह तुम से भी आगे निकल जाए। हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमायाः

"العبرة بالخواتيم"

"यानी एतिबार ख़ात्मे का है कि ख़ात्मा किस हालत पर हुआ?"।

अगर ईमान और नेक अमल पर ख़ात्मा हुआ तो वह अल्लाह तआला के यहां मक़्बूल है, वह तुम से भी आगे निकल गया।

एक चरवाहे का अजीब वाक़िआ

ग़ज़्वा-ए-ख़ैबर के मौक़े पर एक चरवाहा हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की ख़िदमत में आया, वह यहूदियों की बकरियां चराया करता था, उस चरवाहे ने देखा कि ख़ैबर से बाहर मुसलमानों का लश्कर पड़ाव डाले हुए है। उसके दिल में ख़्याल आया कि मैं जाकर उनसे मुलाक़ात करूं और देखूं कि ये मुसलमान क्या कहते हैं और क्या करते हैं? चुनांचे वह बकरियां चराता हुआ मुसलमानों के लश्कर में पहुंचा और उनसे पूछा कि तुम्हारे सरदार कहां हैं? सहाबा-ए-किराम ने उसको बताया कि हमारे सरदार मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम उस ख़ेमे के अन्दर हैं। पहले तो उस चरवाहे को यक़ीन नहीं आया, उसने सोचा कि इतने बड़े सरदार एक मामूली ख़ेमे में कैसे बैठ सकते हैं। उसके ज़ेहन में यह था कि जब आप इतने बड़े बादशाह हैं तो बहुत ही शान व शौकत और ठाट बाट के साथ रहते होंगे, लेकिन वहां तो खजूर के पत्तों की चटाई से बना हुआ ख़ेमा था। ख़ैर वह उस ख़ेमे के अन्दर आप से मुलाक़ात के लिए दाख़िल हुआ और आप से मुलाक़ात की, और पूछा

कि आप क्या पैग़ाम लेकर आए हैं? और किस बात की दावत देते हैं? हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उसके सामने इस्लाम और ईमान की दावत रखी और इस्लाम का पैग़ाम दिया। उसने पूछा कि अगर मैं इस्लाम की दावत क़ुबूल कर लूं तो मेरा क्या अन्जाम होगा? और क्या रुतबा होगा? हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

"इस्लाम लाने के बाद तुम हमारे भाई बन जाओगे, और हम तुम्हें गले से लगायेंगे"।

उस चरवाहे ने कहा कि आप मुझ से मज़ाक़ करते हैं, मैं कहां और आप कहां! मैं एक मामूली चरवाहा हूं और मैं सियाह फ़ाम (हब्शी) इन्सान हूं, मेरे बदन से बदबू आ रही है। ऐसी हालत में आप मुझे कैसे गले लगायेंगे? हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

"हम तुम्हें ज़रूर गले लगायेंगे, और तुम्हारे जिस्म की सियाही को अल्लाह तआला रोशनी और चमक से बदल देंगे, और अल्लाह तआला तुम्हारे जिस्म से उठने वाली बदबू को ख़ुशबू से तब्दील कर देंगे"।

यह सुन कर वह फ़ौरन मुसलमान हो गया और कलिमा-ए-शहादतः

"اشهدان لا اله الا الله واشهد ان محمدًا رسول الله"

"अश्हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन्-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाहि"

पढ़ लिया, फिर हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से पूछा कि या रसूलल्लाह! अब मैं क्या करूं? आपने फ़रमाया किः

"तुम ऐसे वक़्त इस्लाम लाए हो कि न तो इस वक़्त किसी नमाज़ का वक़्त कि तुम से नमाज़ पढ़वाऊं, और न ही रोज़े का ज़माना है कि तुम से रोज़े रखवाऊं, ज़कात तुम पर फ़र्ज़ नहीं है,

इस वक़्त तो सिर्फ़ एक ही इबादत हो रही है जो तलवार की छाओं में अन्जाम दी जाती है, वह है अल्लाह के रास्ते में जिहाद"।

उस चरवाहे ने कहा कि या रसूलल्लाह! मैं इस जिहाद में शामिल हो जाता हूं लेकिन जो शख़्स जिहाद में शामिल होता है उसके लिए दो में से एक सूरत होती है, या ग़ाज़ी या शहीद। तो अगर मैं इस जिहाद में शहीद हो जाऊं तो आप मेरी कोई ज़मानत लीजिए, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

"मैं इस बात की ज़मानत लेता हूं कि अगर तुम इस जिहाद में शहीद हो गये तो अल्लाह तआ़ला तुम्हें जन्नत में पहुंचा देंगे, और तुम्हारे जिस्म की बदबू को खुशबू से बदल देंगे, और तुम्हारे चेहरे की सियाही (काले पन) को सफ़ेदी में तब्दील फ़रमा देंगे"।

बकरियां वापस करके आओ

चूंकि वह चरवाहा यहूदियों की बकरियां चराता हुआ वहां पहुंचा था, इसलिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

"तुम यहूदियों की जो बकरियां लेकर आए हो, इनको जाकर वापस कर दो, इसलिये कि ये बकरियां तुम्हारे पास अमानत हैं"।

इस से अन्दाज़ा लगायें कि जिन लोगों के साथ जंग हो रही है, जिनका घेराव किया हुआ है, उनका माल माले ग़नीमत है, लेकिन चूंकि वह चरवाहा बकरियां मुआ़हदे पर लेकर आया था, इसलिये आपने हुक्म दिया कि पहले वे बकरियां वापस करके आओ, फिर आकर जिहाद में शामिल होना। चुनांचे उस चरवाहे ने जाकर बकरियां वापस कीं और वापस आकर जिहाद में शामिल हुआ और शहीद हो गया।

उसको जन्नतुल फ़िरदौस में पहुंचा दिया गया है

जब जंग ख़त्म हो गयी तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम लश्कर का जायज़ा लेने लगे। एक जगह आपने देखा कि

सहाबा-ए-किराम का मजमा इकट्ठा है। जब आप क़रीब पहुंचे तो उन से पूछा कि क्या बता है? सहाबा-ए-किराम ने फ़रमाया कि जो लोग जंग में शहीद हो गए हैं उनमें एक ऐसा आदमी भी है जिसको हम में से कोई नहीं पहचानता, आपने फ़रमाया मुझे दिखाओ, जब आपने देखा तो फ़रमाया कि:

"तुम इसको नहीं पहचानते मगर मैं इस शख़्स को पहचानता हूं, यह चरवाहा है, और यह वह अजीब व ग़रीब बन्दा है जिस ने अल्लाह की राह में एक भी सज्दा नहीं किया। और मैं इस बात की गवाही देता हूं कि अल्लाह तआला ने इसको सीधा जन्नतुल् फ़िरदौस में पहुंचा दिया है। और मेरी आंखें देख रही हैं कि फ़रिश्ते इसको गुस्ल दे रहे हैं, और इसकी सियाही सफ़ेदी में बदल गयी है, और इसकी बदबू ख़ुशबू से तब्दील हो गयी है"।

एतिबार ख़ात्मे का है

देखिए: अगर कुछ वक़्त पहले उस चरवाहे को मौत आ जाती तो सीधा जहन्नम में चला जाता। और अब इस हालत में मौत आई कि ईमान ला चुका है, और सरकारे दो आलम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का गुलाम बन चुका है, तो अब अल्लाह तआला ने इतना बड़ा इन्क़िलाब पैदा फ़रमा दिया। इसलिये फ़रमाया:

"العبرة بالخواتيم"

एतिबार ख़ात्मे का है। इसलिये बड़े बड़े लोग कांपते रहे और यह दुआ करते रहे कि या अल्लाह! ख़ात्मा अच्छा अ़ता फ़रमाइए। ईमान पर ख़ात्मा अ़ता फ़रमाइए। किस बात पर इन्सान नाज़ करे, फ़ख़्र करे और इतराए, इसलिये कि क्या मालूम कि कल क्या होने वाला है। इसी लिये फ़रमाया कि किसी को भी हक़ीर और गिरा हुआ मत समझो।

एक बुज़ुर्ग का नसीहत भरा वाक़िआ

मेरे वालिद माजिद हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ी साहिब रह. ने

एक बुज़ुर्ग का वाकिआ सुनाया कि एक अल्लाह वाले बुज़ुर्ग कहीं जा रहे थे, कुछ लोगों ने उनका मज़ाक़ उड़ाया। जिस तरह आज कल सूफ़ी और सीधे सादे मौलवी का लोग मज़ाक़ उड़ाते हैं। बहर हाल: मज़ाक़ करने के लिए एक शख़्स ने उन बुज़ुर्ग से पूछा कि यह बताइए कि आप अच्छे हैं या मेरा कुत्ता अच्छा है? इस सवाल पर उन बुज़ुर्ग को न तो गुस्सा आया, न तबीयत में कोई तब्दीली और ना गवारी पैदा हुई और जवाब में फ़रमाया कि अभी तो मैं नहीं बता सकता कि मैं अच्छा हूं या तुम्हारा कुत्ता अच्छा है। इसलिये कि पता नहीं कि किस हालत में मेरा इन्तिक़ाल हो जाए। अगर ईमान और नेक अ़मल पर मेरा ख़ात्मा हो गया तो मैं उस सूरत में तुम्हारे कुत्ते से अच्छा हूंगा, और खुदा न करे अगर मेरा ख़ात्मा बुरा हो गया तो यक़ीनन तुम्हारा कुत्ता मुझ से अच्छा है। इसलिये कि वह जहन्नम में नहीं जायेगा और उसको कोई अ़ज़ाब नहीं दिया जायेगा। अल्लाह के बन्दों का यही हाल होता है कि वे ख़ात्मे पर निगाह रखते हैं। इसी लिये फ़रमाया कि किसी बद्तर से बद्तर इन्सान की ज़ात को हक़ीर मत ख़्याल करो, न उसको बुरा कहो, उसके आमाल को बेशक बुरा कहो कि वह शराब पीता है, वह कुफ़्र में मुब्तला है, लेकिन ज़ात को बुरा कहना जायज़ नहीं। जब तक यह पता न चले कि अन्जाम क्या होने वाला है।

हज़रत हकीमुल उम्मत रह. की तवाज़ो की इन्तिहा

हज़रत हकीमुल उम्मत मौलाना थानवी रह. फ़रमाते हैं कि:

"मैं हर मुसलमान को फ़िल्हाल अपने से अफ़ज़ल समझता हूं और हर काफ़िर को एहतिमालन् अपने से अफ़ज़ल समझता हूं। यानी जो मुसलमान है उसके दिल में न मालूम कितने आला दर्जे का ईमान हो, और वह मुसलमान मुझ से आगे बढ़ा हुआ हो, इसलिये मैं हर मुसलमान को अपने से अफ़ज़ल समझता हूं। और हर काफ़िर को एहतिमालन इसलिये अफ़ज़ल समझता हूं कि इस वक़्त बज़ाहिर तो

वह काफ़िर है, लेकिन क्या पता कि अल्लाह तआला उसको ईमान की तौफ़ीक़ दे दे और वह मुझ से ईमान के अन्दर आगे बढ़ जाए"।

जब हज़रत थानवी रह. यह फ़रमा रहे हैं तो हम और आप किस गिन्ती और किस लाइन में हैं।

तीन अल्लाह वाले

कुछ दिन पहले हज़रत डाक्टर हफ़ीज़ुल्लाह साहिब दारुल उलूम कराची तशरीफ़ लाए। यह हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद हसन साहिब रह. के ख़लीफ़ा हैं और उनकी बहुत सोहबत उठाई है। और हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद हसन साहिब रह. हज़रत थानवी रह. के ख़लीफ़ा और आशिके ज़ार थे, डाक्टर हफ़ीज़ुल्लाह साहिब मद्–द ज़िल्लहुम ने हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद हसन साहिब रह. का बयान किया हुआ वाक़िआ सुनाया कि हज़रत मुफ़्ती मुहम्मद हसन साहिब रह. ने फ़रमाया कि:

"हम हज़रत थानवी रह. की मज्लिस में बैठते तो हम पर एक अजीब हालत तारी रहती, वह यह कि हम में से हर शख़्स को ऐसा मालूम होता था कि मज्लिस में जितने लोग मौजूद हैं वे सब मुझ से अफ़ज़ल हैं, और मैं सब से हक़ीर और कमतर हूं, और ये सब लोग आगे बढ़े हुए हैं, मैं कितना पीछे रह गया हूं। एक दिन मैंने अपनी यह हालत हज़रत मौलाना ख़ैर मुहम्मद साहिब रह. से ज़िक्र की कि मज्लिस में बैठ कर मेरी यह हालत हो जाती है। हज़रत मौलाना ख़ैर मुहम्मद साहिब रह. भी हज़रत थानवी रह. के ख़ुलफ़ा में से हैं। हज़रत मौलाना ख़ैर मुहम्मद साहिब रह. ने फ़रमाया कि यह हालत तो मेरी भी है। चुनांचे हम दोनों हज़रत थानवी रह. की ख़िदमत में गये, और जाकर उन से अर्ज़ किया कि हज़रत! हमारी अजीब हालत है कि जब हम आपकी मज्लिस में बैठते हैं तो ऐसा लगता है कि सब हम से अफ़ज़ल हैं और हम सब से कमतर हैं। हज़रत थानवी रह. ने फ़रमाया कि तुम यह तो अपनी हालत बयान कर रहे हो, मैं सच

कहता हूं कि मेरी भी यही हालत है कि जब मैं मज्लिस में बैठता हूं तो सब मुझ से अफ़ज़ल नज़र आते हैं और मैं अपने को सब से कमतर नज़र आता हूं"।

अपने ऐबों पर नज़र करो

जिस शख़्स को अपने ऐबों का ख़्याल हो, और अल्लाह तआ़ला की बड़ाई, उसका डर और उसकी हैबत दिल पर हो, वह दूसरों की बुराई को कैसे देख सकता है। जिस शख़्स के अपने पेट में दर्द हो, वह दूसरों की छींक की तरफ़ कैसे देख सकता है कि फ़लां को छींक आ गयी है। इसी तरह जिस शख़्स पर अल्लाह तआ़ला की बड़ाई और उसका डर ग़ालिब होता है वह दूसरों की ज़ात को कैसे हक़ीर और बुरा समझ सकता है। उसको तो अपनी फ़िक्र पड़ी हुई है। बहर हाल इस हदीस में यह उसूल बता दिया कि किसी भी इन्सान की ज़ात को हक़ीर मत समझो। अगर किसी का अ़मल ख़राब है तो उसके अ़मल को ख़राब कह सकते हो, बुरा कह सकते हो, इन्सान को बुरा न कहो। क्या पता अल्लाह तआ़ला उसको नेक आमाल की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमा दे, और वह तुम से आगे निकल जाए। इसलिये न अपने को बड़ा समझो और न दूसरे को हक़ीर समझो।

हज्जाज बिन यूसुफ़ की ग़ीबत करना

ये सब दीन की बातें हैं। दीन की इन बातों को हम लोग भुला बैठे हैं, इबादात, नामज़, रोज़ा, तस्बीह वग़ैरह को तो हम दीन का हिस्सा ख़्याल करते हैं, लेकिन इन बातों को दीन से ख़ारिज कर दिया है। और जिस शख़्स के बारे में जो मुंह में आता है कह देते हैं। हालांकि अल्लाह तआ़ला की बारगाह में एक एक चीज़ का रिकार्ड हो रहा है। अल्लाह पाक का इरशाद है:

"مَا يَلْفِظُ مِنْ قَوْلٍ إِلَّا لَدَيْهِ رَقِيبٌ عَتِيدٌ"

"यानी वह कोई लफ़्ज़ मुंह से नहीं निकालने पाता मगर उसके पास ही एक ताक लगाने वाला तैयार होता है"

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु की मज्लिस में किसी शख़्स ने हज्जाज बिन यूसुफ़ की बुराई शुरू कर दी। हज्जाज बिन यूसुफ़ को कौन नहीं जानता, उसके ज़ुल्म व सितम बहुत मश्हूर हैं, सैंकड़ों मुसलमनों को बे गुनाह क़त्ल किया।

हज़रत अ़ब्दुल्लाह बिन उमर रज़ियल्लाहु अ़न्हु ने उस शख़्स से ख़िताब करते हुए फ़रमाया किः

"देखोः यह तुम हज्जाज बिन यूसुफ़ की ग़ीबत कर रहे हो, और यह मत समझना कि अगर हज्जाज बिन यूसुफ़ की गर्दन पर सैंकड़ों इन्सानों का ख़ून है तो उसकी ग़ीबत हलाल हो गई। जब अल्लाह तआ़ला हज्जाज बिन यूसुफ़ से सैंकड़ों इन्सानों के ख़ून का बदला लेंगे तो उस वक़्त तुम से भी हज्जाज बिन यूसुफ़ की ग़ीबत करने की पूछ ताछ और पकड़ होगी"।

इसलिये बिला वजह किसी की ग़ीबत न करें। हां अगर कहीं दूसरे को तक्लीफ़ से बचाने के लिए बताने की ज़रूरत पड़े तो इस तरह कह दिया जाए कि भाई फ़लां शख़्स से ज़रा होशियार रहना, और उस से बच कर रहना। लेकिन बिला वजह मज्लिस जमाई जाए, और उसमें ग़ीबत की जाए, यह दुरुस्त नहीं।

अंबिया अ़लैहिमुस्सलाम का शेवा

अंबिया अ़लैहिमुस्सलाम का शेवा तो यह रहा है कि कभी गाली का जवाब भी गाली से नहीं दिया। हालांकि शरीअ़त ने इसकी इजाज़त दी है कि जितना तुम पर ज़ुल्म किया गया है, तुम भी उतना बदला ले सकते हो। लेकिन अंबिया अ़लैहिमुस्सलाम ने कभी गाली का बदला गाली से नहीं दिया। क़ौम की तरफ़ से नबी को कहा जा रहा है किः

"اِنَّا لَنَرَاكَ فِیْ سَفَاهَةٍ وَّ اِنَّا لَنَظُنُّكَ مِنَ الْكَاذِبِيْنَ"

"तुम बेवक़ूफ़ हो, हिमाक़त में मुब्तला हो, और हमारा ख़्याल यह है कि तुम झूठे हो"।

हम जैसा कोई होता तो जवाब में कहता कि तुम अहमक, तुम्हारा बाप अहमक, लेकिन नबी का जवाब यह था किः

"ऐ मेरी कौम, मैं बेवकूफ़ नहीं हूं बल्कि मैं परवर्दिगार की तरफ़ से रसूल बनाकर भेजा गया हूं"।

हज़रत शाह इस्माईल शहीद रह. का वाकिआ

हज़रत शाह इस्माईल शहीद रह. जो शाही ख़ानदान के फ़र्द हैं। अल्लाह तआला ने उनके दिल में दीन की तड़प अता फ़रमाई थी और दीन की बात लोगों तक पहुंचाने के लिए सीने में आग लगी हुई थी। और शिर्क और बिद्अतों के ख़िलाफ़ आपने जिहाद किया। लोग ऐसे आदमी के दुश्मन भी हो जाते हैं। एक दिन दिल्ली की जामा मस्जिद में तक़रीर फ़रमा रहे थे तो एक आदमी ने हज़रत को तक्लीफ़ पहुंचाने के लिए भरे मजमे में खड़े होकर कहा किः

"मौलाना! हमने सुना है कि आप हरामज़ादे हैं?"

अन्दाज़ा लगाइये, कि इतने बड़े आलिम और शाही ख़ानदान के एक फ़र्द हैं, उनको इतनी भद्दी गाली दे दी। कोई और होता तो न जाने वह उस कहने वाले पर कितना गुस्सा निकालता। वह अगर छोड़ देता तो उसके साथी उसकी तिक्का बोटी कर देते। लेकिन यह पैग़म्बरों के वारिस हैं, चुनांचे जवाब में फ़रमायाः

"आपको ग़लत इत्तिला मिली है, मेरी मां के निकाह के गवाह तो अब भी दिल्ली में मौजूद हैं"।

ये हैं पैग़म्बरों जैसे अख़्लाक़ और पैग़म्बराना सीरत कि गाली का जवाब भी गाली से नहीं दिया जा रहा है।

दूसरी नसीहत

उसके बाद हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने उनको दसूरी नसीहत यह फ़रमाई किः

"किसी भी नेकी के काम को हरगिज़ हक़ीर मत समझो, बल्कि

जिस वक़्त जिस नेक काम का मौक़ा आ जाए, और उसके करने की तौफ़ीक़ हो जाए तो उसको ग़नीमत समझ कर कर लो"।

शैतान का दाव

इसके ज़रिये हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने शैतान के एक बहुत बड़े दाव को ख़त्म फ़रमा दिया। शैतान का दाव यह होता है कि जब किसी शख़्स के दिल में किसी नेक काम का जज़्बा और ख़्याल पैदा होता है कि फ़लां नेक काम कर लूं तो शैतान यह वस्वसा डालता है कि मियां! यह छोटा सा नेक काम करके तुम कौन सा तीर मार लोगे। तुम्हारी सारी ज़िन्दगी तो ना जायज़ कामों में गुज़री है, अगर तुमने यह छोटा सा नेक काम कर लिया तो उसके नतीजे में कौन सी तुम्हें जन्नत मिल जायेगी इसलिये इस नेकी को भी छोड़ो। इस तरह शैतान उस नेकी से भी इन्सान को महरूम करा देता है। हालांकि यह शैतान का बहुत बड़ा धोखा है। इसलिये हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमा दिया कि किसी भी नेकी के काम को हक़ीर समझ कर मत छोड़ो, बल्कि उसको कर गुज़रो।

छोटा अ़मल भी नजात का सबब है

और इस नसीहत में बेशुमार हिक्मतें हैं। पहली हिक्मत तो यह है कि जिस नेक काम को तुम हक़ीर समझ कर छोड़ रहे हो, क्या पता कि वह काम अल्लाह तआ़ला के यहां बड़ा अ़ज़ीम हो, और उस काम को अल्लाह तआ़ला अपनी बारगाह में क़ुबूलियत से नवाज़ दें तो शायद वही काम तुम्हारी नजात का ज़रिया बन जाए। हदीसों में और बुज़ुर्गाने दीन के वाक़िआत में बहुत से ऐसे वाक़िआत मन्क़ूल हैं कि अल्लाह तआ़ला ने एक छोटे से अ़मल पर मग़फ़िरत फ़रमा दी।

एक फ़ाहिशा औ़रत का वाक़िआ

बुख़ारी शरीफ़ की एक हदीस में यह वाक़िआ आता है कि:

"एक फ़ाहिशा औ़रत रास्ते से गुज़र रही थी, रास्ते में देखा कि एक कुंए के पास एक कुत्ता हांप रहा है और पानी पीना चाहता है,

लेकिन पानी इतना नीचे है कि वहां तक पहुंच नहीं सकता। उस औरत को उस कुत्ते पर तरस आया और उसने सोचा कि यह कुत्ता अल्लाह की मख़्लूक़ है और प्यास से बेचैन है, इस कुत्ते को पानी पिलाना चाहिए। उसने डोल तलाश किया तो कोई डोल वहां नहीं मिला, आख़िर उसने अपने पांव से एक चम्ड़े का मोज़ा उतारा और किसी तरह उस कुंए से पानी भरा और उस कुत्ते को पिला दिया और उसकी प्यास दूर कर दी। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम फ़रमाते हैं कि अल्लाह तआ़ला को उसका यह अ़मल इतना पसन्द आया कि सिर्फ़ इस अ़मल पर उसकी मग़फ़िरत फ़रमा दी।

बताइए! अगर वह औरत यह सोचती कि मैं तो एक फ़ाहिशा औरत हूं, मैं तो जहन्नम की हक़दार हूं। अगर मैंने कुत्ते को पानी पिलाने का यह छोटा सा अ़मल भी कर लिया तो कौन सा इन्क़िलाब आ जायेगा। अगर वह यह सोचती तो इस अ़मल से महरूम हो जाती और अल्लाह तआ़ला के यहां उसकी नजात न होती। बहर हालः अल्लाह तआ़ला ने इस अ़मल पर उसकी नजात फ़रमा दी।

मग़फ़िरत के भरोसे पर गुनाह मत करो

लेकिन इस वाक़िए से कोई यह न समझ बैठे कि बस अब जितने चाहो गुनाह करते रहो, सारी ज़िन्दगी गुनाहों में गुज़ार दो। बस एक दिन प्यासे कुत्ते को पानी पिला देंगे तो सब गुनाह माफ़ हो जायेंगे। यह सोच बिल्कुल ग़लत है। इसलिये कि एक तो अल्लाह तआ़ला का क़ानून है, और एक अल्लाह तआ़ला की रहमत है। अल्लाह तआ़ला का क़ानून तो यही है कि जो शख़्स गुनाह करेगा, उसको गुनाह का अ़ज़ाब भुगतना पड़ेगा। और अल्लाह तआ़ला की रहमत और करम यह है कि किसी बन्दे के किसी अ़मल की वजह से उसके गुनाह को माफ़ फ़रमा दे। लेकिन इस करम और रहमत का कुछ पता नहीं है कि किस अ़मल पर किस वक़्त होगी? और किस वक़्त नहीं होगी? इसलिये इस भरोसे पर आदमी गुनाह करता रहे कि

अल्लाह तआला के यहां कोई न कोई अमल कुबूल हो जायेगा, और गुनाह माफ़ हो जायेंगे। यह बात ठीक नहीं। हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमाया:

"العاجز من اتبع نفسه هواها وتمنّىٰ على الله" (ترمذی شریف)

"आजिज़ वह शख़्स है जो अपने को ख़्वाहिशात के पीछे लगा दे। जहां ख़्वाहिशात उसको लेजा रही हैं वह वहीं जा रहा है। और साथ में अल्लाह तआला पर आरज़ू बांधे बैठा है कि अल्लाह तआला सब माफ़ फ़रमा देंगे"।

और जब किसी से कहा जाए कि गुनाहों को छोड़ दो तो जवाब में कहता है कि अल्लाह तआला बड़े ग़फ़ूरुर्रहीम हैं, माफ़ फ़रमा देंगे। इसी को कहा जाता है कि अल्लाह तआला पर तमन्नाएं बांधता है। गोया कि वह पूरब की तरफ़ दौड़ा जा रहा है और अल्लाह से यह उम्मीद लगाए बैठा है कि अल्लाह तआला मुझे पश्चिम में पहुंचा देंगे। रास्ता तो जहन्नम का इख़्तियार कर रखा है और यह उम्मीद लगा रखी है कि अल्लाह तआला जन्नत में पहुंचा देंगे। यह तरीक़ा ठीक नहीं है। लेकिन अल्लाह तआला कभी किसी अमल की बदौलत अपनी रहमत से किसी इन्सान की मग़फ़िरत फ़रमा देते हैं। जिसका कोई क़ायदा मुक़र्रर नहीं। लेकिन कोई शख़्स इस उम्मीद पर गुनाह करता रहे कि किसी वक़्त अल्लाह तआला की रहमत हो जायेगी और मैं बच जाऊंगा, यह ठीक नहीं है। बल्कि ऐसे शख़्स पर अल्लाह तआला की रहमत भी नहीं होती जो मग़फ़िरत के भरोसे पर गुनाह करता रहे।

एक बुज़ुर्ग की मग़फ़िरत का वाक़िआ

मैंने अपने शैख़ हज़रत डा. अब्दुल हई रह. से यह वाक़िआ सुना कि:

"एक बुज़ुर्ग जो बहुत बड़े मुहद्दिस भी थे, जिन्हों ने सारी उमर हदीस की ख़िदमत में गुज़ारी। जब उनका इन्तिक़ाल हो गया तो

किसी शख़्स ने ख़्वाब में उनकी ज़ियारत की, और उनसे पूछा कि हज़रत! अल्लाह तआला ने कैसा मामला फ़रमाया। जवाब में उन्हों ने फ़रमाया कि बड़ा अजीब मामला हुआ। वह यह कि हमने तो सारी उमर इल्म की ख़िदमत में और हदीस की ख़िदमत में गुज़ारी, और पढ़ने पढ़ाने और किताबें लिखने और तक़रीर वग़ैरह में गुज़ारी। तो हमारा ख़्याल यह था कि इन आमाल पर अज्र मिलेगा, लेकिन अल्लाह तआला के सामने पेशी हुई तो अल्लाह तआला ने कुछ और ही मामला फ़रमाया। अल्लाह तआला ने मुझ से फ़रमाया कि हमें तुम्हारा एक अ़मल बहुत पसन्द आया, वह यह कि एक दिन तुम हदीस शरीफ़ लिख रहे थे, जब तुमने अपना क़लम दवात में डबो कर निकाला तो उस वक़्त एक प्यासी मख्खी आकर उस क़लम की नोक पर बैठ गई और सियाही चूसने लगी, तुम्हें उस मख्खी पर तरस आ गया। तुमने सोचा कि यह मख्खी अल्लाह की मख़्लूक़ है और प्यासी है, यह सियाही पीले तो फिर मैं क़लम से काम करूं। चुनांचे उतनी देर के लिए तुमने अपना क़लम रोक लिया और उस वक़्त तक क़लम से कुछ नहीं लिखा जब तक वह मख्खी उस क़लम पर बैठ कर सियाही चूसती रही। यह अ़मल तुमने ख़ालिस मेरी रज़ामन्दी की ख़ातिर किया, इसलिये उस अमल की बदौलत हमने तुम्हारी मग़फ़िरत फ़रमा दी, और जन्नतुल फ़िरदौस अ़ता कर दी"।

देखिए: हम तो यह सोच कर बैठे हैं कि वअ़ज़ करना, फ़त्वा देना, तहज्जुद पढ़ना, किताबें लिखना वग़ैरह वग़ैरह ये बड़े बड़े आमाल हैं, लेकिन वहां एक प्यासी मख्खी को सियाही पिलाने का अ़मल क़ुबूल किया जा रहा है। और दूसरे बड़े आमाल का कोई तज़्किरा नहीं।

हालांकि अगर ग़ौर किया जाए तो जितनी देर तक क़लम रोक कर रखा, अगर उस वक़्त क़लम न रोकते तो हदीस शरीफ़ ही का कोई लफ़्ज़ लिखते, लेकिन अल्लाह की मख़्लूक़ पर शफ़क़त की बदौलत अल्लाह ने मग़फ़िरत फ़रमा दी। अगर वह इस अ़मल को

मामूली समझ कर छोड़ देते तो यह फ़ज़ीलत हासिल न होती।

इसलिये कुछ पता नहीं कि अल्लाह तआ़ला के यहां कौन सा अ़मल मक़्बूल हो जाए। वहां क़ीमत अ़मल के बड़ा होने, साइज़ और गिन्ती की नहीं है बल्कि वहां अ़मल के वज़न की क़ीमत है, और यह वज़न इख़्लास से पैदा होता है। अगर आपने बहुत से आमाल किए, लेकिन उनमें इख़्लास नहीं था तो गिन्ती के एतिबार से तो वे आमाल ज़्यादा थे लेकिन फ़ायदा कुछ नहीं। दूसरी तरफ़ अगर अ़मल छोटा सा हो, लेकिन उसमें इख़्लास हो तो वह अ़मल अल्लाह तआ़ला के यहां बड़ा बन जाता है। इसलिये जिस वक़्त दिल में किसी नेकी का इरादा पैदा हो रहा है तो उस वक़्त दिल में इख़्लास भी मौजूद है। अगर उस वक़्त वह अ़मल कर लोगे तो उम्मीद है कि वह इन्शा अल्लाह मक़्बूल हो जायेगा। यह तो एक हिक्मत हुई।

नेकी नेकी को खींचती है

दूसरी हिक्मत यह है कि जब नेक काम करने का दिल में ख़्याल आया और उसको कर लिया, तो एक नेक काम करने के बाद दूसरे नेक काम की भी तौफ़ीक़ हो जाती है। इसलिये कि नेकी नेकी को खींचती है और बुराई बुराई को खींचती है। एक बुराई की ख़ातिर कभी कभी इन्सान को बहुत सी बुराइयां करनी पड़ती हैं। इसलिये जब तुमने एक नेक काम कर लिया तो उसकी बर्कत से अल्लाह तआ़ला और भी नेकी की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमा देते हैं। और कभी कभी एक छोटी सी नेकी की वजह से इन्सान की पूरी ज़िन्दगी बदल जाती है, और ज़िन्दगी में इन्क़िलाब आ जाता है।

नेकी का ख़्याल अल्लाह का मेहमान है

मेरे शैख़ हज़रत मौलाना मसीहुल्लाह ख़ां साहिब रह. अल्लाह तआ़ला उनकी मग़फ़िरत फ़रमाए, आमीन। फ़रमाया करते थे कि:

"दिल में जो नेक काम करने का ख़्याल आता है कि फ़लां नेक काम कर लो, उसको सूफ़िया-ए-किराम की इस्तिलाह में "वारिद"

कहते हैं, फ़रमाते थे कि यह "वारिद" अल्लाह तआला की तरफ़ से आया हुआ अल्लाह तआला का मेहमान होता है। अगर तुमने उस मेहमान की ख़ातिर की, इस तरह कि जिस नेकी का ख़्याल आया था, वह नेक काम कर लिया, तो यह मेहमान अपनी क़द्र दानी की वजह से दोबारा भी आयेगा। आज एक नेक काम की तरफ़ तवज्जोह दिलाई, कल दूसरे काम की तरफ़ तवज्जोह दिलाएगा। और इस तरह तुम्हारी नेकियों को बढ़ाता चला जायेगा। लेकिन अगर तुमने उस मेहमान की ख़ातिर मुदारात न की बल्कि उसको धुत्कार दिया, यानी जिस नेक काम करने का ख़्याल तुम्हारे दिल में आया था उसको न किया, तो फिर रफ़्ता रफ़्ता यह मेहमान आना छोड़ देगा, और फिर नेकी करने का इरादा ही दिल में पैदा नहीं होगा। नेकी के ख़्यालात आना बन्द हो जायेंगे। कुरआने करीम में इरशाद है:

"كَلَّا بَلْ رَانَ عَلَىٰ قُلُوبِهِمْ مَاكَانُوا يَكْسِبُونَ"

यानी बद आमालियों के सबब उनके दिलों पर ज़ंग लग गया और नेकी का ख़्याल भी नहीं आता। इसलिये ये छोटी छोटी नेकियां जो हैं, इनको छोड़ना नहीं चाहिए। इसलिये कि ये बड़ी नेकियों तक पहुंचा देती हैं।

शैतान का दूसरा दाव

तीसरी हिक्मत यह है कि जब इन्सान के दिल में नेक काम करने का ख़्याल आता है तो कभी कभी शैतान इस तरह भी इन्सान को बहकाता है कि यह काम बहुत अच्छा है, ज़रूर करना चाहिए। लेकिन जल्दी क्या है? कल से यह काम करेंगे, परसों से करेंगे। इसका नतीजा यह होता है कि वह नेक काम टल जाता है। इसलिये कि आज दिल में जो नेकी का जज़्बा पैदा हुआ है, मालूम नहीं कल को यह जज़्बा बाक़ी रहेगा या नहीं? कल इस नेक काम के करने का मौक़ा मिलेगा या नहीं। यह भी पता नहीं कि कल आयेगी या नहीं आयेगी। इसलिये जिस वक़्त नेकी का जज़्बा दिल में पैदा हो, उसी

वक़्त अमल कर लेना चाहिए। जैसे रास्ते में गुज़र रहे हैं, कोई तक्लीफ़ देह चीज़ पड़ी हुई नज़र आई और दिल में यह ख़्याल आया कि इसको हटाना चाहिए, उसी वक़्त उसको हटा दो। या जैसे आपने पानी पीने का इरादा किया, दिल में ख़्याल आया कि बैठ कर पीना हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की सुन्नत है, तो फ़ौरन बैठ जाओ, और बैठ कर पानी पीलो। खाना खाने के लिए बैठे, ख़्याल आया कि बिस्मिल्लाह पढ़ लूं, तो फ़ौरन पढ़ लो। इसलिये जिस किसी छोटी नेकी का ख़्याल भी दिल में आए उसको कर गुज़रो। मैंने इसी जज़्बे के तहत "आसान नेकियां" के नाम से एक छोटा सा रिसाला लिख दिया है, और उसमें उन नेकियों को लिख दिया है जो बज़ाहिर आसान और छोटी छोटी हैं लेकिन उनका अज्र व सवाब बड़ा अज़ीम है। उन पर अमल करने का एहतिमाम करे तो इन्सान बहुत सा अज्र व सवाब का ज़ख़ीरा जमा कर सकता है। ये आसान और छोटी नेकियां इन्शा अल्लाह आख़िर कार इन्सान की ज़िन्दगी में इन्क़िलाब पैदा कर देंगी। हर शख़्स उसको लेकर पढ़े और फिर एक एक नेकी को अपनी ज़िन्दगी में दाख़िल करे और उन पर अमल की कोशिश करे, तो इन्शा अल्लाह मन्ज़िल तक पहुंचा देंगी।

किसी गुनाह को छोटा मत समझो

इसी तरह एक चीज़ और है जो इसके मुक़ाबिल में है? वह यह कि जिस तरह नेकी को हक़ीर समझ कर छोड़ना नहीं चाहिए, इसी तरह किसी गुनाह को हक़ीर समझ कर इख़्तियार नहीं करना चाहिए। इसलिये कोई गुनाह चाहे वह कितना ही छोटा हो, उसके छोटा होने की वजह से उस गुनाह को मत करो। यह भी शैतान का बहुत बड़ा धोखा होता है। जैसे एक गुनाह करने का दिल में ख़्याल आया, लेकिन साथ ही यह भी ख़्याल आया कि गुनाह है, इसलिये यह नहीं करना चाहिए तो ऐसे वक़्त शैतान यह बहकाता है कि तुमने इतने बड़े बड़े गुनाह तो पहले से कर रखे हैं, अगर तुम ने यह छोटा सा

गुनाह भी कर लिया तो कौन सी क़ियामत आ जायेगी। और अगर तुम्हें गुनाह से बचना है तो बड़े बड़े गुनाहों से बचो, इस छोटे से गुनाह से क्या बच रहे हो। इसलिये इसको तो कर गुज़रो। याद रखोः कोई छोटा गुनाह मामूली समझ कर करने में वह बड़ा गुनाह बन जाता है।

छोटे गुनाह और बड़े गुनाह में फ़र्क़ करना

यह जो गुनाहों की दो क़िस्में हैं, छोटे गुनाह और बड़े गुनाह, तो छोटे का यह मतलब नहीं कि उसको कर लो और बड़े गुनाह से बचने की कोशिश करो, बल्कि दोनों गुनाह हैं। लेकिन यह छोटा गुनाह है और वह बड़ा गुनाह है। बाज़ लोग इस तहक़ीक़ में पड़े रहते हैं कि यह छोटा है या बड़ा है? उनकी तहक़ीक़ का यह मक़्सद होता है कि अगर बड़ा गुनाह है तो बचने का एहतिमाम करें, और अगर छोटा है तो कर लें। इस बारे में हज़रत थानवी रह. फ़रमाते हैं किः

"इसकी मिसाल तो ऐसी है जैसे आग का एक बड़ा अंगारा और छोटी चिंगारी, कि अगर चिंगारी है तो उसको उठा कर अपने कपड़ों की अलमारी में रख लो। इसलिये कि वह छोटी सी तो है लेकिन याद रखो! वही छोटी सी चिंगारी तुम्हारी अलमारी को जला देगी, जिस तरह बड़ा अंगारा जला डालता है। या जैसे छोटा सांप और बड़ा सांप, डस्ने में दोनों बराबर हैं। इसी तरह गुनाह छोटा हो चाहे बड़ा हो, जब वह अल्लाह तआला की ना फ़रमानी का अ़मल है तो फिर क्या छोटा और क्या बड़ा"।

गुनाह गुनाह को खींचता है

याद रखोः जिस तरह एक नेकी दूसरी नेकी को खींचती है, इसी तरह एक गुनाह दूसरे गुनाह को खींचता है। बुराई बुराई को खींचती है। आज अगर तुमने एक गुनाह कर लिया और यह सोचा कि छोटा गुनाह है, कर लो। याद रखोः वह गुनाह दूसरे गुनाह को खींचेगा,

दूसरा गुनाह तीसरे गुनाह को करायेगा, और बात फिर किसी हद पर नहीं रुकेगी। और गुनाह के मायने हैं "अल्लाह की ना फ़रमानी" अगर अल्लाह तआ़ला सिर्फ़ एक ना फ़रमानी पर पकड़ फ़रमा लें तो सिर्फ़ एक ना फ़रमानी भी जहन्नम में पहुंचाने के लिए काफ़ी है, चाहे वह ना फ़रमानी छोटी हो या बड़ी हो। फिर बचने का कोई रास्ता नहीं। इसलिये किसी गुनाह को छोटा मत समझो।

तीसरी नसीहत

तीसरी नसीहत यह फ़रमाई किः

"तुम अपने भाई से इस हालत में बात करो कि तुम्हारा चेहरा खिला हुआ हो। उसके साथ कुशादा पेशानी के साथ बात करो। हंसते चेहरे से बात करो। इसलिये कि यह भी नेकी का एक हिस्सा है"।

एक हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया किः

"अपने (मुसलमान) भाई से हंसते चेहरे के साथ मिलना भी सदक़ा है, इस पर भी इन्सान को अज्र व सवाब मिलता है"।

यह भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़ज़ीम सुन्नत है।

हज़रत जरीर बिन अ़ब्दुल्लाह रज़ियल्लाहु अ़न्हु जो ख़ास सहाबा-ए-किराम में से हैं, जिन को "इस उम्मत के यूसुफ़" कहा जाता है, इसलिये कि वह बड़े हसीन व ख़ूबसूरत थे। वह फ़रमते हैं किः

"जब भी हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम पर मेरी निगाह पड़ती तो कभी याद नहीं कि आपने तबस्सुम न फ़रमाया हो। जब कभी आप से मुलाक़ात होती तो आपके चेहरे पर तबस्सुम आ जाता, आपका चेहरा खिला हुआ होता"।

बाज़ लोग यह समझते हैं कि जब आदमी दीन की तरफ़ आये तो बिल्कुल ख़ुश्क और खुरदुरा बन जाए। और उसके चेहरे पर मुस्कुराहट न आए, इसको दीन का हिस्सा समझते हैं। मालूम नहीं कि कहां से यह बात हासिल कर ली है। हालांकि यह हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की सुन्नत के ख़िलाफ़ है। इसलिये जब किसी से मिलो तो मुस्कुराते हुए मिलो। हमारे हज़रत रह. फ़रमाया करते थे किः

"बाज़ लोग माल के कन्जूस होते हैं और बाज़ लोग मुस्कुराने के कन्जूस और बख़ील होते हैं। उनके चेहरे पर कभी तबस्सुम यानी मुस्कान ही नहीं आती। हालांकि यह तो बहुत आसान नेकी है कि जब किसी मुसलमान भाई से मुलाक़ात करो, मुस्कुराते हुए चेहरे के साथ करो, और उसका दिल ख़ुश करो। और जब तुमने उसका दिल ख़ुश कर दिया तो तुम्हारे नामा-ए-आमाल में नेकी का इज़ाफ़ा हो गया और सदक़ा लिखा गया"।

चौथी नसीहत

चौथी नसीहत यह फ़रमाई किः

"अपने नीचे के कपड़े को चाहे पाजामा हो या शलवार या तहबन्द हो, उसको आधी पिन्डली तक रखो, अगर आधी पिन्डली तक नहीं रख सकते तो टख़्नों तक रखो, और टख़्नों से नीचे पाजामा वग़ैरह ले जाने से बचो, इसलिये कि यह तकब्बुर का हिस्सा है"।

देखिएः इस हदीस में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह नहीं फ़रमाया कि तकब्बुर हो तो नीचे मत करो, और तकब्बुर न हो तो नीचे कर लो, बल्कि यह फ़रमाया कि नीचे मत करो। इसलिये कि यह तकब्बुर है। बाज़ लोग यह कह देते हैं कि हम तकब्बुर की वजह से नीचे नहीं करते बल्कि ऐसे ही या फ़ैशन की वजह से नीचे करते हैं। और जो मुमानअ़त (मनाही) है वह तकब्बुर

की वजह से है। ऐसा कहने वाले बड़े अजीब लोग हैं जिनको अपने घमण्डी न होने का इस क़द्र इत्मीनान है, हालांकि इस रूए ज़मीन पर तकब्बुर से पाक और तकब्बुर से बरी कोई ज़ात हो सकती है तो मुहम्मद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से ज़्यादा नहीं हो सकती, लेकिन आप सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने कभी यह नहीं फ़रमाया कि चूंकि मेरे अन्दर तकब्बुर नहीं है इसलिये मैं अपनी इज़ार (यानी लुंगी या पाजामा वग़ैरह) नीचे कर लेता हूं। बल्कि सारी उमर कभी टख़्नों से नीचे इज़ार नहीं किया, अगर तकब्बुर न होने की वजह से किसी के लिए टख़्नों से नीचे पाजामा या लुंगी वग़ैरह पहनना जायज़ होता तो हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के लिए इसकी इजाज़त होती। इसलिये यह ख़्याल दिल से निकाल दो। चुनांचे इस नसीहत में आपने फ़रमाया कि इस से बचो, इसलिये कि यह तकब्बुर का हिस्सा है, और अल्लाह तआला तकब्बुर और ख़ुद पसन्दी को पसन्द नहीं करते। "ख़ुद पसन्दी" के मायने हैं "अपने को दूसरों से अच्छा समझना" कि मेरे अन्दर बड़ी ख़ूबियां और कमालात हैं, यह बात अल्लाह तआला को पसन्द नहीं। अल्लाह तआला को शिकस्तगी और आजिज़ी पसन्द है। अल्लाह तआला के सामने जितना शिकस्ता और आजिज़ रहोगे, तवाज़ो करोगे, उतना ही अल्लाह तआला के यहां मक़्बूल हो जाओगे। और जहां बड़ाई और ख़ुद पसन्दी आ गई तो वह अल्लाह तआला को पसन्द नहीं।

पांचवीं और छठी नसीहत

पांचवीं और छठी नसीहत यह फ़रमाई कि:

"अगर कोई इन्सान तुम्हें गाली दे, या तुमको किसी ऐसे ऐब की वजह से आर शर्म दिलाए जो ऐब वाक़ई तुम्हारे अन्दर है, तो उसके बदले में तुम उसके उस ऐब पर आर और शर्म मत दिलाओ जो ऐब तुम उसके अन्दर जानते हो"।

यानी गाली के बदले गाली मत दो, और आर दिलाने में उसको आर मत दिलाओ। इसलिये कि उस शख़्स के गाली देने और आर दिलाने का वबाल उसके ऊपर है, उसकी पकड़ उस से होगी। और अगर तुम बदला ले लोगे तो तुम्हें कोई फ़ायदा नहीं होगा। और अगर बदला नहीं लोगे बल्कि सब्र करोगे, तो अल्लाह तआला के यहां उसका अज्रे अज़ीम मिलेगा। जैसे एक शख़्स ने तुम से कहा कि तुम बेवकूफ़ हो, तुमने जवाब में उस से कहा "तुम हो बेवकूफ़" तो यह तुम ने बदला ले लिया, अगरचे तुमने कोई ना जायज़ काम नहीं किया। लेकिन यह बताओ कि तुम्हें दुनिया या आख़िरत का क्या फ़ायदा हासिल हुआ? और अगर तुम ख़ामोश हो गये और कोई जवाब नहीं दिया तो उसके नतीजे में कुढ़न पैदा हुई और ग़ुस्सा आया, लेकिन ग़ुस्से को पी गये और सब्र से काम लिया तो उसके बारे में अल्लाह तआला का वादा है कि:

"اِنَّمَا يُوَفَّى الصَّابِرُوْنَ اَجْرَهُمْ بِغَيْرِ حِسَابٍ"

"यानी अल्लाह तआला सब्र करने वालों को बे-हिसाब अज्र अता फ़रमाते हैं"।

इसलिये अपनी ज़बान को रोक कर और नफ़्स को क़ाबू में करके बे-हिसाब अज्र कमा लें। आज हम यहां बैठ कर बे-हिसाब अज्र का अन्दाज़ा नहीं कर सकते, लेकिन जब अल्लाह तआला के सामने हाज़िर होंगे तो उस वक़्त पता चलेगा कि इस ज़बान को ज़रा सा रोक लेने से कितना बड़ा फ़ायदा हासिल हुआ। बहर हाल, हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने यह नसीहत फ़रमा दी कि गाली का जवाब गाली से मत दो। अगरचे तुम्हें बदला लेने का हक़ हासिल है, लेकिन हक़ को इस्तेमाल करने से बेहतर यह है कि माफ़ कर दो। चुनांचे कुरआने करीम का इरशाद है:

"وَلَمَنْ صَبَرَ وَغَفَرَ اِنَّ ذٰلِكَ لَمِنْ عَزْمِ الْاُمُوْرِ"

"यानी जो शख़्स सब्र करे और माफ़ कर दे तो यह अलबत्ता बड़े

हिम्मत के कामों में से है"।

दूसरी जगह इरशाद फ़रमाया:

"اِدْفَعْ بِالَّتِیْ هِیَ اَحْسَنُ فَاِذَا الَّذِیْ بَیْنَكَ وَبَیْنَهٗ عَدَاوَةٌ كَاَنَّهٗ وَلِیٌّ حَمِیْمٌ، وَمَا یُلَقّٰهَا اِلَّا الَّذِیْنَ صَبَرُوْا وَمَا یُلَقّٰهَا اِلَّا ذُوْحَظٍّ عَظِیْمٍ"

"यानी जिस ने तुम्हारे साथ बुराई की है तुम अच्छाई से उसका बदला दो। इसका नतीजा यह होगा कि जिसके साथ तुम्हारी दुश्मनी थी वह तुम्हारा दोस्त बन जायेगा। लेकिन साथ में यह भी फ़रमाया कि यह काम वही शख़्स कर सकता है जिस ने अपने अन्दर सब्र करने की आ़दत डाली हो, और वह शख़्स कर सकता है जो बहुत ख़ुश नसीब हो"।

इसलिये बदला लेने के बजाए माफ़ करने की आ़दत डालो। एक हदीस शरीफ़ में हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि:

"अल्लाह तआ़ला फ़रमाते हैं कि जो शख़्स दूसरे को माफ़ कर दे तो मैं उस शख़्स को उस दिन माफ़ कर दूंगा जिस दिन उसको माफ़ी की सब से ज़्यादा ज़रूरत होगी। और ज़ाहिर है कि आख़िरत में इन्सान को माफ़ी की सब से ज़्यादा ज़रूरत होगी"।

ये सब हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की नसीहतें हैं। अगर हम इनको अपनी ज़िन्दगी में अपना लें तो सारे झगड़े ख़त्म हो जाएं, दुश्मनियां मिट जाएं, फ़ितने ख़त्म हो जाएं। अल्लाह तआ़ला हम सब को इन नसीहतों पर अ़मल करने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

واٰخر دعوانا ان الحمد للہ رب العالمین

मुस्लिम क़ौम आज कहां खड़ी है?

विश्लेषण और अ़मल की राह

الحمد لله رب العالمين، والصلاة والسلام علىٰ سيدنا ومولانا محمد خاتم النبيين، وعلىٰ اٰله واصحابه اجمعين، وعلىٰ كل من تبعهم باحسان الىٰ يوم الدين۔ امابعد

सदरे मुह्तरम जनाब डाक्टर ज़फ़र इस्हाक़ अन्सारी साहिब और मुअ़ज़्ज़ज़ हाज़िरीन! यह मेरे लिए सआ़दत और खुश नसीबी का मौक़ा है कि मुल्क के एक अ़ज़ीम तह्क़ीक़ी इदारे के ज़ेरे साया मुल्क के अहले फ़िक्र हज़रात की महफ़िल में एक तालिब इल्म की हैसियत से शामिल होने का मौक़ा मिल रहा है। और एक ऐसे मौज़ू पर गुफ़्तगू की सआ़दत अल्लाह तआ़ला की तरफ़ से बख़्शी जा रही है जो हमारे हाल (वर्तमान काल) और मुस्तक़बिल (भविषय काल) के लिए बड़ी अहमियत का मौज़ू है। मेरे बिरादरे मुहतरम जनाब डाक्टर ज़फ़र इस्हाक़ अन्सारी साहिब ने मेरे बारे में जो बातें इरशाद फ़रमायीं, उन्हों ने अपने मेरे साथ अपने अच्छे गुमान और मुहब्बत की वजह से जिन जज़्बात और जिन उम्मीदों का इज़्हार फ़रमाया है, उनके बारे में इतना ही अ़र्ज़ कर सकता हूं कि अल्लाह तआ़ला मुझे हक़ीक़त में उनका अहल बनने की तौफ़ीक़ अ़ता फ़रमाए, आमीन।

मुस्लिम क़ौम के अलग अलग दो मुख़्तलिफ़ पहलू

जैसा कि आपके इल्म में है कि आजकी गुफ़्तगू का मौज़ू यह है कि: "उम्मते मुस्लिमा आज कहां खड़ी है?" यह एक ऐसा मौज़ू है जिसके बहुत से पहलू हैं। उम्मते मुस्लिमा सियासी एतिबार से कहां खड़ी है? आर्थिक एतिबार से कहां खड़ी है? अख़्लाक़ी एतिबार से कहां खड़ी है? ग़र्ज़ मुख़्तलिफ़ हैसियतों से इस सवाल को मुख़्तलिफ़

सूरतें दी जा सकती हैं, जिनमें से हर एक हैसियत मुफ़स्सल गुफ़्तगू की मोहताज है, और तमाम हैसियतों का एक बैठक और जल्से में इहाता मुश्किल है, इसलिये मैं इस सवाल के सिर्फ़ एक पहलू पर मुख़्तसर तौर पर कुछ अर्ज़ करना चाहता हूं, और वह यह कि उम्मते मुस्लिमा फ़िक्री एतिबार से कहां खड़ी है? आज जब हम उम्मते मुस्लिमा की मौजूदा हालत का जायज़ा लेते हैं तो दो क़िस्म के अलग अलग तास्सुरात हमारे सामने आते हैं। एक तास्सुर यह है कि उम्मते मुस्लिमा गिरावट और पस्ती का शिकार है, चुनांचे आज कल उम्मते मुस्लिमा की बद् हाली का तज़्किरा ज़बान पर आम है। लेकिन दूसरी तरफ़ इसी माहौल में इस्लामी बेदारी का तज़्किरा भी ज़ोर व शोर के साथ किया जा रहा है। पहले तास्सुर का खुलासा यह है कि उम्मते मुस्लिमा पस्ती की तरफ़ जा रही है, और बद् हाली का शिकार है, और दूसरे तास्सुर का नतीजा यह है कि उम्मते मुस्लिमा के साथ ग़ैर मामूली उम्मीदें बांधी जा रही हैं, कभी कभी पहले तास्सुर से मरऊब और मग़लूब होकर हम मायूसी का शिकार होने लगते हैं और कभी कभी दूसरे तास्सुर से असर लेकर ज़रूरत से ज़्यादा उम्मीदें बांधना शुरू कर देते हैं।

"हक़" दो इन्तिहाओं के दरमियान

मेरी नाचीज़ गुज़ारिश यह है कि हक़ इन दोनों इन्तिहाओं के दरमियान है, यह भी अपनी जगह दुरुस्त है कि हम एक उम्मत की हैसियत से ज़वाल और पस्ती का शिकार हैं। और यह भी अपनी जगह दुरुस्त है कि इसी ज़वाल और पस्ती के दौर में एक इस्लामी बेदारी की लहर पूरी इस्लमी दुनिया में महसूस हो रही है। लेकिन हमें न तो इतना मायूस और ना अम्मीदी का शिकार होना चाहिए जो हमें बे अ़मल बना दे, और न इस्लामी बेदारी के महज़ उन्वान और इस्तिलाह से मुतास्सिर होकर उस से इतनी उम्मीदें बांधनी चाहियें कि हम अपनी इस्लाह से ग़ाफ़िल हो जायें, बल्कि हक़ इन दो

इन्तिहाओं के दरमियान है। और इसी वजह से यह मौज़ू बहुत अहमियत रखता है। यह मौज़ू कि "उम्मते मुस्लिाम आज कहां खड़ी है?" अपने दामन में यह सवाल भी ख़ुद बख़ुद रखता है कि इस उम्मत को कहां जाना है? और किस तरह जाना है? इस मौज़ू पर गुफ़्तगू करते हुए मैं इन दो इन्तिहाओं से किसी क़द्र हट कर दरमियान की राह इख़्तियार करते हुए ज़ाती तौर पर यह समझता हूं कि अल्हम्दु लिल्लाह इस बात के बावजूद कि हम बहुत से शोबों और ज़िन्दगी के गोशों में न सिर्फ़ यह कि गिरावट का शिकार हैं बल्कि और गिरते ही जा रहे हैं, यह एहसास उम्मते मुस्लिमा के तक़रीबन हर ख़ित्ते में पैदा हो रहा है कि हमें अपनी असल की तरफ़ लौटना चाहिए, और एक मुसलमान की हैसियत से इस दीने इस्लाम को रूए ज़मीन पर नाफ़िज़ और लागू करना चाहिए। इसी एहसास को आज कल की इस्तिलाह में "इस्लामी बेदारी" के नाम से याद किया जाता है।

इस्लाम से दूरी की एक मिसाल

यह भी अल्लाह तआला की अजीब व ग़रीब क़ुदरत का करिश्मा है कि इस्लामी दुनिया की सियासी बागडौर जिन हाथों में है, अगर उनको देखा जाए तो ऐसा लगता है कि इस्लाम से दूरी की इन्तिहा हो चुकी है। एक वाक़िआ ख़ुद मेरे साथ पेश अया, और अगर बज़ाते ख़ुद मेरे साथ पेश न आता तो मेरे लिए शायद इस पर यक़ीन करना मुश्किल होता। लेकिन चूंकि ख़ुद मेरे साथ पेश आया इसलिये यक़ीन किए बग़ैर चारा नहीं। मेरा एक वफ़्द के साथ एक मश्हूर इस्लामी मुल्क जाना हुआ, हमारे वफ़्द की तरफ़ से यह तज्वीज़ हुई कि देश के राष्ट्रपति से मुलाक़ात के वक़्त उनकी ख़िदमत में वफ़्द की तरफ़ से क़ुरआने करीम का हदिया पेश किया जाए, लेकिन उस देश के राष्ट्रपति को तोहफ़ा पेश करने से पहले प्रोटूकोल से संपर्क करना पड़ता है, चुनांचे वफ़्द की तरफ़ से प्रोटूकोल को इत्तिला दी गयी कि

यह तोहफ़ा वफ़्द पेश करना चाहता है। एक दिन के बाद हमें मेहमानदारी करने वाले अफ़सर ने यह पैग़ाम दिया कि वफ़्द की तरफ़ से मुल्क के सद्र को क़ुरआने करीम का हदिया पेश नहीं किया जा सकता, वजह इसकी यह है कि अगर उनको यह तोहफ़ा पेश किया जायेगा तो मुल्क में बसने वाली ग़ैर मुस्लिम अल्प संखक क़ौमों के दिलों में ग़लत फ़हमियां पैदा होने की संभावना है। चुनांचे हम से माज़िरत कर ली गयी कि क़ुरआने करीम के बजाए कोई और तोहफ़ा पेश करें। सरकारी और सियासी सत्ता की सतह पर इस्लाम से जुड़ने का तो यह हाल है।

इस्लामी बेदारी (जागरूकता) की एक मिसाल

लेकिन यह जवाब सुनने के बाद उसी दिन शाम को एक मस्जिद में नमाज़ पढ़ने के लिए जाने का इत्तिफ़ाक़ हुआ, मस्जिद नौजवान लड़कों से भरी हुई थी, बड़ी उम्र के अफ़राद के मुक़ाबले में नौजवानों की तादाद ज़्यादा थी, नमाज़ के बाद वे सारे नौजवान एक जगह बैठ कर अपनी ज़बान में गुफ़्तगू कर रहे थे, पता करने से मालूम हुआ कि यह उनका रोज़ाना का मामूल है कि नमाज़ के बाद दीन से मुताल्लिक़ कोई किताब पढ़ कर सुनाते हैं और आपस में उसका मुज़ाकरा करते हैं। लोगों ने यह बताया कि यह सिलसिला सिर्फ़ इस एक मस्जिद के साथ ख़ास नहीं, बल्कि पूरे मुल्क की तमाम मस्जिदों में यह तरीक़ा जारी है, जब्कि इन नौजवानों की रस्मी तन्ज़ीम कोई नहीं है, और न रस्मी तौर पर आपस में राब्ते का कोई ताल्लुक़ है। इसके बावजूद हर मस्जिद में यह सिलसिला क़ायम है।

कुल मिला कर इस्लामी दुनिया की सूरते हाल

इस से आप अन्दाज़ा कर सकते हैं कि सियासी सतह पर और इक़्तिदार (यानी सत्ता) की सतह पर इस्लाम के साथ क्या रवैया है, और नई नसल और नौजवानों में इस्लाम के साथ ताल्लुक़ और जुड़ने का कैसा मुज़ाहरा हो रहा है। बहर हाल, कुल मिला कर

इस्लामी दुनिया के हालात पर ग़ौर करने से यह नज़र आयेगा कि सियासी इक़्तिदार आम तौर पर इस्लाम के बारे में या तो मुख़ालिफ़ाना रवैया रखता है, या कम से कम ला ताल्लुक़ है। उसको इस्लाम से कोई सरोकार नहीं, इस से कोई दिलचस्पी नहीं। इल्ला माशा अल्लाह। लेकिन इसके साथ साथ अवाम के अन्दर, ख़ास तौर पर नौजवानों के अन्दर एक बेदारी (जागरूकता) की लहर है, और इस्लामी दुनिया के मुख़्तलिफ़ ख़ित्तों में यह तहरीक अमली तौर पर चल रही है कि इस्लाम को अपनी ज़िन्दगी के अन्दर नाफ़िज़ और जारी किया जाए, और इसको अमली तौर पर क़ायम किया जाए।

इस्लाम के नाम पर क़ुरबानियां

यह दुरुस्त है कि इस रास्ते में क़ुरबानियों की कमी नहीं, बहुत से मुल्कों में इस्लाम को नाफ़िज़ करने के लिए जो तहरीकें चली हैं, और इस अन्दाज़ से चली हैं कि लोगों ने उनके लिए अपनी जान, माल और जज़्बात की क़ीमती क़ुरबानियां पेश कीं। सच्ची बात यह है कि वे हमारे लिए क़ाबिले फ़ख़्र हैं। मिस्र में, अल् जज़ायर में और दूसरे इस्लामी मुल्कों में जो क़ुरबानियां दी गयीं, ख़ुद हमारे मुल्क के अन्दर इस्लाम के नाम पर, इस्लामी शरीअत के लागू करने की ख़ातिर लोगों ने अपनी जान व माल की क़ुरबानियां पेश कीं। वह एक ऐसी मिसाल है कि जिस पर उम्मत बिला शुबह फ़ख़्र कर सकती है, और इस से यह ज़ाहिर होता है कि आज भी अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से दिलों में ईमान की चिंगारी बाक़ी है।

तहरीकों की नाकामी के अस्बाब क्या हैं?

लेकिन इन सारी क़ुरबानियों, सारी कोशिशों और मेहनतों के बावजूद एक अजीब मन्ज़र यह नज़र आता है कि कोई तहरीक ऐसी नहीं है जो कामयाबी की आख़री मन्ज़िल तक पहुंची हो। या तो वह तहरीक बीच में दब कर ख़त्म हो गयी या उसको दबा दिया गया, या ख़ुद तहरीक आगे चल कर टूट फूट का शिकार हो गयी, जिसके

नतीजे में उस तहरीक के जो मतलूबा फ़ायदे थे, वे हासिल न हो सके। अब सवाल यह है कि इस सूरते हाल का बुनियादी सबब क्या है? इसलिये कि ये बेदारी (यानी जागरूकता) की तहरीकें उठ रही हैं, कुरबानियां भी दी जा रही हैं, वक़्त भी ख़र्च हो रहा है, मेहनत भी हो रही है, इसके बावजूद कामयाबी की कोई वाज़ेह मिसाल सामने नहीं आती। हम में से हर शख़्स को इस पहलू पर ग़ौर करने की ज़रूरत है। मैं एक मामूली तालिब इल्म की हैसियत से इस पर जो ग़ौर कर सका हूं वह आप हज़रात की ख़िदमत में इस महफ़िल में पेश करना चाहता हूं, कि इस सूरते हाल के बुनियादी अस्बाब क्या हैं? और हम किस तरह उनको दूर कर सकते हैं?

इस सिलसिले में जो बात अर्ज़ करना चाहता हूं वह बहुत नाज़ुक बात है, और मुझे इस बात का भी ख़तरा है कि अगर इस नाज़ुक बात की ताबीर में थोड़ी सी भी ग़लती हुई तो वह ग़लत फ़हमियां पैदा कर सकती है, लेकिन मैं यह ख़तरा मोल लेकर उन दोनों पहलुओं की तरफ़ तवज्जोह दिलाना चाहता हूं जो मेरे नज़्दीक इस सूरते हाल का बुनियादी सबब हैं। और जिन पर हमें सच्चे दिल से और ठन्डे दिल से ग़ौर करने की ज़रूरत है।

ग़ैर मुस्लिमों की साज़िशें

इस्लामी तहरीकों के कामयाब न होने का एक सबब जो हर शख़्स जानता है वह यह है कि ग़ैर मुस्लिम ताक़तों की तरफ़ से इस्लाम और मुसलमानों को दबाने की साज़िशें की जा रही हैं। इस सबब का तफ़सीली तज़्किरा करने की ज़रूरत नहीं, इसलिये कि हर मुसलमान इस से वाकिफ़ है। लेकिन मेरा ज़ाती ईमान यह है कि ग़ैर मुस्लिमों की साज़िशें उम्मते मुस्लिमा को नुक़्सान पहुंचाने के लिए कभी भी उस वक़्त तक कामयाब नहीं हो सकतीं जब तक ख़ुद उम्मते मुस्लिमा के अन्दर कोई ख़ामी या नुक़्स मौजूद न हो, बाहरी साज़िशें हमेशा उस वक़्त कामयाब होती है, और हमेशा उस वक़्त

तबाही का सबब बनती हैं जब हमारे अन्दर कोई नुक्स आ जाए, वर्ना हुज़ूरे अक्दस सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से लेकर आज तक कोई दौर साज़िशों से ख़ाली नहीं रहा।

सतेज़ा कार रहा है अज़ल से ता इम्रोज़
चिरागे मुस्तफ़वी से शरारे बू लहबी

इसलिये यह साज़िश न कभी ख़त्म हुई है और न कभी ख़त्म हो सकती है। अल्लाह तआला ने जब आदम अलैहिस्सलाम को पैदा फ़रमाया तो उस से पहले इब्लीस पैदा हो चुका था। इसलिये यह उम्मीद रखना कि साज़िशें बन्द हो जायेंगी, यह उम्मीद बड़ी खुद फ़रेबी की बात है।

साज़िशों की कामयाबी के अस्बाब

अब हमारे लिए सोचने की बात यह है कि वह नुक्स और ख़राबी और ख़ामी क्या है, जिसकी वजह से ये साज़िशें हमारे ख़िलाफ़ कामयाब हो रही हैं? और यह सोचने की ज़रूरत इसलिये है कि आज जब हम अपनी बद् हाली का तज़्किरा करते हैं तो आम तौर पर हम सारा इल्ज़ाम और सारी ज़िम्मेदारी इन साज़िशों पर डालते हैं, कि यह फ़लां की साज़िश से हो रहा है, यह फ़लां का बोया हुआ बीज है, और खुद फ़ारिग़ होकर बैठ जाते हैं। हालांकि सोचने की बात यह है कि खुद हमारे अन्दर क्या ख़राबियां और क्या ख़ामियां हैं? इस सिलसिले में दो बुनियादी चीज़ों की तरफ़ से तवज्जोह दिलाना चाहता हूं, जो मेरी नज़र में इन नाकामियों का बहुत बड़ा सबब हैं।

शख़्सियत (व्यक्तित्व) की तामीर से ग़फ़लत

उनमें से पहली चीज़ शख़्सियत की तामीर की तरफ़ तवज्जोह का न होना है, इस से मेरी मुराद यह है कि हर पढ़ा लिखा इन्सान यह बात जानता है कि इस्लाम की तालीमात ज़िन्दगी के हर शोबे से मुताल्लिक़ हैं, उनमें बहुत से अहकाम इज्तिमाई क़िस्म के हैं, और

बहुत से अहकाम इन्फ़िरादी किस्म के हैं, बहुत से अहकाम का ख़िताब पूरी जमाअ़त से है, और बहुत से अहकाम का ख़िताब हर एक फ़र्द से अलग अलग है। दूसरे अल्फ़ाज़ में यों कहा जा सकता है कि इस्लामी अहकाम में इज्तिमाअ़ियत और इन्फ़िरादियत दोनों के दरमियान एक मख़्सूस तवाज़ुन (संतुलन) है, उस तवाज़ुन को क़ायम रखा जाए तो इस्लामी तालीमात पर बराबर तौर पर अ़मल होता है, और अगर उनमें से किसी एक को या तो नज़र अन्दाज़ कर दिया जाए या किसी पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर दिया जाए और दूसरे की अहमियत को कम कर दिया जाए तो इस से इस्लाम की सही तत्बीक़ (अनुकूलता) सामने नहीं आ सकती, इज्तिमाअ़ियत और इन्फ़िरादियत के दरमियान जो तवाज़ुन यानी संतुलन है हमने उस तवाज़ुन में अपने अ़मल और अपनी फ़िक्र से एक ख़लल पैदा कर दिया है और उसके नतीजे में हमने तरजीहात की तरतीब उलट दी है।

सैकूलरिज़्म की तरदीद

एक ज़माना वह था जिसमें सैकूलरिज़्म के प्रोपैगन्डे की वजह से लोगों ने इस्लाम को मस्जिद और मदरसे और नमाज़ रोज़े और इबादात तक सीमित कर लिया था, यानी इस्लाम को अपनी इन्फ़िरादी ज़िन्दगी तक महदूद और सीमित समझ लिया था, और सैकूलरिज़्म का फ़ल्सफ़ा भी यही है कि मज़हब का ताल्लुक़ इन्सान की इन्फ़िरादी ज़िन्दगी से है, इन्सान की सियासी, आर्थिक और समाजी ज़िन्दगी किसी मज़हब के ताबे नहीं होनी चाहिये, बल्कि वह वक़्त की मस्लिहत के ताबे होनी चाहिए। इस ग़लत फ़ल्सफ़े और फ़िक्र को रद्द करने के लिए हमारे मुआ़शरे यानी समाज के अन्दर अहले इल्म का एक बड़ा तबक़ा वजूद में आया, जिस ने इस फ़िक्र की तर्दीद करते (यानी नकारते) हुए बजा तौर पर यह कहा कि इस्लाम के अहकाम इबादात, अख़्लाक़ और सिर्फ़ इन्सान की इन्फ़िरादी ज़िन्दगी की हद तक महदूद और सीमित नहीं, बल्कि

ज़िन्दगी के हर शोबे पर हावी हैं, इस्लाम में इज्तिमाअियत पर भी इतना ही ज़ोर है जितना इन्फ़िरादियत पर है।

इस फ़िक्र को रद्द करने का नतीजा

लेकिन हमने इस फ़िक्र के रद्द करने में इज्तिमाअियत पर इतना ज़ोर दिया कि उसके नतीजे में इन्फ़िरादी अहकाम पीठ पीछे चले गए, और नज़र अन्दाज़ हो गये, या कम से कम अ़मली तौर पर ग़ैर अहम होकर रह गये, जैसे एक नुक़्ता-ए-नज़र यह था कि दीन का सियासत से कोई ताल्लुक़ नहीं।

"دع ما لقیصر لقیصر وما للّٰہ للّٰہ"

यानी जो क़ैसर का हक़ है वह क़ैसर को दो, जो अल्लाह का हक़ है वह अल्लाह को दो। गोया कि दीन को सियासत में लाने की कोई ज़रूरत नहीं, और इस तरह दीन को सियासत से देस निकाल दिया गया।

हमने इस्लाम को सियासी बना दिया

इस ग़लत नुक़्ता-ए-नज़र के रद्द करने में एक और फ़िक्र सामने आई, जिस ने दीन के सियासी पहलू पर इतना ज़ोर दिया कि यह समझा जाने लगा कि दीन का असली मक़्सद ही एक सियासी निज़ाम का क़ियाम है। यह बात अपनी जगह ग़लत नहीं थी कि सियासत भी एक ऐसा शोबा है जिसके बारे में इस्लाम के मख़्सूस अहकाम हैं लेकिन अगर इस बात को यों कहा जाए कि दीन हक़ीक़त में सियासत ही का नाम है, या सियासी निज़ाम को नाफ़िज़ करना दीन का सब से पहला मक़्सद है तो इस से तरजीहात की तरतीब उलट जाती है। अगर हम इस फ़िक्र को तस्लीम कर लें तो इसका मतलब यह है कि हमने सियासत को इस्लामी बनाने के बजाए इस्लाम को सियासी बना दिया, और दीन में इन्फ़िरादी ज़िन्दगी का जो हुस्न व ख़ूबसूरती थी, उस से हमने अपने आपको महरूम कर दिया।

हुज़ूर सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मक्की ज़िन्दगी

नबी–ए–करीम सरवरे दो आ़लम सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मुबारक ज़िन्दगी ज़िन्दगी के हर शोबे में हमारे लिए बेहतरीन नमूना है, आपकी २३ साल की नबवी ज़िन्दगी दो हिस्सों में तक़सीम है, एक मक्की ज़िन्दगी और दूसरी मदनी ज़िन्दगी। आपकी मक्की ज़िन्दगी १३ सालों पर फैली हुई है, और मदनी ज़िन्दगी दस साल पर फैली हुई है। हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की मक्की ज़िन्दगी को अगर आप देखें तो यह नज़र आयेगा कि उसमें सियासत नहीं, हुकूमत नहीं, क़िताल नहीं, जिहाद नहीं, यहां तक कि थप्पड़ का जवाब थप्पड़ से भी नहीं, बल्कि हुक्म यह है कि अगर दूसरा शख़्स तुम पर हाथ उठा रहा है तो तुम्हें हाथ नहीं उठाना है।

"واصبر وما صبرك الا بالله"

हालांकि मुसलमान कितने ही कमज़ोर सही, तायदाद के एतिबार से कितने ही कम सही, लेकिन इतने भी गये गुज़रे नहीं थे कि अगर दूसरा शख़्स दो हाथ मार रहा है तो उसके जवाब में एक हाथ भी न मार सकें, या कम से कम मारने वाले का हाथ भी न रोक सकें, लेकिन वहां हुक्म यह है कि सब्र करो।

मक्के में शख़्सियत बनाने का काम हुआ

यह हुक्म क्यों दिया गया? इसलिए कि पूरी मक्की ज़िन्दगी का मक़्सद यह था कि ऐसे अफ़राद तैयार हों जो आगे जाकर इस्लामी मुआ़शरे (समाज) का बोझ उठाने वाले हों। १३ साल की मक्की ज़िन्दगी का ख़ुलासा यह था कि उन अफ़राद को भट्टी में सुलगा कर उनके किर्दार, उनकी शख़्सियत, उनके आमाल और अख़्लाक़ को संवारा और उन्हें साफ़ सुथरा किया जाए, उन १३ साल के अन्दर इसके अ़लावा कोई काम नहीं था कि उन अफ़राद के अख़्लाक़ दुरुस्त हों, उनके अ़क़ीदे दुरुस्त हों, उनके आमाल दुरुस्त हों, उनका किर्दार दुरुस्त हो, और उनकी बेहतरीन सीरत की तामीर हो। उनका

ताल्लुक़ अल्लाह तआला से क़ायम हो जाए, अल्लाह के साथ ताल्लुक़ की दौलत उनको नसीब हो और अल्लाह तआला के सामने जवाब देही का एहसास उनके दिलों में पैदा हो जाए।

शख़्सियत बनाने के बाद कैसे अफ़राद तैयारा हुए?

१३ साल तक यह काम होने के बाद फिर मदनी ज़िन्दगी का आग़ाज़ (शुरूआत) हुआ, जिसमें इस्लामी हुकूमत भी वजूद में आती है, इस्लामी क़ानून भी और इस्लामी हुदूद भी नाफ़िज़ होती हैं, और एक इस्लामी रियासत के जितने लवाज़िम होते हैं वे सब वजूद में आते हैं। लेकिन उन तमाम लवाज़िम के होने के बावजूद चूंकि इन अफ़राद को एक बार ट्रेनिंग कोर्स से गुज़ारा जा चुका था, इसलिये किसी फ़र्द के हाशिया-ए-ख़्याल में भी यह बात नहीं आती कि हमारा मक़्सद महज़ सत्ता हासिल करना है, बल्कि इक़्तिदार (सत्ता) के बावजूद उनका ताल्लुक़ अल्लाह तआला से जुड़ा हुआ था और वे लोग दीन को क़ायम करने की जद्दोजिहद में जिहाद और क़िताल में लगे हुए थे, उनका यह हाल तारीख़ में लिखा है कि यर्मूक के मैदान में पड़े हुए सहाबा-ए-किराम के लश्कर पर तब्सिरा करते हुए एक ग़ैर मुस्लिम ने अपने अफ़सर से कहा कि ये बड़े अजीब लोग हैं कि:

"رهبان بالليل وركبان بالنهار"

यानी दिन के वक़्त में ये लोग बेहतरीन शहसवार हैं और बहादुरी और जवां मर्दी के जौहर दिखाने वाले हैं, और रात के वक़्त में ये बेहतरीन राहिब हैं, और अल्लाह तआला के साथ अपना रिश्ता जोड़े हुए हैं, और इबादात में मश्ग़ूल रहते हैं। हासिल यह कि सहाबा-ए-किराम दो चीज़ों को साथ लेकर चले, एक जद्दोजिहद और दूसरे अल्लाह के साथ ताल्लुक़, ये दोनों चीज़ें एक मुसलमान की ज़िन्दगी के लिए लाज़िम और ज़रूरी हैं, अगर इनमें से एक को दूसरे से जुदा किया जायेगा तो इस्लाम की सही तस्वीर सामने नहीं आयेगी।

हम लोग एक तरफ़ झुक गए

सहाबा-ए-किराम रज़ियल्लाहु अन्हुम के ज़ेहन में यह ख़्याल नहीं आया कि चूंकि अब हम आला और बुलन्द मक़ाम के लिए निकल खड़े हुए हैं, हमने जिहाद शुरू कर दिया है और पूरी दुनिया पर इस्लाम का सिक्का बिठाने के लिए जद्दोजिहद शुरू कर दी है, इसलिए हमें अब तहज्जुद पढ़ने की क्या ज़रूरत है? अब हमें अल्लाह तआला के सामने रोने और गिड़गिड़ाने की क्या हाजत है? किसी भी सहाबी के ज़ेहन में यह ख़्याल नहीं आया, बल्कि उन्हों ने इन सब चीज़ों को बाक़ी रखते हुए जद्दोजिहद व अमल का रास्ता इख़्तियार किया। लेकिन हमने जब सियासी इक़्तिदार हासिल करने के लिए जद्दोजिहद व अमल के रास्ते को अपनाया, और सैकूलरिज़म का रद्द करते हुए सियासत को इस्लाम का एक हिस्सा क़रार दिया तो इस पर इतना ज़ोर दिया कि दूसरे पहलू यानी अल्लाह की तरफ़ रुजू और अल्लाह तआला के साथ ताल्लुक़ क़ायम करने, उसके हुज़ूर रोने और गिड़गिड़ाने, उसके हुज़ूर आजिज़ी के साथ माथा टेकने और अल्लाह तआला की इबादत करके मिठास हासिल करने के पहलू को या तो फ़िक्री तौर पर, या कम से कम अमली तौर पर नज़र अन्दाज़ कर गए, और हमने अपने ज़ेहनों में यह बिठा लिया कि अब हमें इसकी ज़रूरत नहीं, इसलिए कि हम तो इस से बुलन्द और आला मक़ासिद के लिए जद्दोजिहद कर रहे हैं इसलिए शख़्सी इबादत एक ग़ैर अहम चीज़ है, जिसे इस आला और बुलन्द मक़सद पर क़ुर्बान किया जा सकता है, या कम से कम उसकी तरफ़ से ग़फ़लत बरती जा सकती है।

हम फ़र्द की इस्लाह से ग़ाफ़िल हो गये

इसलिए इज्तिमाअियत पर ज़रूरत से ज़्यादा ज़ोर देने के नतीजे में फ़र्द के ऊपर जो अह्काम अल्लाह तआला ने आयद फ़रमाये थे, हम उनसे फ़िक्री या अमली तौर पर पहलू बचाना शुरू

कर देते हैं, इसका नतीजा यह है कि आजके दौर में उठने वाली बेदारी की तहरीकें बड़े इख़्लास और जज़्बे के साथ इस्लाम को नाफ़िज़ करने के लिए खड़ी होती हैं, लेकिन चूंकि यह दूसरा पहलू नज़र अन्दाज़ हो जाता है इस वजह से वे तहरीकें कामयाब नहीं होतीं। देखिए, कुरआने करीम ने वाज़ेह तौर पर बयान फ़रमा दिया है कि:

"ان تنصروا اللہ ینصرکم ویثبت اقدامکم"

इस आयत में अल्लाह तआ़ला ने उम्मते मुस्लिमा की मदद, फ़तह और साबित क़दमी को "इन् तन्सुरुल्ला–ह" के साथ मश्रूत किया है, और अल्लाह की तरफ़ रुजू के साथ मश्रूत किया है। गोया कि अल्लाह तआ़ला की मदद उस वक़्त आती है जब इन्सान का रिश्ता अल्लाह तआ़ला के साथ मज़बूत होता है, अगर वह रिश्ता कमज़ोर पड़ जाए तो फिर वह इन्सान मदद का हक़दार नहीं रहता।

जो बात दिल से निकलती है वो दिल पर असर करती है

जो इस्लामी तालीमात फ़र्द से मुताल्लिक़ हैं, वे तालीमात इन्सान को इस बात पर तैयार करती हैं कि उसकी इज्तिमाई जद्दोजिहद साफ़ सुथरी हो, फ़र्द से मुताल्लिक़ तालीमात जिसमें इबादात, अख़्लाक़, दिली कैफ़ियतें सब चीज़ें दाख़िल हैं, अगर इन्सान उन पर पूरी तरह अ़मल करने वाला हो, और उन तालीमात में उसकी तर्बियत नाक़िस हो, फिर वह समाज को सुधारने का झंडा लेकर खड़ा हो जाए तो इसका नतीजा यह होता है कि उसकी कोशिशें कामयाब नहीं होतीं। अगर मैं ज़ाती तौर पर अपने अख़्लाक़, किर्दार और सीरत के एतिबार से अच्छा इन्सान नहीं हूं और इसके बावजूद में समाज को सुधारने का झंडा लेकर खड़ा हो जाऊं, और लोगों को दावत दूं कि अपना सुधार करो, तो इस सूरत में मेरी बात में कोई वज़न और कोई तासीर नहीं होगी। लेकिन जो शख़्स अपनी ज़ाती ज़िन्दगी को, अपनी सीरत को, अपने अख़्लाक़ व किर्दार को पाक

साफ़ और सुथरा बना चुका है, और अपनी इस्लाह (सुधार) कर चुका है, फिर वह दूसरों को इस्लाह की दावत देता है तो उसकी बात में वज़न भी होता है। फिर वह बात सिर्फ़ कान तक नहीं पहुंचती बल्कि दिल पर जाकर असर डालने वाली होती है। इसलिए जब हम अपने अख़्लाक़ को संवारे बग़ैर दूसरों की इस्लाह की फ़िक्र लेकर निकल खड़े होते हैं तो उसका नतीजा यह होता है कि जब फ़ितनों का सामना होता है, उस वक़्त हथियार डालते चले जाते हैं, और बुलन्द अख़्लाक़ व किर्दार का मुज़ाहरा नहीं करते, नतीजे में माल व ओहदों और सत्ता के लालच और मुहब्बत के फ़ितनों में गिरफ़्तार हो जाते हैं। फिर आगे चल कर असल मक़्सद तो पीछे रह जाता है और अपने सर सेहरा बांधने का शौक़ आगे आ जाता है। फिर हमारी हर नक़्ल व हर्कत के गिर्द यह बात घूमती है कि किस काम के करने से मुझे कितना करेडिट हासिल होगा? जिसके नतीजे में कामों के चुनाव के बारे में हमारे फ़ैसले ग़लत हो जाते हैं, और हम मन्ज़िले मक़्सूद तक नहीं पहुंच पाते।

अपने सुधार की पहले फ़िक्र करो

इसी सिलसिले में क़ुरआने करीम की एक आयत और हुज़ूरे अक़्दस सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का एक इरशाद है, जो आम तौर पर हमारी नज़रों से ओझल रहता है, आयते करीमा यह है कि:

"يا يها الذين امنوا عليكم انفسكم لا يضركم من ضل اذا اهتديتم، الى الله مرجعكم جميعا فينبئكم بما كنتم تعملون (پ۷ رکوع ٤)

(तर्जुमा) ऐ ईमान वालो! तुम अपनी ख़बर लो, (अपने आपको दुरुस्त करने की फ़िक्र करो) अगर तुम सीधे रास्ते पर आ गये तो जो लोग गुमराही के रास्ते पर जा रहे हैं वे तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते, तुम्हें कुछ नुक़्सान नहीं पहुंचा सकते, अल्लाह ही की तरफ़ तुम सब को लौट कर जाना है, वह उस वक़्त तुमको बतायेगा कि तुम दुनिया में क्या अमल करते रहे।

रिवायतों में आता है कि जब यह आयत नाज़िल हुई तो एक सहाबी रज़ियल्लाहु अन्हु ने नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सवाल किया कि या रसूलल्लाह! यह आयत तो बता रही है कि अपनी इस्लाह कि फ़िक्र करो, अगर दूसरे लोग गुमराह हो रहे हैं तो उनकी गुमराही तुम्हें कुछ नुक़सान नहीं पहुंचायेगी। तो क्या हम दूसरों को अच्छे काम का हुक्म और बुरे काम से मना न करें? दावत व तब्लीग़ का काम न करें? जवाब में नबी–ए–करीम सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने इरशाद फ़रमायाः ऐसा नहीं है, तुम तब्लीग़ व दावत का काम करते रहो, उसके बाद आपने यह हदीस इरशाद फ़रमाईः

"اذا رأيت شحا مطاعا، وهوى متبعا ودنيا مؤثرة، واعجاب كل ذى راى برايه فعليك بخاصة نفسك ودع عنك امر العامة"

यानी जब तुम समाज के अन्दर चार चीज़ें फैली हुई देखो, एक यह कि जब माल की मुहब्बत के जज़्बे की इताअत की जा रही हो, हर इन्सान जो कुछ कर रहा हो वह माल की मुहब्बत से कर रहा हो। दूसरे यह कि ख़्वाहिशाते नफ़्स की पैरवी की जा रही हो, तीसरे यह कि दुनिया ही को हर मामले में तर्जीह दी जा रही हो और लोग आख़िरत से ग़ाफ़िल होते जा रहे हों, चौथे यह कि हर राये वाला शख़्स अपनी राये पर घमण्ड में मुब्तला हो जाए, हर शख़्स अपने आपको कुल अक़्ल का मालिक समझ कर दूसरे की बात सुनने समझने से इन्कार करे तो तुम अपनी जान की फ़िक्र करो, अपने आप को दुरूस्त करने की फ़िक्र करो, और आम लोगों को छोड़ दो।

बिगड़े हुए समाज में काम का क्या तरीक़ा इख़्तियार करें?

इस हदीस का मतलब बाज़ हज़रात ने तो यह बयान फ़रमाया कि एक वक़्त ऐसा आयेगा कि जब किसी इन्सान पर दूसरे इन्सान की नसीहत कारगर नहीं होगी, इसलिए उस वक़्त अच्छाई का हुक्म करने और बुराई से मना करने और दावत व तब्लीग़ का फ़रीज़ा

ख़त्म हो जायेगा, बस उस वक़्त इन्सान अपने घर में बैठ कर अल्लाह अल्लाह करे, और अपने हालात की इस्लाह की फ़िक्र करे, और कुछ करने की ज़रूरत नहीं। दूसरे उलमा ने इस हदीस का दूसरा मतलब बयान किया है, वह यह कि इस हदीस में उस वक़्त का बयान हो रहा है जब समाज में चारों तरफ़ बिगाड़ फैल चुका हो और हर शख़्स अपनी ज़ात में इतना मस्त हो कि दूसरे की बात सुनने को तैयार न हो तो ऐसे वक़्त अपने आपकी फ़िक्र करो, और आम लोगों के मामले को छोड़ दो। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि "अच्छे काम का हुक्म और बुराई से मना करने" को पूरी तरह छोड़ दो। बल्कि इसका मतलब यह है कि उस वक़्त "फ़र्द" की इस्लाह की तरफ़ "इज्तिमा" की इस्लाह के मुक़ाबले में तवज्जोह ज़्यादा दो, क्योंकि "इज्तिमा" हक़ीक़त में अफ़राद के मज्मूए ही का नाम है, अगर "अफ़राद" दुरुस्त नहीं हैं तो "इज्तिमा" कभी दुरुस्त नहीं हो सकता, और "अफ़राद" दुरुस्त हैं तो इज्तिमा खुद बख़ुद दुरुस्त हो जायेगा। इसलिए इस बिगाड़ को ख़त्म करने का तरीक़ा हक़ीक़त में इन्फ़िरादी इस्लाह और इन्फ़िरादी जद्दोजिहद का रास्ता इख़्तियार करने में है, जिस से शख़्सियतों की तामीर हो। और जब शख़्सियतों की तामीर होगी तो समाज के अन्दर खुद बखुद ऐसे अफ़राद की तादाद में इज़ाफ़ा होगा जो खुद अख़्लाक़ वाले और किर्दार के मालिक होंगे, जिसके नतीजे में समाज का बिगाड़ रफ़्ता रफ़्ता ख़त्म हो जायेगा। इसलिये यह हदीस दावत व तब्लीग़ को मन्सूख़ नहीं कर रही, बल्कि उसका खुद एक तरीक़ा-ए-कार बता रही है।

हमारी नाकामी का एक अहम सबब

बहर हाल, मैं यह अर्ज़ कर रहा था कि हमारी नाकामियों का बड़ा अहम सबब मेरी नज़र में यह है कि हमने इज्तिमा को दुरुस्त करने की फ़िक्र में फ़र्द को खो दिया है, और इस फ़िक्र में कि हम

पूरे समाज की इस्लाह करेंगे, फ़र्द की इस्लाह को भूल गये हैं, और फ़र्द को भूलने के मायने यह हैं कि फ़र्द को मुसलमान बनने के लिए जिन तकाज़ों की ज़रूरत थी, जिसमें इबादतें भी दाख़िल हैं, जिसमें अल्लाह के साथ ताल्लुक़ भी दाख़िल है, जिसमें अख़्लाक़ का पाकीज़ा बनाना भी दाख़िल है, और जिसमें सारी तालीमात पर अमल भी दाख़िल है, वह सब कुछ पीछे जा चुके हैं, इसलिए जब तक हम इसकी तरफ़ वापस लौट कर नहीं आयेंगे, उस वक़्त तक ये तहरीकें और हमारी ये सारी कोशिशें कामयाब नहीं होंगी, इमाम मालिक रह. फ़रमाते हैं कि:

"ليصلح آخر هذه الامة بما صلح به اولها"

इस उम्मत के आख़री ज़माने में इस्लाह भी उसी तरह होगी जिस तरह पहले ज़माने की इस्लाह हुई थी, उसके लिए कोई नया फ़ारमूला वजूद में नहीं आयेगा। और पहले ज़माने यानी सहाबा-ए-किराम के ज़माने में भी फ़र्द की इस्लाह के रास्ते से समाज की इस्लाह हुई थी, इसलिए अब भी इस्लाह का वही रास्ता इख़्तियार करना होगा।

"अफ़ग़ान जिहाद" हमारी तारीख़ का इन्तिहाई रोशन बाब, लेकिन!

आज हमारी तवज्जोह सियासत की तरफ़ भी है, रोज़गार की तरफ़ भी है, समाजी ज़िन्दगी की तरफ़ भी है लेकिन फ़र्द की तामीर के लिए और फ़र्द की इस्लाह के लिए इदारे नायाब हैं, इल्ला माशा अल्लाह। इस वजह से आज हमारी तहरीकें कामयाब नहीं हो रही हैं। किसी न किसी मर्हले पर जाकर नाकाम हो जाती हैं। यह नाकामी कभी कभी इसलिए होती है कि या तो ख़ुद हमारे अन्दर आपस में फूट पड़ जाती है और लड़ाई झगड़ा शुरू हो जाता है। इसकी एक अफ़सोसनाक मिसाल हमारे सामने मौजूद है, अफ़ग़ान जिहाद हमारी तारीख़ का इन्तिहाई रोशन बाब है जिसके मुताले से यह बात वाज़ेह

होती है कि:

ऐसी चिंगारी भी या रब मेरी ख़ाकिस्तर में थी।

लेकिन कामयाबी की मन्ज़िल तक पहुंचने के बाद जो सूरते हाल हो रही है उसको किसी दूसरे के सामने ज़िक्र करते हुए भी शर्म मालूम होती है।

मन्ज़िल से दूर रहरवे मन्ज़िल था मुत्मइन
मन्ज़िल क़रीब आई तो घबरा के रह गया

आज जिस तरह हमारे अफ़ग़ान भाईयों के अन्दर ख़ाना जंगी (गृह युद्ध) हो रही है, उस पर हर मुसलमान का दिल रो रहा है, यह सब कुछ क्यों हुआ? इसलिये कि इस जद्दोजिहद के जो तक़ाज़े थे वे हमने पूरे नहीं किए, अगर वे तक़ाज़े पूरे किए होते तो यह मुम्किन नहीं था कि इस मन्ज़िल पर पहुंचने के बाद दुनिया के सामने जग हंसाई का सबब बनते।

बहर हाल, सारी तहरीकें आख़िर कार इस मर्हले पर जाकर रुक जाती हैं कि उनमें फ़र्द की तामीर का हिस्सा नहीं होता और उनमें शख़्सियत को नहीं संवारा जाता, जिसकी वजह से वे तहरीकें आगे जाकर नाकाम हो जाती हैं।

हमारी नाकामी का दूसरा अहम सबब

हमारी नाकामी का दूसरा सबब मेरी नज़र में यह है कि इस्लाम के ततबीक़ी पहलू पर हमारा काम या तो बिल्कुल नहीं है, या कम से कम नाकाफ़ी है, इस से मेरी मुराद यह है कि एक तरफ़ तो हमने इज्तिमाअियत पर इतना ज़ोर दिया कि अमलन् इसी को इस्लाम का कुल क़रार दे दिया, और दूसरी तरफ़ इस पहलू पर जैसा कि उसका हक़ था ग़ौर नहीं किया कि आजके दौर में इसकी तत्बीक़ (अनुकूलता) का तरीक़ा–ए–कार क्या होगा? इस सिलसिले में न तो हमने उसके हक़ के मुताबिक़ ग़ौर किया न उसके लिए कोई बाक़ायदा कोई मन्सूबा तैयार किया, और अगर कोई तरीक़ा–ए–अमल

तैयार किया तो व नाकाफी था। मैं यह नहीं कहता (खुदा न करे) कि इस्लाम इस दौर में क़ाबिले अ़मल नहीं है। इस्लाम की तालीमात किसी इन्सानी ज़ेहन की पैदावार नहीं, यह उस दो जहां के मालिक के अहकाम हैं जिसके इल्म व कुदरत से कोई ज़माना और किसी जगह का कोई हिस्सा ख़ारिज नहीं, इसलिये जो श़ख्स इस्लाम को इस दौर में ना क़ाबिले अ़मल क़रार दे, वह दायरा-ए-इस्लाम में नहीं रह सकता, लेकिन ज़ाहिर है कि इस्लाम को इस दौर में जारी, क़ायम और नाफ़िज़ करने के लिए कोई तरीक़ा-ए-कार इख़्तियार करना होगा। उस तरीक़े कार के बारे में सन्जीदा तहक़ीक़ और हक़ीक़त पसन्दाना ग़ौर व फ़िक्र और तहक़ीक़ की कमी है।

हर दौर में इस्लाम की अनुकूलता का तरीक़ा मुख़्तलिफ़ रहा है

हम इस्लाम के लिए काम कर रहे हैं, इसके लिए जद्दोजिहद कर रहे हैं, और इसके अ़मली तौर पर लागू होने के लिए तहरीक चला रहे हैं, लेकिन तहरीक चलाने से पहले और तहरीक के दौरान सब के ज़ेहनों में यह बात हो कि इस्लाम के लागू करने के मायने यह हैं कि कुरआन व सुन्नत को नाफ़िज़ (लागू) कर देंगे। और यह कह दिया जाता है कि हमारे पास फ़तावा आ़लमगीरी मौजूद है, उसको सामने रख कर फ़ैसले कर दिए जायेंगे। हम इस मासूम तसव्वुर को ज़हनों में रख कर आगे बढ़ते हैं, लेकिन यह बात याद रखिए कि किसी "उसूल" का हमेशा के लिये होना अलग बात है और मुख़्तलिफ़ हालात और मुख़्तलिफ़ ज़मानों में उस उसूल की ततबीक़ (अनुकूलता) दूसरी बात है। इस्लाम ने जो अहकाम, जो तालीमात, जो उसूल हमें अ़ता फ़रमाये, वे हमेशा के लिये हैं, और हर दौर के अन्दर कारामद हैं, लेकिन उनको नाफ़िज़ करने और बर सरेकार लाने के लिए हर दौर और हर ज़माने के तक़ाज़े मुख़्तलिफ़ होते हैं, जैसे मस्जिद पहले भी बनती थी, आज भी बन रही है, लेकिन पहले

खजूर के पत्तों और शहतीरों से बनती थी, आज सीमेंट और लोहे से बनती है, तो देखिए: मस्जिद बनने का उसूल अपनी जगह क़ायम है लेकिन उसके तरीक़े कार बदल गये, या जैसे कुरआने करीम ने फ़रमाया:

"واعدوا لهم ما استطعتم من قوة"

यानी मुख़ालिफ़ों के लिए जितनी कुव्वत हो सके तैयार कर लो, लेकिन पहले ज़माने में वह कुव्वत तीर, तलवार और कमान की शक्ल में होती थी, और अब वह कुव्वत बम, तोप, जहाज़ और नये हथियारों की शक्ल में है। इसलिये हर दौर के लिहाज़ से ततबीक़ के तरीक़े मुख़्तलिफ़ होते हैं।

इस्लाम की अनुकूलता का तरीक़ा-ए-कार

इसी तरह जब इस्लामी अहकाम को मौजूदा ज़िन्दगी पर नाफ़िज़ किया जायेगा तो यक़ीनन इसका कोई तरीक़े कार मुताय्यन करना होगा। अब देखना यह है कि वह ततबीक़ (अनुकूलता) का तरीक़ा क्या होगा? और आज हम इस्लाम के उन अ–बदी (हमेशा रहने वाले) उसूलों को किस तरह नाफ़िज़ करेंगे? इसके बारे में हम अभी तक ऐसा सोचा समझा मनसूबा और तरीक़ा–ए–अमल तैयार नहीं कर सके जिसके बारे में हम यह कह सकें कि यह पुख़्ता तरीक़े कार है। इसके लिए कोशिशें बिला शुबह पूरी इस्लामी दुनिया में और ख़ुद हमारे मुल्क में हो रही हैं, लेकिन किसी कोशिश को यह नहीं कहा जा सकता कि वह हतमी और आख़री है। और चूंकि ऐसा मनसूबा और तरीक़ा–ए–अमल मौजूद नहीं है इसलिए इसका नतीजा यह होगा कि अगर किसी तहरीक के चलने के नतीजे में फ़र्ज़ करो इक़्तिदार (सत्ता) हासिल भी हो गया तो उसके बाद इस्लाम के अहकाम और उसूलों को पूरी तरह नाफ़िज़ और क़ायम करने में सख़्त मुश्किलात और मसाइल पैदा होंगे।

नई ताबीर का नुक़्ता-ए-नज़र ग़लत है

इस सिलसिले में एक नुक़्ता–ए–नज़र यह है कि चुंकि इस दौर के अन्दर हमें इस्लाम को नाफ़िज़ (लागू) करना है और यह दौर पहले के मुक़ाबले में बहुत कुछ बदला हुआ है, इसलिए इस ज़माने में इस्लाम को अमली तौर पर नाफ़िज़ करने के लिए इस्लाम की "नयी ताबीर" (यानी इस्लाम के नये मायने बयान करने) की ज़रूरत है, और बाज़ हल्क़ों की तरफ़ से इस नयी ताबीर का मुज़ाहरा इस तरह हो रहा है कि इस ज़माने में जो कुछ हो रहा है उसको इस्लाम की तरफ़ से जायज़ होने की सनद देदी जाए, जैसे सूद को हलाल क़रार दे दिया जाए, "जुए" को हलाल क़रार दे दिया जाए, शराब को हलाल क़रार दे दिया जाए, बे–पर्दगी को हलाल क़रार दिया जाए, गोया कि इस तरह इन सब हराम चीज़ों को हलाल क़रार देने के लिए कुरआन व हदीस की नयी ताबीर की जाए।

यह नुक़्ता–ए–नज़र ग़लत है, इसलिए कि इसका हासिल यह निकलता है कि जो कुछ आज हो रहा है वह सब ठीक है, और इस्लाम के नाफ़िज़ होने के मायने सिर्फ़ यह हैं कि इक़्तिदार (सत्ता) मुसलमानों के हाथ में आ जाए, और जो कुछ मग़रिब की तरफ़ से हमें पहुंचा है वह जूं का तूं बाक़ी और जारी रहे, उसमें किसी तब्दीली की ज़रूरत नहीं। अगर इस नुक़्ता–ए–नज़र को दुरुस्त मान लिया जाए तो फिर "इस्लाम के निफ़ाज़" की जद्दोजिहद ही बेमानी होकर रह जाती है।

इसलिए मौजूदा दौर में इस्लाम की ततबीक़ के तरीक़े सोचने के मायने यह नहीं हैं कि इस्लाम की कांट छांट का काम शुरू कर दिया जाए और उसमें कांट छांट करके उसे पश्चिमी ख़्यालात के सांचे में ढाल दिया जाए, बल्कि मतलब यह है कि इस्लाम के तमाम उसूल और अहकाम अपनी जगह बाक़ी रहें, उनके अन्दर कोई तब्दीली न की जाए, लेकिन यह बात तय की जाए कि जब इन उसूलों को इस दौर में जारी किया जायेगा तो इस सूरत में इसका अमली तरीक़े

कार क्या होगा? जैसे तिजारत के बारे में तमाम फ़िक्ही किताबों में इस्लामी उसूल और अहकाम भरे हुए हैं, लेकिन मौजूदा दौर में तिजारत के जो नये नये मसाइल पैदा हुए हैं, ज़ाहिर है कि इन किताबों में उनका वाज़ेह और खुला जवाब मौजूद नहीं, उन मसाइल का जवाब कुरआन व सुन्नत और इस्लामी फ़िक्हे के मुसल्लम उसूलों की रोशनी में तलाश करना होगा, इस बारे में अभी हमारा काम अधूरा और नाक़िस है, जब तक यह काम पूरा नहीं हो जाता उस वक़्त तक हम पूरी तरह कामयाब नहीं हो सकते। इसी तरह सियासत से मुताल्लिक़ भी इस्लामी अहकाम और उसूल मौजूद हैं, लेकिन हमारे दौर में जब इन इस्लामी अहकाम को नाफ़िज़ (लागू) किया जायेगा तो इसकी अ़मली सूरत क्या होगी? इस बारे में भी हमारा काम अभी तक नाक़िस और अधूरा है, इस नुक़्स की वजह से भी हम कभी कभी नाकामियों के शिकार हो जाते हैं।

खुलासा

बहर हाल, मेरी नज़र में ऊपर ज़िक्र किये गये दो बुनियादी सबब हैं, और दोनों का ताल्लुक़ हक़ीक़त में फ़िक्री अस्बाब से है, पहला सबब फ़र्द की इस्लाह और शख़्सियत की तामीर की तरफ़ से ग़फ़लत और इस इस्लाह के बग़ैर इज्तिमाई उमूर में दाख़िल हो जाना। दूसरा सबब इस्लाम के ततबीक़ी पहलू पर जिस सन्जीदगी से तहक़ीक़ की ज़रूरत है, उसका ना काफ़ी होना। ये दो अस्बाब हैं, अगर हम इनको समझने में कामयाब हो जायें और इनके दूर करने की फ़िक्र हमारे दिलों में पैदा हो जाए और हम इनको बेहतर तौर पर दूर कर सकें तो फिर उम्मीद है कि इन्शा अल्लाह कामयाबी होगी, अल्लाह तआ़ला अपनी रहमत से वह दिन दिखाए जब ये बेदारी की तहरीकें सही मायने में कामयाब हों।

واٰخر دعوانا ان الحمد لله رب العالمين